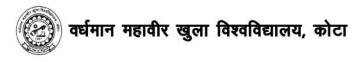
एम.ई.सी.-08



वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. अर्थशास्त्र (उत्तरार्छ)

क्षेत्रीय आर्थिक विकास एवं नियोजन 2



एम.ए. अर्थशास्त्र (उत्तरार्द्ध)

क्षेत्रीय आर्थिक विकास एवं नियोजन 2

| पाठ्यक्रम विकास समिति | | |
|-----------------------------------|-------------------------------------|--------------------------------------|
| प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा | प्रो. ए.के. सिंह | |
| कुलपति | गिरि इंस्टीट्यूट ऑफ डवलपमेंट स्टडीज | |
| कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा | लखनऊ | |
| प्रो. एस.एस. आचार्य | डॉ. प्रमोद वर्मा | |
| निदेशक, | इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट | |
| विकास अध्ययन संस्थान, जयपुर | अहमदाबाद | |
| प्रो. डी.डी. नरूला | डॉ. एम.के. घड़ोलिया (संयोजक) | |
| मानद वरिष्ठ अध्येता | विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग | |
| विकास अध्ययन संस्थान जयपुर | कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा | |
| डॉ. श्याम नाथ | डॉ. रामेश्वर प्रसाद शर्मा | |
| फ़ेलो, एन.आई.पी.एफ़.पी, नई दिल्ली | अर्थशास्त्र विभाग | |
| | • | वेश्वविद्यालय, कोटा |
| प्रो. अमिताभ कुन्ड् | डॉ. जे.जे. शर्मा | |
| सी.एस.आर.डी. | अर्थशास्त्र विभाग | |
| जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय | कोटा खुला वि | वेश्वविद्यालय, कोटा |
| नई दिल्ली | | |
| पाठों के लेखक | | |
| प्रो. एस. मूर्ति (18) | मंज् श्री (24) | |
| विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन | राजकीय महाविद्यालय, कोटा | |
| डॉ. सीतेश भाटिया (19, 21, 25) | डॉ. एम.पी. गोस्वामी (26, 28) | |
| नई दिल्ली | बरेली (उ.प्र.) | |
| डॉ. श्यामला भाटिया (20) | प्रो. ओ.एस. श्रीवास्तव (27, 30) | |
| नई दिल्ली | भोपाल | |
| प्रो. के. नागेश्वरा राव (22, 29) | प्रो. एन.एम. लाल (31) | |
| एस. के. विश्वविद्यालय, अन्नतपुर | ग्वालियर | |
| प्रो. के.आर.जी. नायर (23) | | |
| दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली | | |
| | | |
| | डॉ. टी.सी. पाठक (23, 29) | |
| बून्दी | अजमेर | |
| सम्पादक | | |
| प्रो. ओ.एस. श्रीवास्तव | | |
| 88 सेक्टर, 8 | | |
| कस्तूरबा नगर, भोपाल (म.प्र.) | | |
| अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था | | |
| प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच | प्रो.(डॉ.) अनाम जेटली | प्रो.(डॉ.) पी.के. शर्मा |
| कुलपति | निदेशक | निदेशक विदेशक |
| | मंकार विभाग | पाठरा सामगी उन्पादन एवं विन्या विभाग |

संकाय विभाग

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

पाठ्यक्रम उत्पादन

निदेशक

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी,

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन - सितम्बर, 2008

इस सामग्री के किसी भी अंश को व.म.खु.वि. कोटा की लिखित अनुमित के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमित नहीं है|

व.म.खु.वि. कोटा के लिये कुलसचिव व.म.खु.वि. कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

मैसर्स दी डायमण्ड प्रिन्टिंग प्रेस, जयपुर द्वारा 1,000 प्रतियां मुद्रित



वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

खण्ड - 2 भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना

| भारतीय अर्थव्यवस्था की सरचना | | | |
|------------------------------|--|---------|--|
| इकाई 18 | क्षेत्रीय विकास के सूचक : आंकड़ों के स्त्रोत एवं बाधाएं | 10–48 | |
| इकाई 19 | भारत के प्रमुख प्राकृतिक संसाधन एवं उनका प्रादेशिक वितरण | 49–64 | |
| इकाई 20 | औपनिवेशिक काल में भारतीय प्रादेशिक संरचना का उद्भव | 65–75 | |
| इकाई 21 | कृषि विकास : परिवर्तनशील क्षेत्रीय संरचना | 76–94 | |
| इकाई 22 | औद्योगिक विकास : परिवर्तनशील क्षेत्रीय संरचना | 95-107 | |
| इकाई 23 | सामाजिक आर्थिक आधारभूत ढ़ाँचे के विकास में क्षेत्रीय असंतुलन | 108–119 | |
| इकाई 24 | राज्यों के अन्तर्गत अंतः क्षेत्रीय विषमताएं | 120–142 | |
| | (राजस्थान के विशेष संदर्भ में) | | |
| भारत में क्षेत्रीय नियोजन | | | |
| इकाई 25 | भारत में नियोजन प्रक्रिया के क्षेत्रीय आयाम | 143–158 | |
| इकाई 26 | भारत में बहु स्तरीय नियोजन | 159–178 | |
| | (राज्य स्तर तथा जिला स्तर नियोजन के विशेष संदर्भ में) | | |
| इकाई 27 | नगर एवं महानगर नियोजन | 179–195 | |
| इकाई 28 | ग्रामीण शहरी समन्वय के लिए नियोजन | 196–210 | |
| इकाई 29 | अंचल क्षेत्रीय साधन विकास की योजनाएं | 211–221 | |
| इकाई 30 | जिला एवं नीचे के स्तर पर विकेन्द्रित नियोजन | 222–231 | |
| इकाई 31 | भारत में क्षेत्रीय विकास योजनाएं | 232–255 | |
| | | | |

खण्ड परिचय

इकाई संख्या 18 में उन उद्देश्यों को विस्तृत रूप से समझाया गया है जिनकी प्राप्ति के लिए क्षेत्रीय विकास के अध्ययन का महत्व है । इसमें अविकसित क्षेत्र, अल्पविकसित क्षेत्र और विकसित क्षेत्रों के अर्थ एवं विशेषताओं की विस्तृत व्याख्या की गयी है । इसमें अल्प विकास की विशेषताओं की विस्तृत विवेचना करने के साथ-साथ आर्थिक विकास और उसके कारकों की भी विस्तृत व्याख्या की गयी है । इस इकाई में क्षेत्रीय विकास के सूचक बताने के साथ-साथ औद्योगिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों की पहचान के लिए नियुक्त पाण्डे समिति एवं चक्रवर्ती समिति द्वारा दी गई रिपोर्टो की भी विस्तृत व्याख्या की गयी है । इसमें अन्तर्राज्यीय असमानताओं के बारे में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. राजकृष्ण द्वारा प्रस्तुत लेख "केन्द्र एवं परिधी" की चर्चा भी की गयी है । इस इकाई में विकास के सूचकों को बनाने की क्रिया विधि भी समझायी गयी है ।

इकाई संख्या 19 में भारत के प्रमुख प्राकृतिक संसाधन एवं उनके प्रादेशिक वितरण की विस्तृत विवेचना की गयी है । इसमें यह बताया गया है कि वर्तमान में किसी भी आर्थिक गतिविधि का अध्ययन करने के लिए प्रादेशिक दृष्टिकोण अपनाया जाता है । क्योंकि आर्थिक गतिविधियाँ प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर हैं इसलिए प्राकृतिक संसाधनों का भी प्रादेशिक या क्षेत्रीय अध्ययन आवश्यक हो जाता है । इस इकाई में प्राकृतिक संसाधन जैसे भूमि, वन, शिक्त, खिनज एवं जल इत्यादि भारत में कहां-कहां उपलब्ध हैं, इसकी विस्तृत व्याख्या की गयी है ।

इकाई संख्या 20 में औपनिवेशिक काल में भारतीय प्रादेशिक संरचना के विकास की विस्तार से व्याख्या की गयी है । इस इकाई में अठारहवीं शताब्दी में भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है और उपनिवेशवाद के चरणों की व्याख्या की गयी है । अंग्रेजों द्वारा अपनायी गयी राजस्व प्रणालियों की व्याख्या करने के साथ-साथ अंग्रेजों द्वारा किये गये कृषि के व्यवसायीकरण एवं पनपते हुए शहरीकरण पर भी प्रकाश डाला गया है ।

इकाई संख्या 21 में कृषि विकास के बदलते हुए प्रादेशिक स्वरूप की व्याख्या की गयी है। इसमें यह बताया गया है कि देश की कृषि उत्पादन क्षमता में क्या परिवर्तन आये हैं, और देश में कृषि उत्पादन का प्रादेशिक स्वरूप क्या है। इस इकाई में तालिकाओं के माध्यम से सम्पूर्ण देश की एवं राज्यों की प्रतिहैक्टर मूल्य उत्पादकता भी विस्तार से समझायी गयी है। इसके साथ-साथ देश में प्रादेशिक स्तर पर फसलों के ढाँचे में जो परिवर्तन आये है उनके बारे में भी बताया गया है। नयी कृषि नीति की चर्चा भी की गयी है। और सिंचाई के साधनों के विकास की व्याख्या भी की गयी है।

इकाई संख्या 22 में औद्योगिक विकास की क्षेत्रीय संरचना के परिवर्तनशील स्वरूप की विस्तार से व्याख्या की गयी है। इस इकाई में भारत की औद्योगिक सरचना पर प्रकाश डाला गया है। इसमें यह बताया गया है कि संतुलित क्षेत्रीय विकास की क्या आवश्यकता है, और क्षेत्रीय औद्योगिक विकास के क्या उद्देश्य है? इस इकाई में क्षेत्रीय औद्योगिक विकास के स्वरूप की चर्चा करने के साथ उद्योगों के क्षेत्रीयकरण एवं क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की व्यह रचना

पर भी प्रकाश डाला गया है । इसके साथ ही क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की दिशा, संरचना एवं संरचना में आए परिवर्तनों पर भी चर्चा की गयी है ।

इकाई संख्या 23 में सामाजिक व आर्थिक आधार ढाँचे के विकास में क्षेत्रीय असंतुलन की व्याख्या की गई है । इसमें आधार ढाँचे का अर्थ, इसकी भूमिका एवं इसके माप की विवेचना की गयी है । इसमें क्षेत्रीय असमानताओं को समझाने के लिए आर्थिक आधार ढाँचे के सूचकांक सामाजिक आधार ढाँचे के सूचकांक एव मिले-जुले आधार ढाँचे के सूचकांकों को तैयार कैसे किया जाता है इस पर चर्चा की गयी है ।

इकाई संख्या 24 में राजस्थान में अंतः क्षेत्रीय विषमताओं के बारे में बताया गया है । इस इकाई में राजस्थान में अन्तः क्षेत्रीय विषमताओं के सूचक जैसे- जनसंख्या, औद्योगिक विकास, खिनज संसाधन, शिक्त संसाधन, सड़कों के विकास एवं कृषि पर विस्तृत रूप से चर्चा की गयी है । इसमें क्षेत्रीय असमानताओं के कारण एवं इन्हें कम करने के सुझाव भी बताये गये हैं ।

इकाई संख्या 25 में भारत नियोजन प्रक्रिया आयाम की विस्तृत विवेचना की गयी है। इसमें क्षेत्रीय असंतुलन के कारणों जैसे-ऐतिहासिक कारण, प्राकृतिक कारण एवं आयोजन में संतुलित विकास के अभाव के कारण की चर्चा की गयी है। इस इकाई में क्षेत्रीय असन्तुलन के सूचकों पर प्रकाश डाला गया है, और कृषि क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र एवं सेवा क्षेत्र में पाये जाने वाले क्षेत्रीय असन्तुलन के बारे में जानकारी देते हुए संतुलित विकास एवं असमानताओं को कम करने के उपाय भी बताये गये है।

इकाई संख्या 26 में भारत बहु-स्तरीय नियोजन पर चर्चा की गयी है । इसमें विश्व-अर्थव्यवस्थाओं में पायी जाने वाली विभिन्न प्रकार की नियोजन प्रणालियों पर प्रकाश डाला गया है और पिछड़े क्षेत्रों और अर्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए नियोजन तकनीक की व्याख्या करने के साथ-साथ भारत में नियोजन की विधियों एवं संगठन की भी विवेचना की गयी है ।

इकाई संख्या 27 में नगर एवं महानगर नियोजन की विस्तृत विवेचना की गयी है। इस इकाई में नगरों एव महानगरों की प्रमुख समस्यायें बताते हुए इनके नियोजन पर भी चर्चा की गयी है साथ ही समन्वित अंचल क्षेत्रीय नियोजन की भी व्याख्या की गयी है।

इकाई संख्या 28 में ग्रामीण-शहरी सम-वय के लिये नियोजन की व्याख्या की गई है। इस इकाई में ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर प्रवास की प्रवृत्ति के कारण, इस प्रवृत्ति के गुण, इसके दोष व कमियाँ एवं इस अन्तर्गमन के प्रभावों पर विस्तृत विवेचना की गयी है।

इकाई संख्या 29 में साधन विकास की योजनाओं की व्याख्या की गयी है । इसमें साधन विकास की योजनाओं पर प्रकाश डालते हुए क्षेत्रीय नियोजन की भी व्याख्या की गयी है। इसमें आयोजना क्षेत्रों की विभाजन पर चर्चा करते हुए नदी घाटी परियोजनाओं एवं वाटरशैड प्रबंधन की भी विवेचना की गयी है।

इकाई संख्या 30 में जिला स्तर के विकेन्द्रित नियोजन की विवेचना की गयी है । इस इकाई में जिला नियोजन का अर्थ उसका राष्ट्रीय, राज्यीय, अंचल क्षेत्रीय व बहु स्तरीय नियोजन से समन्वय पर व्याख्या प्रस्तुत की गयी है । इकाई संख्या 31 में भारत में क्षेत्रीय विकास योजनाओं पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। इसमें सूखा आशंकित क्षेत्र कार्यक्रम मरूस्थल विकास कार्यक्रम पर्वतीय क्षेत्र विकास योजनाओं एवं जनजाति क्षेत्रीय विकास योजनाओं पर विस्तृत रूप से विवेचना की गयी है।

इकाई 18

क्षेत्रीय विकास के सूचक : आँकड़ों के स्रोत एवं बाधाएं

इकाई की रूपरेखा

- 18.0 उद्देश्य
- 18.1 प्रस्तावना
 - 18.1.1 अविकसित क्षेत्र
 - 18.1.2 अल्पविकसित क्षेत्र
 - 18.1.3 विकसित क्षेत्र
 - 18.1.4 आर्थिक विकास और इसके कारक
- 18.2 क्षेत्रीय विकास के सूचक
 - 18.2.1 भारतीय आर्थिक एवं वैज्ञानिक अनुसंधान संस्थान
 - 18.2.2 पाण्डे समिति
 - 18.2.3 चक्रवर्ती समिति
 - 18.2.4 पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिए राष्ट्रीय समिति
 - 18.2.5 प्रो॰ राजकृष्ण का लेख
 - 18.2.6 कृषि क्षेत्र के विकास के सूचक
 - 18.2.7 औद्योगिक विकास के सूचक
 - 18.2.8 बैकिंग विकास के सूचक
 - 18.2.9 परिवहन एवं संचार विकास कें सूचक
 - 18.2.10 सामाजिक विकास के सूचक
 - 18.2.11 शिक्षा के विकास कें सूचक
 - 18.2.12 स्वास्थ्य विकास के सूचक
 - 18.2.13 राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय विकास के सूचक
- 18.3 विकास कें सूचकों को बनाने की क्रिया विधि
- 18.4 निबन्धात्मक प्रश्न
- 18.5 सारांश
- 18.6 शब्दावली
- 18.7 कुछ उपयोगी पुस्तके

18.0 उद्देश्य

सामान्यतया विभिन्न देशों कें, एक ही देश के (Same Country) विभिन्न भागों (Parts) के या एक ही देश के समान भाग के विभिन्न क्षेत्रों (Different regions) के औसतन व्यक्तियों के जीवन निर्वाह स्तर (Levels of living) कभी भी बहुत ज्यादा समान नहीं रहे है। उनमें आज भी उतनी ही विभिन्नताएं है जितनी पहले थी । यद्यपि अल्पविकसित क्षेत्रों

(Underdeveloped regions) या अल्पविकसित देशों (Underdeveloped Countries) में दोनों ही स्थितियों में कम या अधिक समान विशेषताएं पाई जाती है चूकि पूर्व की स्थितियों के आंशिक चित्रण के कारण एक अल्पविकसित देश का क्षेत्र एक अल्पविकसित क्षेत्रफल (Underdeveloped area) या राष्ट्र से भिन्न है जबिक बाद कि स्थितियों में एक देश की सम्पूर्ण घटनाक्रम (Phenomenon) को प्रस्तुत करती है । कई देश जिन्होंने अल्पकाल में ही आर्थिक विकास (Development) को एक स्पष्ट लक्ष्य माना एवं प्राप्त भी किया इससे यह बात एक प्रमाण के रूप मे सामने आई है कि विकास के अर्थशास्त्र की आवश्यकता है । और इसकी और भी ज्यादा आवश्यकता क्षेत्रीय विकास के संबंध (Regional consideration) में है, यद्यपि क्षेत्र जो, कि आर्थिक विकास में न केवल सैद्धांतिक (Theoritical) वरन् व्यावहारिक (Practical) रूप से भी आवश्यक है । अभी तक इस दिशा में उपेक्षित (neglected) होता रहा है क्षेत्रीय अध्ययन किसी भी देश की चाहे वो भारत हो या अन्य दूसरा राष्ट्र, उस देश की भौगोलिक विशेषता (Geographical Characteristics) एवं राजनीति शास्त्र (Political philosophy) की स्थानीय (Local) एवं राष्ट्रीय (National) योजनाओं के लिए न केवल महत्वपूर्ण है वरन् आवश्यक (essential) भी है । क्षेत्रीय विकास के अध्ययन का महत्व निम्न उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु महत्वपूर्ण है : —

विकास योजनाओं के लिए मार्ग दर्शन हेतु (Guidelines for Development Plans)

किसी राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के आर्थिक विकास में क्षेत्रीय विषमताओं (Regional disparities) का अध्ययन हमें उस विशेष क्षेत्र (Particular Region) की क्षमताओं (Capacities) के साथ उन परिस्थितयों (Circumstances) एवं वातावरण (environment) को स्पष्ट करता है जिससें कि उस राज्य या देश के नियोजकों (Planners) या सरकार को उस राज्य या देश के संतुलित आर्थिक विकास की एक विशिष्ट क्षेत्र की विकास योजनाएं बनाने में मदद मिलती है।

शहरीकरण की समस्याओं से छुटकारा पाना (Overcoming the Problems of Urbanisation)

देश का असंतुलित विकास (Unbalanced development) अवसरो (opportunities) की समस्या विकसित एवं औद्यौगिक क्षेत्रों (Developed industrial Regions) की ओर पलायन करना (Migrate) जो कि ज्यादा बड़े शहरो में जाकर केन्द्रित होते है और घनी आबादी (extreme congestion) व स्थानीयकरण (Localisation) और शहरीकरण (Urbanisation) से संबंधित सभी प्रकार की बुराइयों में वृद्धि करता है। एक प्रकार से यह समस्या इन क्षेत्रों के लिए एक विकृति या तनाव (Strain) पैदा करती है तो दूसरी ओर यह एक प्रकार से योग्यता को बाहर (ability drain) करती है और नियमित रूप से गरीबी को बढ़ाता है जो कि प्रभावित क्षेत्र के व्यक्तियों द्वारा पलायन (Migrating) करने से होती है। आंतरिक संघर्षों को दूर करने के लिए (For avoiding internal conflicts)

जब तक किसी देश का संतुलित विकास (balanced development) नहीं होता तब तक उस अर्थव्यवस्था पर क्षेत्रीय असमानताएं (Regional disparities) इसके विपरीत प्रभाव डालते है। एक असंतुलित अर्थव्यवस्था में विकसित क्षेत्र (Developed regions) अविकसित क्षेत्र (Underdeveloped regions) को ढक लेता है और अविकसित क्षेत्र पिछड़ेपन में चला जाता है और आर्थिक विकास का नियमित भाग होने के बावजूद भी उपेक्षित (Neglected) रह जाता है। और उपेक्षित भावना के कारण ही यहां के क्षेत्रों के व्यक्तियों के अन्दर निकृष्टता की भावनाएं या निम्न स्तरीय भावनाएं (inferiority complex) उत्पन्न हो जाती है। वे या तो बहुत ही नम या आज्ञापरायण (mild or decide) हो जाते हैं या फिर अत्यन्त असाधारण आश्चर्यजनक रूप से विरोध (Hostile & decide) करने वाले हो जाते है। यही स्थिति या दशा देश में संघर्ष (Struggle) और अंतरिक दन्द (Internal disputes) को उत्पन्न करती है।

बेरोजगारी की समस्या से छुटकारा पाने के लिए (For overcoming Unemployment Problems)

अविकसित देशों में बेरोजगारी (Unemployment) एवं छिपी हुई बेरोजगारी (disguished unemployment) विस्तृत रूप से फैली हुई है। शहरी बेरोजगारी शहरीकरण और शिक्षा (Urbanisation and Education) के बढ़ने सें बढ़ती है। लेकिन औद्योगिक क्षेत्र (Industrial regions) श्रमशक्ति (Iabour force) के विकास की वृद्धि में असफल रहा है जिससे शहरी बरोजगारी बढ़ रही है। शिक्षित बेरोजगारी तभी बढ़ी है जबिक शिक्षित व्यक्ति संरचनात्मक अनम्यताओं (Structural rigidities) एवं जन-शक्ति नियोजन (Man-Power planning) की कमी सें कार्य या रोजगार पाने में असफल रहते है। यह समस्या सभी क्षेत्रों (Regions) की विकास की भावी संभावनाओं (Potentialities) के अध्ययन के आधार पर दूर की जा सकती है।

क्षेत्रीय एवं राष्टीय ध्येयों (लक्ष्यों) में समन्वय (Coordination between regional and National ends)

सभी विकास कार्य क्रम चाहे वे स्थानीय (Local), हो क्षेत्रीय (Regional) हो या राष्ट्रीय (National) स्तर पर नियोजित हो, सभी एक दूसरे से संम्बन्धित (Correlated) है तथा आपस में एक दूसरे से जुड़े हुए (interlinked) होते है। तीनों स्तर आपस में एक दूसरे के पूरक (Complimentary) एवं सह—अस्तित्व (Co–existance) के होने चाहिए। विकास की समस्या से संम्बन्धित राष्ट्रीय दृष्टिकोण (National approach) क्षेत्रीय नियोजन (regional Planning) पर आधारित होना चाहिए। इस तथ्य पर अब इसलिए जोर दिया जाने लगा है क्योंकि यह माना जानें लगा है कि क्षेत्रीय दृष्टिकोण राष्ट्रीय योजनाओं के लिए केवल विकास संसाधनों को ही नहीं बल्कि चक्रीय (Cyclical), मौद्रिक (Monetary) एवं राजकोषीय नीतियों (Fiscal Policies) को भी बनाती है।

समाज का अध्ययन (Study of Society)

क्षेत्रीय विकास के लिए समाज का अध्ययन एक अर्थव्यवस्था की आवश्यकता है सामाजिक विचारधार क्षेत्रीय एवं उपक्षेत्रीय (Sub Regional) असंतुलन को संशोधित करती है एवं समायोजित करनी है। पिछड़े क्षेत्रों में यह भावना बढ़ रही हैं कि विकास कार्यक्रम के क्रियान्वयन में (Implemantation) या लागू करने में उन्हें ज्यादा प्राथकिता नहीं दी जाती है। ना तो सार्वजिनक क्षेत्र में सरकार ने और ना ही निजी क्षेत्र ने इस और कोई जिम्मेदारी ली है। क्षेत्रीय विकास की योजनाएं बिना किसी व्यापक धारणा के बना ली जाती है। और इन विकास योजनाओं के क्रियान्वयन को निश्चित रूप से लागू किया जाता है जो कि पिछड़े क्षेत्रों को जरा तसल्ली या संतोषजनक स्थिति प्रदान नहीं करती। लेकिन यदि इन विकास योजनाओं का सही तरह सें विश्लेषण करके और कम विकसित या धीमी गित से विकास कर रहे क्षेत्रों की सही पहचान कर नियोजन किया जाता है तो नि:सन्देह इस समस्या को दूर किया जा सकता है। इन क्षेत्रों, में कल्याणकारी व्यय (Welfare expenditure) में आरोही वृद्धि (Progressive increase) करना इस दिशा में संतोषजनक कदम होगा जो इन क्षेत्रों को राहत भी दे सकता है। लेकिन अर्थव्यवस्था में इस दिशा में एक स्थायी सुधार (Permanent improvement) तभी हो सकता है जब इन क्षेत्रों के व्यक्तियों की मूलभूत आवश्यकताओं के अनुसार प्रभावित क्षेत्रों में पर्याप्त व प्रच्र मात्रा में उदयोगों को स्थापित किया जाये।

जनजातीय क्षेत्रों का अध्ययन (Study of Tribal areas)

किसी भी देश का विकास बहुत कुछ वहाँ कि जनसंख्या की प्रकृति (Nature of Population) व स्वभाव पर निर्भर करता है । पिछड़ी जनसंख्या व जनजातीय जनसंख्या (Tribal Population) का उच्च प्रतिशत पाया जाना भी विकास की दर को प्रभावित करता है। उनकें जीवन जीने का तरीका, रहन—सहन का तरीका, सोचने—विचारने का तरीका पूर्ण—रूपसे भिन्न होता है । वे आज भी वैसे ही है जैसे वर्षों पूर्व थे । अर्थात् बिना रहन—सहन सुधारे, खान—पान, सोच की दिशा भी वैसे ही रखें, यथावत् है अत : क्षेत्रीय अध्ययन के द्वारा इन जनजातिय क्षेत्रों (Tribal) को देखना एक आवश्यकता बन गई है ।

अर्थव्यवस्था का तेजी से एवं निर्बाध गति से विकास (To develop the economy rapidally and smoothly)

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की प्रगति उस राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों की प्राप्त वृद्धि दर से परिलक्षित होती है। यदि सभी क्षेत्र समान रूप से विकसित हो और एक दूसरे क्षेत्रों की मदद करते रहे तो अर्थव्यवस्था रूपी नाव बिना किसी बाधा के निरन्तर आगे बढ़ सकती है। लेकिन यदि एक क्षेत्र विकसित है दूसरा पिछड़ा हुआ है तो पिछड़े क्षेत्र उत्तरोतर काल में उत्पादों की पर्याप्त मांग कें अभाव में (lack of adequate product) दूसरे क्षेत्रों के विकास को भी शिथिल (retard) कर देते है या कुचल देते है।

संसाधनों का विकास एवम् संरक्षण करना (To develop and conserve resources)

क्षेत्रीय विकास का लक्ष्य उपलब्ध संसाधनों (available resources)को अधिकतम् कुशलता के साथ दोहन करने या प्रयोग मे लाने (Utilisation) का लेना चाहिए । एक देश के साधनों मे खिनजों (minerals), वन—सम्पदा (Forests), कृषि (Agricultural), और मानवीय संसाधनों (Human resources) का पूर्ण रूपेण, उपयोग एवम् संरक्षण (Conservation) होना चाहिए ।

औद्योगिक विकास के अध्ययन मे महत्वपूर्ण (Improtant in the study of industrial development)

भारत एक कृषि प्रधान देश है, वह विश्व के विकासशील देशों में से एक देश है यदि हम विकसित राष्ट्रों (developed countries) की श्रेणी में आना चाहते है तो भारत को अपना औद्योगिक रूप से विकास करना होगा । अर्थव्यवस्था के मुख्य भाग प्राथमिक (Primary) और सामाजिक क्षेत्र (Social Sector) है । ये सभी क्षेत्र एक देश की विकास योजनाओं का निर्माण करते है । आर्थिक योजना में मुख्य रूप से औद्यौगिक विकास के बिना आर्थिक विकास की बात भी नहीं की जा सकती । अत : यह भाग विकास के अध्ययन में विशेषतया महत्वपूर्ण है ।

इस प्रकार के अध्ययन की कर्मी (Lack of such studies)

क्षेत्रीय विकास का अध्ययन और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि इस दिशा में अध्ययन अित महत्वपूर्ण होने के बावजूद भी इस विषय के साहित्य की कमी है। अधिकांश शिक्षक और शिक्षार्थी जो कि सम्पूर्ण देश से सम्बंधित आर्थिक समस्याएं जो देश के लिए चिन्ता जनक है, के बारे में बहुत कुछ जानते हैं, लेकिन हम हमारे क्षेत्र या देश के किसी एक विशेष क्षेत्र के बारे में पर्याप्त भी नहीं जानते (not sufficiently) क्योंकि इस ओर जानकारी प्राप्त करने के लिए ना तो पर्याप्त विषय वस्तु ही उपलब्ध है, ना ही इस विषय पर पर्याप्त साहित्य है। विकास के इस महत्वपूर्ण भाग के लिए समंको (data) एवं सूचनाओं (informations) की अत्यंत कमी है डा. वी. के. आर. वी. राव (DR.V.K.R.V.) के शब्दों में, आर्थिक विकास के क्षेत्रीय अध्ययन की अनुपस्थिति या न पाया जाना भारतीय आर्थिक साहित्य या ज्ञान मे एक गम्भीर कमी है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों में समपूर्ण भारत की दशाओं के बारे में सोचने व लिखने की प्रवृति है जबिक निःसन्देह सम्पूर्ण भारत का अध्ययन आवश्यक भी है, यहाँ तक कि यह क्षेत्रीय अध्ययनों के लिए और भी महत्वपूर्ण बन गया है। यदि हम समपूर्ण देश के संतुलित विकास की समस्या को हल करना चाहते है तो क्षेत्रीय अध्ययनों की आवश्यकता और भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाती है।

18.1 प्रस्तावना

सूचक (संकेत), अध्ययन की आवश्यकता व उददेश्य के अनुसार सूचना दर्शाने वाला, सूचना बताने वाला या जलवायु या भौगोलिक अवयवों को दर्शाने की विधि है। भारतीय संदर्भ में एक क्षेत्र (region) का अर्थ भारतीय संघ मे एक राज्य या प्रान्त (State) से है, प्रान्त या राज्य के संदर्भ में यह एक जिला (District) भी हो सकता है। और अग्रिम स्थितियों में यह एक देश के राज्य का पिछड़ा या अग्रणी (backward or forward) क्षेत्रफल (area) भी हो सकता है।

क्षेत्रीय विभिन्नतायें प्रत्येक देश व राज्य के लिए भौतिक प्राकृतिक दृश्य (Physical Land scape) के कारण अपरिहार्य (inevitable) हो जाती है क्षेत्रीय असमानताएं (regional

disparities) इसलिए भी पाया जाती है क्योंकि विभिन्न राज्यो और देशों का विकास भिन्न होता है। यद्यपि क्षेत्र और देश की दशाओं में अन्तर पाया जाता है। परन्तु फिर भी कुछ समान विशेषताएं दोनों पर समान रूप से लागू होती है अर्थात् विभिन्नताओं के बावजूद भी किन्ही विशेषताओं या लक्षणों में वे समान पाए जाते है। क्षेत्रों को उनके विकास स्तरों के आधार पर तीन मुख्य श्रेणियों (Categories) में वर्गीकृत किया जा सकता है।

इन विभिन्न श्रेणियों के विकास के स्तरों को निर्धारित करने से पूर्व इन विभिन्न श्रेणियों के अर्थ एवंम विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है।

18.1.1 अविकसित क्षेत्र (undeveloped Regions)

एक अविकसित क्षेत्र या भाग वह है जो पूर्णतया पिछड़ा हुआ है और आर्थिक (economically), सामाजिक (Socially) एवं राजनैतिक (Politically) रूप से अविकसित है।

ये अविकसित दशाएं प्ंजी संसाधनों (Capital resources) की कमी या मानवीय संसाधनों की कमी (Lack of human resources) से हो सकती है। यह भी हो सकता है कि ये क्षेत्र विकास की जिम्मेदारी की सामर्थ्य ही नहीं रखते हो और इसीलिए अविकसित रहें हो या पर्याप्त पनप नहीं पाए हों। एक समय था जबिक सभी क्षेत्र अविकसित थे परन्तु उनमें से कुछ विशेष निश्चित क्षेत्र ही आज अविकसित रह गए है।

18.1.2 अल्पविकसित क्षेत्र (Underdeveloped Regions)

अल्पविकसित क्षेत्र की परिशुद्ध या यथार्थ (Precisely) परिभाषा देना सरल नहीं है । जैसा कि डब्ल्यू—डब्ल्यू, सिंगर (W.W.Singer) का मत है— "एक अल्पविकसित या अर्धविकसित राष्ट्र एक जिराफ की भाँति है...... जिसका वर्णन करना कठिन है परन्तु उसको देखकर ही उसे जाना जा सकता है " अर्द्धविकसित या अल्पविकसित राष्ट्रों की दशाओं के आधार पर कई परिभाषाएं दी गई है । यहाँ उनमें से केवल पूँजीगत आय को दिया गया है । अल्पविकसित देशों के लिए हम निम्न शब्दावली (term) प्रयोग में लाते है । ऐसे देश जिनकी प्रति व्यक्ति वास्तविक आय (per capital real income) संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, और पश्चिमी यूरोप (Western Europe) की तुलना में कम है :

यूजेन स्टेले (Eugene Staley) ने अल्पविकसित राष्ट्रों को परिभाषित करते हुए लिखा हैं कि, "एक देश या राष्ट्र जहाँ की मानवीय गरीबी (Human Poverty) शुरू से ही चली आ रही है केवल अस्थाई कालिक दुर्भाग्य (temporary misfortune) का परिणाम नही है । और जो उत्पादन ओर सामाजिक संगठन (Social organisation) की निरपेक्ष विधियों द्वारा होती है तथा जिसका अर्थ यह है कि राष्ट्र प्राकृतिक संसाधनों की निम्न्ता के कारण पूर्ण रूप सें पिछड़े नहीं हैं बल्कि वहाँ प्राकृतिक संसाधन तो प्रचुर मात्रा मे है परन्तु वे अन्य देशों द्वारा अपनाएं गए तरीकों को काम में नहीं ला रहे है अर्थात् प्राकृतिक संसाधनों का पूर्ण रूपेण कुशलता से विदोहन (Fully Utilisation) नहीं कर पा रहे है । अत : उनमें विकास की संभावनाएं (Potentialities) है ।

अल्पविकास की विशेषताएँ (Characteristics of under developed regions)-

एक अल्पविकसित देश की बहुत सी विशेषताएँ अल्प विकास के आधार पर किण्डलबर्गर (Kindle berger), मेयर (Meire), बाल्डविन (Baldwin), एल. डब्ल्यू. शेनन (L.W.Shenon), लीबीन्सटीन (Leibenstin), और अन्य कई लेखको ने दी है । उनमे में कुछ या सभी विशेषताए अल्पविकसित क्षेत्रों में वर्तमान मे पायी जाती है एवं ये ही अल्पविकास को मापती है । स्विधा के लिए इन्हें निम्न शीर्षक या बिन्दुओं में क्रमबद्ध किया जा सकता है—

- (1) भूमि और कृषि से संबंधित विशेषताएँ (Concerning land and agriculture)
- (2) श्रम एवं जनांकिकी से संबंधित विशेषताऐं (Concerning labour and demography)
- (3) पूजी से संबंधित (Concerning Capital) विशेषताएं
- (4) संगठन (Organisation), तकनीकी (Technique) एवं उपक्रम (Enterprise) से संबंधित विशेषताएँ ।
- (5) व्यापार (Trade) एवं बाजार (विपणन) (Marketing) से संबंधित विशेषताएं ।
- (6) आर्थिक (Economic) सामाजिक (Social) एवं राजनीतिक व्ययों (Political overheads) सें संबंधित विशेषताएं ।
- (7) अन्य विशेषताएं (other characteristics)

इन विशेषताओं पर निम्न बिन्दुओं के आधार पर सविस्तार विचार किया जा सकता है-

- 1. भूमि एवम् कृषि से संबंधित विशेषताएँ (Characteristics concerning land and agriculture) प्रो॰ किण्डलबर्गर (Kindleberger) के शब्दों में "अल्पविकसित देशों में पूँजी व नयी तकनीकीय कुशलता की कमी (lack of capital and innovational skills)के कारण भूमि विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाती है "
- 1.1 अल्पविकसित प्राकृतिक संसाधन (Underdeveloped Natural Resources) एक अल्पविकसित क्षेत्र में सामान्यतय : प्राकृतिक संसाधन (Natural Resources) जैसे भूमि, जल, खिनज, वन—सम्पदा, ऊर्जा के स्रोतो आदि की कमी होती है जबिक विकास की संभावनाएं (Potentialities) विद्यमान रहती हैं । भारत में प्राकृतिक संसाधनों का एक बहुत बड़ा भाग अप्रयुक्त किया हुआ रहता है । भारत में प्राकृतिक संसाधन प्रचुर मात्रा मे है यदि उनका दोहन पूर्ण कुशलता से किया जाये तो इस विशिष्ट क्षेत्र के विकास को एक नयी दिशा मिल सकती है ।
- 1.2 कृषि उन्मुख एवं प्राथमिक उत्पादन (Agricultural Oriented and Primary Production) अल्पविकसित क्षेत्रों के व्यक्तियों का मुख्य व्यवसाय कृषि है, इन क्षेत्रों में व्यक्ति खोज करने का स्थित (hunting stage) में नहीं होते क्योंकि बहुत ज्यादा विकसित नहीं है परंतु वे कृषि उपज की स्थिति में होते है और कच्चेमाल (raw material) एवं खाद्य पदार्थ (food stuffs) में प्रभुत्व रखते हुए उत्पादन की संरचना मे अपना योगदान देते है । कई अल्पविकसित क्षेत्र अकृषि क्षेत्र के प्रमुख उत्पादन (non

- agricultural primary production) जैसे— खिनज या वन संसाधनों पर अत्यधिक निर्भर रहते है । औद्यौगिक उत्पादनों में मुख्यतया कृषि उत्पाद (Agricultural Products), कृषि उपकरणों (Agricultural equipments) का उत्पादन, कम महत्वता वाले पारंपरिक हस्तिशिल्प उद्योग (minor importance and traditional handicrafts) और हल्के उद्योगों को सिम्मिलित किया जाता है।
- 1.3 कृषि उपज कम होना (Low Agricultural Yield) विकसित क्षेत्रों की तुलना मे इन क्षेत्रों में प्रति एकड़ कृषि उत्पादकता या उत्पादन क्षमता (Productivity) कम पायी जाती है । प्रति व्यक्ति उत्पादन भी कम होता है क्योंकि प्रति एकड़ जमीन पर काम करने वाले श्रमिकों की मात्रा कम होती है । कुछ श्रम जो उत्पादन में लगा है शून्य के बराबर उत्पादन करता है । प्रति एकड़ कम उत्पादन के लिए जो कारक जिम्मेदार है जैसे— भूमि का श्रम से कम अनुपात मे होना अर्थात् अतिरिक्त श्रम का पाया जाना, भूमि के प्रयोग करने की अकुशलता (inefficient land use patterns) पूँजी की कमी, खेती (farming) पारंपरिक एवम् अकुशल तकनीक (Primitive and ineffective technique) उत्पादन की आधुनिक विधियों को प्रयोग मे लाने हेतु शिक्षा एवम् प्रशिक्षण का अभाव, कृषि उत्पादन संगठन (Organising agricultural product)का अकुशल तरीका, भूमि स्वामित्व प्रणाली (Land ownership system) आदि इन सभी कारकों के कारण अल्पविकसित देशों मे कृषि / खेती ही एक मात्र विकापार्जन का साधन है जो कि लाभदायक व्यवसाय (Profitable occupation) नहीं है ।
- 1.4 छिपी हुई बेरोजगारी व कृषकों की ऋण ग्रस्तता (Disguised unemployment and debtness of agriculturists)— अल्पविकसित क्षेत्रों में कृषि स्थाई धन्धा न होकर मौसमी (Seasonal) व्यवसाय है। कृषक एक वर्ष में लगभग छः माह रोजगार रहित रहता है। भूमि पर जनसंख्या के बढ़ते दबाव के कारण भूमि के एक टुकड़े पर कार्य करने वाले श्रमिकों की संख्या बहुत ज्यादा होती है। वास्तव में जितनी श्रम शक्ति चाहिए उससे ज्यादा श्रम शक्ति कार्य में लगी रहती है। अर्थात् लगे श्रमिकों का उत्पादन शून्य होता है। उन्हें यदि कृषि कार्य से हटा भी दिया जाये तों उत्पादन प्रभाव रहित रहता है, और वास्तव में यही छिपी हुई बेरोजगारी है। लुईस (A.W.Lewis) ने अपने परिक्षणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि कृषि जनसंख्या का कम से कम एक चौथाई भाग अतिरिक्त श्रम के रूप में कृषि में लगा रहता है ओर जिन्हें कोई कृषि आय नहीं होती और यह कृषि आय में कमी ही कृषकों को ऋण ग्रस्तता के जाल में (clutches of debts) धकेलती है।
- 1.5 कृषि उत्पाद की अनिश्चितता (Uncertainty of agricultural Products)— अल्पविकसित क्षेत्रों में कृषि प्रमुख रूप से मानसून पर निर्भर रहती है उपयुक्त सिंचाई सुविधाओं (Proper irrigation) एवंम् अन्य सुविधाओं के अभाव में, मानसून के असफल होने, या अन्य रूप से दूसरे प्राकृतिक प्रकोपों के कारण कृषि उत्पादकता तेजी से घटती है। जो पहले से चले आ रहे निम्न जीवन निर्वाह स्तर के लिए और भी खतरनाक या नुकसान देह हो जाती है।

- 1 श्रम एवं जनांकिकी (जनसांख्यिकी) से संबंधित विशेषताऐं (Characteristics concerning Labour and demogrphy)
- 2.1 जनसंख्या दबाव (Population Pressure)— अल्पविकसित देशों में भूमि पर जनसंख्या का दबाव इतना बढ़ गया है कि उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों एवं पूंजी की उपलब्धता जो कि दी हुई रहती है पर व्यक्ति केवल मात्र जीवित रहने योग्य ही उत्पादन कर पाता है। और यहाँ तक कि यदि उत्पादन बढ़ता भी है तो जीवन निर्वाह स्तर को बढ़ाने में पर्याप्त नहीं रहता क्योंकि जनसंख्या और बढ़ जाती है। अर्थात् बढ़ा हुआ उत्पादन बढ़ी हुई जनसंख्या के कारण श्रमिकों के जीवन —निर्वाह स्तर को नहीं सुधार पाता।
- 2.2 आधारिक (अपरिपक्व) विशाल आयु संरचना (Bottom Heavy age Structure)— अल्पविकसित क्षेत्रों की जनांकिकी प्रारूप की एक मुख्य विशेषता यहाँ की निम्न (आधारिक) आयु संरचना का पाया जाना है। इसका अर्थ यह है कि कुल जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग अनुभवहीन / कच्ची / अल्पवयस्क आयु समूह (Younger age group) का पाया जाना है। अर्थात कुल जनसंख्या में अपरिपक्व (immature) जनसंख्या का भाग अधिक है जिसके परिणामस्वरूप आश्रितों की संख्या निरंतर बढ़ रही है जो कि उत्पादक जनशक्ति (man power) में सापेक्षिक कमी (relative deficiency) ला रही है। आर्थिक रूप से सिक्रय (active) जनसंख्या का प्रतिशत कम होना पूर्व के जीवन निर्वाह स्तर को और भी निम्म बना देता है।
- 2.3 उच्च प्रजनन एवम् मृत्यु दरें (High fertility and high mortality rates)— अल्प विकसित राष्ट्रों में जन्म एवं मृत्यु दरें (Birth and death rates) विकसित राष्ट्रों की तुलना में ऊँची पाई जाती है। यहां जनसंख्या वृद्धि की संभावना अधिक है, क्योंकि अल्प विकसित राष्ट्रों में जन्म दरें कितने ही प्रयासों के बावजूद कोई अनुकरणीय या प्रशंसनीय (appreciable) कमी नहीं दिखा पाई है। लेकिन मृत्यु दरें (death rate) वर्तमान समय में प्रभावोत्पादक दवाईयों के विकास व खोज के कारण, सार्वजनिक स्वच्छता एवं स्वास्थ्य (Public sanitation and Health) के कारण निरन्तर कम होती जा रही है। इन क्षेत्रों में जन्मदर प्रति हजार चालिस या इससे अधिक है व मृत्यु दर प्रति हजार पर अइतीस या इससे अधिक है व मृत्यु दर प्रति हजार पर अइतीस या इससे अधिक है व मृत्यु दर प्रति हजार पर अइतीस या इससे अधिक है व मृत्यु दर प्रति हजार पर अइतीस या इससे अधिक है व मृत्यु दर प्रति हजार पर अइतीस या
- 2.4 पिछड़ा मानव संसाधन (Backward Human Resource)— अल्प विकसित क्षेत्रों में पिछड़ी जनसंख्या सामान्यतः पाई जाती है। व्यक्तियों के स्तर उत्पादक एजेन्ट की तरह कम है क्योंकि यहाँ पर निम्न श्रम कुशलता पाई जाती है। निम्न कार्य कुशलता, साधन गतिहीनता (factor immobility) उपक्रमियों का सीमित प्रशिक्षण एवं विशिष्टीकरण, मूल्य संरचना और सामाजिक संरचना यहाँ आर्थिक परिवर्तन के प्रोत्साहन को कम (minimize) करती है।
- 2.5 कुशलता मे कमी (Low efficiency)— अल्प विकसित क्षेत्रों में अपर्याप्त पोषण (inadequate nutrition) एवं खुराक की कमी के कारण श्रमिकों की कार्यकुशलता में कमी पाई जाती है। स्वास्थ्य विज्ञान एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य का निम्न स्तर (Low standard

- of Hygien and Public health), अशिक्षा, (illiteracy), प्रशिक्षण की कमी, व्यावसायिक गतिशीलता में अवरोध (obstacles of occupational mobility) और कम मूल्य का कार्य आदि भी कम कार्य कुशलता को बढ़ाते है।
- 2.6 साधन अगितशीलता (Factor immobility)— उत्पादन के कारकों में मुख्य रूप से श्रम इन क्षेत्रों में भौगोलिक व व्यावसायिकता के आधार पर, क्षैतिजीय या समानान्तर या उदग्र रूप से अपना स्थान आसानी से नहीं त्यागते अर्थात् वे जहाँ कार्य कर रहे है उसी स्थान पर रह कर कार्य करना चाहते है। श्रम साधन की अगितशीलता में विभिन्न सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक कारण मुख्यतः अवरोध उत्पन्न करते है।
- 2.7 बाल श्रम का व्यापक रूप से प्रचार प्रसार (Extensive prevalence of child labour)— सरकारी क्रिया विधियो, निर्देशों व सामाजिक सुरक्षा अधिनियमों के बावजूद अल्पविकसित देशों में बाल श्रम अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है। इसका कारण श्रमिकों की निर्धनता, बाल श्रम का सस्ते में सुलभ होना और उन पर आसानी से नियंत्रण पाया जाना है।
- 2.8 महिलाओं की स्थिति एवं दशा में निम्नता (Inferiority of women's status and position)— समाज में महिलाओं की स्थिति अत्यन्त पिछड़ी हुई है। इसका कारण महिलाओं की शारीरिक सामर्थ्य व क्षमता का कम होना और समाज के कुछ प्रचलित नियमों का पाया जाना है। लेकिन महिलाओं की स्थिति व महत्व अब धीरे—धीरे बढ़ रहा है। और वे उत्पादक व्यवसायों में बढ़ रही है।
- 2.9 प्राथमिक शिक्षा एवं अज्ञानता (Rudimentary education and illiteracy)— अर्द्धविकसित देशों की एक अन्य प्रमुख विशेषता है, इन देशों के लोगों में ज्ञान की कमी होना उन्हें न केवल तकनीकी ज्ञान (Knowledge of technology) की कमी है बल्कि उनमें सामाजिक संबंधों के ज्ञान की कमी भी रहती है वे प्राकृतिक संसाधनों की अपर्याप्तता (Inadequacy of Natural) वैकल्पिक उत्पादन संभावनाओं (atternative production possibility) तकनीक एवं बाजार की दशाओं से अनभिज्ञ (ignorant) हैं।
- 2.10 धार्मिक जनसंख्या (Religious minded population) अल्प विकसित देशों में समाज में भावनात्मक कल्याण अर्थात् धार्मिक भावनाओं को प्राथमिकता दी जाती है । व भौतिक (materialistic) व भौतिकीय कल्याण द्वितीयक माना जाता है । यहाँ पर यह भावना मुख्यतया से पाई जाती है कि मनुष्य का भाग्य ईश्वर की देन है । और ज कुछ ईश्वर करता है या जो भाग्य में लिखा होता है वही होता है । मानवीय प्रयासों या स्वयं प्रयत्नों से कुछ नहीं होता । अतः व्यक्तियों में उस स्थिति को स्वयं के प्रयासों से बदलने के स्थान पर स्वीकारने की प्रवृत्ति पाई जाती है ।
- 3 पूंजी से संबंधित विशेषताएं (Characteristics concerning capital)
- 3.1 पूंजी की कमी (lack of capital) अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में उनकी विकास आवश्यकताओं के अनुरूप जो पूंजी स्टॉक उपलब्ध है वह अपर्याप्त है । यहां उत्पादन की अपर्याप्तता, निम्न राष्ट्रीय आय का स्तर, जनसंख्या की अधिकता, प्रति व्यक्ति आय का

- स्तर कम होना, बचतें कम होना, अपसंचय की प्रवृति (nature of dishoardings)होना, अतिव्यय उपभोग होना और अल्पकालीन सटटा विनियोग (Speculative) के कारण है। पूँजी की कमी के कारण मुख्य कृषक पुँजीगत उद्योगों में उपलब्ध (available) पूंजी को विनियोग करने की बजाय हल्के उपभोक्ता (consumer) वस्तुओं के उद्योगों में विनियोग करते है।
- 3.2 पूंजी के लिए— अकुशल श्रमिकों का स्थानापन्न (Substitution of Unskilled labour for capital) पूंजी की अपेक्षा अकुशल श्रम ज्यादा सस्ता होता है । अत : उत्पादकों में श्रमिकों को पूंजी के स्थान पर प्रयुक्त करने की प्रवृति होती है । परिणाम स्वरूप खेती की तकनीकें, कारखानों, व्यापार व विपणन में और घरेलू कार्य उन्हीं पारंपरिक तरीकों से किया जाता है जैसे कि पूर्व में किया जाता था जो विकसित देशों को तुलना में पुरानी रीति के होते है ।
- 3.3 पूंजी का कम उपयोग (Under Utilisation of Capital) अल्पविकसित देशों में जो भी विद्यमान है उसका पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है । यह कृषि (Agriculture) में विशेष रूप से विचारणीय है कृषि जोतों (Agricultural holdings) का एक बहुत बड़ा भाग उपलब्ध उपकरणों के प्रयोग के लिए बहुत छोटा पड़ता है । कृषि क्षेत्र का एक बहुत बड़ा भाग एक ही फसल उगाने के कारण शेष समय या पूरी काल अविध में बेकार पड़ा रहता है।
- 3.4 कम साख सुविधाएं (Credit facilities) अल्पविकसित देशों मे साख सुविधाए बहुत ही कम, अपर्याप्त (inadequacy of credit facilities), असुविधाजनक (inconvinience) और अनियमित (irregular) होती है । उदाहरण के लिए भारत में 70% प्रतिशत साख सुविधाएं असंगठित मौद्रिक बाजार (unorganized monetary market) द्वारा उपलब्ध कराई जाती है यह पूंजी बाजार, वस्तु क्रय विक्रय बाजार (Commodity Market or good market) उत्पादन और निवेश पर ब्रा प्रभाव डालती है ।
- 3.5 असंगठित मौद्रिक बाजार (Unorganised Monetary Market) अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में मौद्रिक बाजार संगठित नहीं है । इस पर राजकीय नियंत्रण (Controle of government) एवं नियमन (Regulation) नहीं है इसके परिणामस्वरूप देश की ग्रामीण संरचना पर बुरा प्रभाव (bad effect) डालते है । और ग्रामीण क्षेत्र जो कि कुल जनसंख्या का 70 प्रतिशत से भी अधिक है अत्यधिक प्रभावित होता है । देश में निर्धन व्यक्ति जो कि (already poor) पहले से ही निर्धनता से ग्रसित है उनमें वृद्धि करता है और विकास (development) कार्यक्रमों की जगह विषाद या कठिनाईयाँ जन्म लेती है ।
- 4 संगठन, उपक्रम और तकनीकी से संबंधित विशेषताएँ (Characteristics Concerning to organisation, Enterprise and technology)
- 4.1 उपक्रमों एवं संगठनात्मक क्षमता की कमी (Lack of Enterpreneurship and organisational capacities) –, अल्पविकसित राष्ट्रों में अग्रसर होकर कार्य करने की

भावना प्रायः नहीं पायी जाती है । इसलिए निजी क्षेत्र (Private) या उद्यम इन क्षेत्रों की आर्थिक स्थिति में कभी कभार ही विकास कर पाते है। राज्य की नई—नई तकनीक या रीति—चलाने वाले या प्रारंभिक कर्ता के रूप में प्रवेश करते है और यहां तक कि यह ऐसा क्षेत्र होता है जिन्हें निजी क्षेत्र (Private sector) सामान्य रूप से कार्य करके भी विकसित कर सकते है । संगठनात्मक कुशलता और क्षमता की कमी के कारण, कारखानें और संस्थान जो कि आधुनिक (advanced) तकनीकें रखते है वे भी अनुभवहीन व अकुशल प्रबंधकों के द्वारा संचालित किए (managed) जाते है इसका परिणाम यह होता है कि संसाधनों का गलत आवंटन होता है । (misallocation of resources) और अकुशलताओं या साधनों का पूर्ण उपयोग न होने के कारण विकास में बाधक बनते है ।

- 4.2 धीमी तकनीक (Lagging technology) अल्पविकसित देशों में तकनीकी स्तर की कमी पाई जाना भी एक विशेष लक्षण है । शताब्दियों से उत्पादन की तकनीकी में गितहीनता (Stagnation) आई हुई है । उत्पादन में स्थिरता है और कुछ स्थितियों में तो यह वास्तव मे बिगड़ भी गई है । जबिक विकसित देशों में विज्ञान एवं तकनीकी में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है और इस प्रकार विकसित एवं अल्पविकसित देशों के बीच का अन्तराल बढ़ता ही जा रहा है । उत्पादन की घटिया व अपरिपक्व (Poor and crude) तकनीकी गुणवत्ता की दृष्टि से निम्न किस्म की होती है जो कि उच्च लागतों (Higher costs) को बढ़ाती है
- 5 व्यापार और विपणन से संबंधित विशेषताएँ (Characteristics concerning to trade and marketing)
- 5.1 विदेशी व्यापार के अभिमुख अनुकूल होना (Foreign Trade Oriented) अल्पविकसित देशों को बाह्य व्यापार (External trade) पर बहुत अधिक निर्भर रहना पड़ता है । तथ्यों व प्रमाणों से यह स्पष्ट हो (Facts) चुका है कि इन देशों का निर्यात अनुपात राष्ट्रीय आय का लगभग 20 प्रतिशत होता है । निर्यातों पर अत्यधिक निर्भरता अल्पविकसित देशों के व्यापार चक्रों (Business Cycles) को दूसरे देशों में उत्पन्न करती है ।
 - ये देश कारखानों व निर्माण से संबंधित प्रारंभिक उत्पादों, वस्त्रों, हल्की उपभोग वस्तुओं, खाद्य पदार्थों, पूंजीगत उपकरणों और आवश्यक कच्चेमाल के आयात के लिए भी अत्यधिक निर्भर रहते है । आयात करने की यह प्रवृति प्रदर्शन प्रभाव (Demonstration effect) के कारण उत्पन्न होती है ।
- 5.2 विपणन (बाजार) की अपूर्णतारें (Marketimperfections) अल्पविकसित देशों के बाजार, छोटे, अपूर्ण और असंगीठेत होते हैं । इन देशों में मजदूरी, व्याज व कीमतों की दरें अवास्तविक (unrealistic) एवं बहु गुणी (multiple) होती है । आय कम होने के कारण यहाँ की क्रय क्षमता (Purchasing Power) भी कम होती है । बाजार का आकार एवं उत्पादन का पैमाना (Scale of Production) सीमित होता है । अत : ये उत्पादन संयंत्रों

- के पूर्ण उपयोग (full Utilisation of Production plants) मे बाधा डालते है और उत्पादन की लागतों को बढ़ाते है । बाजार की असंगठित प्रवृति को बढ़ाने में बाजार में पाई जाने वाली कई परम्परायें व यातायात की कमी भी मुख्य रूप सें जिम्मेदार है ।
- 6 आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक परिव्ययों से संबंधित विशेषताएँ (Characteristics concerning economic, social and political overheads)
- 6.1 सामाजिक संरचना (Social Structure) आर्थिक विकास का सामाजिक दृष्टिकोण अपने आप में ही एक विस्तृत विषय है, अल्पविकसित देशों की सामाजिक दृशा में सामाजिक पिछड़ेपन, धार्मिक अंधानुकरण प्रवृत्ति एवं अंधविश्वास (blind religious attitudes and beliefs) दृढ़ जाति व्यवस्था (rigid caste system), संयुक्त परिवार, पैतृक संपत्ति एवं उत्तराधिकार (inheritance and succession) दृढ़ पुरानी परम्पराओं का पाया जाना स्पष्ट रूप से प्रकट होंती है । अधिकांश अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाएं बहुत कुछ एक लम्बे समय तक साम्राज्यवाद व उपनिवेषवाद के प्रभाव में रही हैं विदेशी शासन पिछड़ी अर्थव्यवस्था पर कुछ अच्छे बुरे प्रभाव छोड़ते है । जिन देशों ने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है ये नियोजन के माध्यम से विकास के लिए संघर्ष कर रहे है । इस परिपेक्ष्य में विकास की क्रिया में नि : सन्देह सार्वजनिक क्षेत्र बहुत बड़ी भूमिका अदा कर सकता है ।
- 7 अन्य विशेषताएं (Other Characteristics)
- 7.1 प्रारंभिक आर्थिक विकास (Incipient economic growth)

(Optimum Allocation) में अवरोध उत्पन्न करती है।

अल्पविकसित देश में एक स्थिर राज्य निकट ही रहता है अल्पविकसित देशों मे जीवन निर्वाह स्तर कम और प्रतिव्यक्ति आय कम व स्थिर विनियोग एवं बचतों की दरों का निम्न होना और सरकारी राजस्व का कम होना पाया जाता है । बढ़ती हुई जनसंख्या आर्थिक प्रगति को असंतुलित करती है । जिसके परिणाम स्वरूप अर्थव्यवस्था एक निश्चित या स्थिर स्थित को प्राप्त करने के लिए दौड़ती है ।

7.2 संरचनात्मक एवं विभागीय असंतुलन (Structural and Sectoral imbalances) अल्पविकसित क्षेत्रों में उपभोक्ता वस्तुओं और लघु उद्योगों के साथ कृषि क्षेत्र की प्रभुता रहती है । इन देशों की उत्पादकता कम होती है । यहाँ पर औद्यौगिकीकरण और विकास किससे किया जाए, इस की कमी होती है क्योंकि यहाँ पर परिवहन संचार माध्यमों व ऊर्जा की सुविधाएं सीमितता में होती है । संरचनात्मक व क्षेत्रीय असंतुलन इसलिए भी होता है क्योंकि साधन गहनता / संपन्नता उचित अनुपात में नही पाया जाता। एक साधन श्रम जो कि अत्यधिक मात्रा में है व अतिरेक के रूप में होता है जबिक दूसरा सह साधन पूंजी बहुत ही कम मात्रा में पाया जाता है। इसके कारण साधन अगतिशीलता या साधन स्थिरता मे उच्च श्रेणी की बाधा उत्पन्न होती है और औद्योगिकीकरण व विशिष्टीकरण को रोकती है और इस प्रकार राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में अधिकतम कृशलता और उत्पादन संसाधनों के अनुकूलतम आबंटन

- 7.3 अत्यधिक आय असमानता और उच्च उपभोग (Extreme income inequality and high consumption) अल्पविकसित देशों में केवल प्रति व्यक्ति औसत आय ही कम नहीं हैं एक वर्ग तो अत्यधिक निर्धन व्यक्तियों का है जों अपने लक्ष्यों को भी बड़े संघर्षों के साथ प्राप्त करता है जब कि दूसरी और ऐश्वर्य पूर्ण जीवन जीने वाले (lavish living) व (Direct) प्रत्यक्ष उपभोग करने वालों का एक वर्ग है। आय की यह असमानता या निर्धनता व सम्पन्नता की यह खाई (अंतराल) ही पूंजी निर्माण को रोकती है क्योंकि बहुत से व्यक्ति बिलकुल बचत नहीं कर पाते और जो थोड़ा बहुत बचत कर (उपभोग कम कर बचा) सकतें है वे भी उस बचे हुए द्रव्य का उपभोग करना पसंद करने है। अल्पविकसित देशों में उपभोग और व्यय करने की लगभग प्रतिस्पर्द्धा बनी रहती है। निर्धन जनसंख्या अपनी निर्धनता के कारण अपनी जीविका पर खर्च करती है जबिक मध्यम वर्ग उच्च वर्ग के जीवन निर्वाह तक पहुँचने के लिए खर्च करता है और इसके बाद की परिस्थितियाँ पश्चिमीकरण को, जन्म देती है।
- 7.4 द्वैत प्रकृति या दोहरी प्रकृति (Dualistic Nature) अर्थव्यवस्था की दोहरी सरंचना के कारण आय के वितरण में असमानता आती है। एक तरफ आधुनिक नागरिक सुविधाओं से युक्त बड़े महानगरों में रहने वाले व्यक्तियों का वर्ग है वही दूसरी ओर निर्धन, प्रदूषित, अस्वास्थ्य कारी (Unhygienic) ओर पिछड़े क्षेत्रों में रहते है। जिन्हें सामान्यतः झुग्गी झोंपड़ियां (Slums) या गंदी बस्तियां कहा जाता है। इन दोनों में संप्रेषण और सहयोग (Communication and cooperation) की कमी है। ठीक उसी प्रकार की द्वैत नीति (Dualism) उत्पादन व यातायात के क्षेत्र में भी पाई जाती

है। इसलिए हाथ करघा (Hand loom) स्वचालित लूमों (automatic looms) के साथ एवं बैलगाड़ी (Bullock Carts) जुम्बो–जेटविमान (Jumbo Jet) के साथ–साथ अस्तित्व रखती है।

7.5 विषैले चक्र (Vicious Cycle) एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में नकारात्मक कारक (negative factor) दुसरे नकारात्मक कारक की प्रतिक्रिया को उत्पन्न करता है जो और दूसरे नकारात्मक कारक हेतु अपनी प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है और इस प्रकार एक ऋणात्मक कारक एक देश में कारण और परिणाम दोनों को क्रियान्वित करता है और इसलिए एक गरीब देश गरीब होने के कारण और गरीब रह जाता है।

18.1.3 विकसित क्षेत्र (Developed Regions)

विकसित क्षेत्र को उपयुक्त या सारगर्भित परिभाषा देने की अपेक्षा विकसित क्षेत्र की अविकसित क्षेत्र से तुलना करना ज्यादा सरल रहता है। विकसित क्षेत्र या अर्थव्यवस्था वह नहीं है जिसका सम्पूर्ण विकास हो गया हो और भविष्य में प्रगति हेतु कोई क्षेत्र (Scope) नहीं रहा हो, कोई भी देश पूर्ण रूप से विकसित नहीं है, सभी देश विकास की विभिन्न स्थितियों या अवस्थाओं में हैं और यह अंतर केवल कुछ अंशों का है। प्रत्येक देश विकास की दिशा में सतत् रहता है अत: इन देशों के विकास के स्तरों को निश्चित करना एक समस्या है। विकास की

गति (Speed of growth) इन देशों का निर्णायक बिन्दु (decisive point) नहीं होती बल्कि विकास का वह स्तर है जो एक देश प्राप्त करता है, अर्थात् विकसित देशों के लिए यह विषय विचारणीय नहीं है कि वहाँ विकास की दर क्या है? बल्कि यह विषय विचारणीय है कि उन देशों का उतना विकास हो चुका है या विकास के स्तर में वृद्धि कर चुके है ।

एक देश के विकास के स्तर को मापने के लिए प्रतिव्यक्ति आय (per capital income) को मापदण्ड माना जाता है । जब हम विकसित देश की बात करते है तो इसका अर्थ यह है कि विकसित देश वह देश है जिसकी प्रतिव्यक्ति आय अल्पविकसित देशों की तुलना में उच्चतर (higher) है, विकसित देशों की विशेषताएं है सतत् सम्पनता (Continuous richness), आधुनिक तकनीक व संगठन, अति उतम उत्पादन और उच्च जीवन निर्वाह स्तर (Higher living Standard) है ।

विकसित देश या क्षेत्र वह क्षेत्र है जहाँ प्राकृतिक संसाधनों का पूर्ण रूपेण प्रयोग होता है और वे ठीक प्रकार से पूर्ण कुशलतम तकनीक से काम में लाये जाते है । विकसित देश कृषि उन्मुख (Agricultural oriented) नहीं होते, बल्कि उद्योग उन्मुख (industry oriented) होते है । कृषि में उपज दर उच्च होती है और यह प्रकृति व मानसून पर बहुत कम या नगण्य रूप से निर्भर करती है ।

इन देशों में जनसंख्या दबाव नहीं होता और आयु संरचना भी उच्च श्रेणी की होती है अर्थात् कुल जनसंख्या मे अग्रिम जनसंख्या का अनुपात कम व कार्य करने वाली जनसंख्या का अनुपात ज्यादा होता है । प्रजनन व मृत्युदरें (Fertility and mortality rate) अल्पविकसित देशों, की तुलना में कम होती है । मानवीय संसाधनों की विचारधारा भी आधुनिक होती है और वहाँ श्रम कुशलता उच्च होती है । विकसित राष्ट्रों में बेरोजगारी या तो होती ही नहीं या यदि होती भी है तो एकदम अल्पमात्रा में, उत्पादन के साधनों मे गतिशीलता अधिक पाई जाती है । समाज में महिलाओं की स्थित उच्च होती है और उन्हें पुरूषों से नीचा नहीं समझा जाता । उनकी साक्षरता दरें (Literacy rates) उच्च होती है और व्यक्ति ज्यादा भौतिकवादी एवं क्रियाशील (materialistic and active) होते है । श्रमिक अत्यधिक कुशल गतिशील (mobile) और कार्य करने की अधिक क्षमता (more capacity) रखते है ।

पूंजी पर्याप्त या प्रचुर (Plenty) मात्रा में पाई जाती है । बचत व निवेश की दरें ऊँची होती है। उत्पादन के तरीके उन्नत या विकसित प्रकार के और ज्यादा पूँजी गहन (Capital intensive) तकनीक के होते है । इन देशों में साख सुविधाएं अच्छी होती है, और पूंजी का पूर्ण उपयोग किया जाता है क्योंकि मौद्रिक बाजार ज्यादा संगठित और लोचदार (Elastic) होता है । पूंजी निर्माण (Capital Formation) की दरे उच्च होती है । विकसित तकनीक विकास की दर को भविष्य में और ऊँची बनाती है । विकसित देशों में संगठन व उद्यम / उपक्रम भी उच्च स्तरीय विकसित व प्रभावपूर्ण होता है । यहाँ अधिकतम् श्रम विभाजन, बड़े पैमाने पर उत्पादन, सुधरी व संशोधित मशीनीकरण व तकनीकी की सुविधा पायी जाती है ।

विकसित देशों में आंतरिक व बाहय व्यापार दोनों ही तेजी से, कुशलता के साथ लाभप्रद दृष्टिकोण से किया जाता है । भुगतान संतुलन (Blance of Payment) सामान्यतया अनुकूल होता है। और देश की मुद्रा अन्तर्राष्ट्रीय साख अच्छी छवि या स्थिति रखती है। आन्तरिक बाजार पूर्णतया संगठित व आधुनिक श्रेणी का होता है।

विकसित देशों में उच्च स्तरीय यातायात, संचार सेवा, और ऊर्जा की अच्छी सुविधाएं पाई जाती हैं। प्रतिव्यक्ति आय, प्रतिव्यक्ति उपभोग, प्रतिव्यक्ति बचतें और जीवन निर्वाह स्तर अत्यन्त ऊँची श्रेंणी का होने को प्रवृत रहता है।

विकसित देशों में समाज अच्छा और प्रगतिशील (Advanced) होता है। यहा पर परंपरागत रीति–रिवाजों को अत्यंत ही कम महत्व दिया जाता है। व्यक्ति अच्छी प्रगतिशील विचारधारा रखते है, इन देशों की विकास दरें प्रायः अल्पविकसित देशों की तुलना में अधिक होती है। अर्थव्यवस्था उत्पादन और प्रगति में ज्यादा संतुलित (more balanced) होती है। विकसित देशों की समपन्नता (richness) समृद्धता (Prosperity) और विकास(development) इन क्षेत्रों के अग्रिम विकास व प्रगति कों प्राप्त करने में सहयोग करते हैं।

हम अविकसित क्षेत्रों (Undeveloped regions) अल्पविकसित क्षेत्रों (Under developed regions) और विकसित क्षेत्रों (developed regions) का अर्थ व विशेषताएं या लक्षण देख चुके है। अब यह स्पष्ट हों गया कि सभी क्षेत्र समान नहीं है, क्योंकि उनमें विशेषताओं व विकास के स्तरों में पर्याप्त (sufficient) भिन्नता है। इन सभी असमानताओं कें बावजूद सभी क्षेत्र अपने—अपने तरीके से विकास प्राप्त करते है।

एक अर्थव्यवस्था जहाँ कि विकास संतुलित नहीं है व आर्थिक विकास विभिन्न स्तरों पर चारों ओर फैला हुआ है, वहाँ पिछड़े क्षेत्रों के आर्थिक विकास के लिए कुछ आवश्यक कदम उठाना जरूरी हो जाता है, ताकि उन्हें विकसित क्षेत्रों के समान लाया जा सके। पिछड़े क्षेत्रों को ऊँचा उठाने मे आर्थिक विकास एवं कारकों का अध्ययन शामिल होता है जो कि विकास के लिए आवश्यक है।

18.1.4 आर्थिक विकास और इसके कारक (Economic Development and its factors)

आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में एक लम्बी समयाविध के बाद वृद्धि होती है। यदि विकास दर जनसंख्या की दर से अधिक हो तो प्रतिव्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि होती है। और भी कई अन्य परिवर्तन जो कि विशिष्ट विशेषता लिए होते है उत्पादन कों बढ़ाने में साथ देते है। उनमें सें कुछ महत्वपूर्ण निम्न हैं—

- 1. अतिरिक्त संसाधनों (Additional resources) का ज्ञान
- 2. पूजी संग्रहण (Capital accumulation)
- 3. जनसंख्या आकार व आयु संरचना में वृद्धि को सुधारना (Population growth improvement in size and age structure)
- 4. कुशलताओं में सुधार (improvenments in skills)

- अन्य संस्थागत एवं संगठनात्मक परिवर्तन (institutional and organizational improvement)
- 6. आय के स्तर व वितरण में सुधार (Improvement in Level and distrubution of income)
- 7. मानवीय संसाधनों, उनकें स्वभाव व रीतिरिवाज व परम्पराओं में सुधार (improvement in human resources, tastes and traditions)

वर्तमान युग में आर्थिक विकास का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है अल्पविकसित देशों में विकास की एक चाह है और इसीलिए अल्पविकसित देशों में यह एक बड़ा राजनीतिक विषय बन गया है । वे अब यह महसूस करने लगे है कि निरतंर बढ़ती भुखमरी, रोग, मृत्यु और दु:खों का पूर्ण रूप से निराकरण विकास के व्यावहारिक व संभाव्य परिणामों से ही किया जा सकता है । कई विकसित देशों ने बहाय नीतियों में सहायता देना प्रमुख विशेषता माना है व जिसके कारण उन्हें अन्तर्राष्टीय पहचान भी मिली है ।

सम्पन्न देश अपने स्वयं के विकास से भी संबंध रखते है व ध्यान देते है । यद्पि इन देशों में निर्धनता उन्मूलन का दबाव निम्न स्तर का है । विकसित देशों के अर्थशास्त्री, व्यापारी और प्रशासक (सरकार) यह महसूस करतें है कि उनके निजी देशों में यदि अवनित या मंदी (depressions) को टाला जा सके और चिरकालिक गतिहीनता (secular stagnation) से बचा जा सके तो उन्हें इन देशों की विकास की दर संतोषजनक स्थिति में बनाए रखनी चाहिए।

इस प्रकार विश्व के सभी देशों में विकास की समस्या पायी जाती है । आर्थिक विकास के दौर में सरकार और नागरिक चाहते हैं कि उनके निजी क्षेत्र आगे बढ़े और भविष्य मैं भी अग्रणी रहे ।

आर्थिक विकास के तत्व (Factors of economic Development)

पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिए और इन क्षेत्रों के विकास को बनाए रखने के लिए कुछ मुख्य कारक निम्न है—

- 1 भूमि-प्राकृतिक संसाधन (Land-Natural Resources)
- 2 श्रम-मानवीय संसाधन (Labour-Human Resources)
- 3 पूंजी (Capital)
- 4 संगठन और निर्णय (Organisation and Decision making)
- 5 उपक्रम उद्यम (Enterprise)
- 6 तकनीक (Technique)
- 7 आर्थिक कार्यप्रणाली (Economic Mechanism)
- 8 सामाजिक—सांस्कृतिक तत्व (Socio Cultural Factor) इनका वर्णन निम्न प्रकार है

1 भूमि प्राकृतिक संसाधन (Land-Natural Resources)

यह उत्पादन का प्राक्रतिक संसाधन है, किसी भी अर्थव्यवस्था का उत्पादन प्रमुखत : भूमि की उपलब्धता, स्थिति की उपयुक्तता, मिट्टी की प्रकृति, यहाँ की वन संपदा, मछली (मत्स्य), खिनज, जल और अन्य कोई पदार्थ (जैवकीय व अजैवकीय) जो दी हुई तकनीक पर निर्भर करती है । आर्थिक विकास में भूमि कई रूपों में जुड़ी हुई है, भूमि के रूप में भौतिक व आर्थिक दोनों ही रूपों में भिन्न-भिन्न आकार लिए होती है । यह विकास दर की मुख्य निर्धारक घटक है । यह कृषि के साधन के रूप में, एक ओद्योग़ीक लागत के रूप में, यातायात के आधार के रूप में, श्रम पूँजी और तकनीकी के पूरक के – में विकास में अपना योगदान देती है ।

2 श्रम-मानव संसाधन (Labour-Human Resources)

जनसंख्या का आकार (Size) संरचना या बनावट (Composition) और सामाजिक सांस्कृतिक कारक आर्थिक विकास की गित एवं स्तर के आधारभूत निर्धारक तत्व है । जनांकीिक या जन सांख्यीिकीय (Demographic) और सांस्कृतिक कारक समाज में क्रियाओं के मात्रात्मक व गुणात्मक रूप को निर्धारित करते है । साथ ही उत्पादन के लक्ष्यों संगठन की विधि, तकनीिकी का प्रकार, पूजा निर्माण की दर, प्राकृतिक साधनों के आकार—प्रकार के साथ—साथ उत्पादन के अन्य कारकों की मात्रा व प्रकृति को निर्धारित करता है । उपरोक्त बिन्दुओं के कारण आर्थिक संसाधनों में जन शक्ति का अध्ययन करना बहुत ही बड़ा कार्य हो गया है ।

मानव संसाधन या जनसंख्या आर्थिक विकास में दोहरा रिश्ता रखते है । संसाधन के रूप में, श्रम उत्पादन के अन्य साधनों के साथ मिलकर कार्य करता है । उपभोक्ता के रूप में उनका लक्ष्य अधिकतम कल्याण और ठीक बने रहने का होता है । इस प्रकार जनसंख्या आर्थिक विकास का साधन और साध्य दोनों ही अर्थी में जुड़ी हुई है ।

यद्यपि अधिकांश अल्पविकसित क्षेत्रों और देशों में तेजी से आर्थिक विकास को प्राप्त करने की ओर लालायित रहने की प्रवृति है । उनका निर्धारण कुछ मुख्य समस्याओं जैसे जनसंख्या की तेजी सें बढ़ती दर, प्रतिकूल आयु संरचना, जनसंख्या का असंतुलित वितरण, जनशक्ति की अगतिशीलना, कार्य—कुशलता की अपर्याप्तता, शारीरिक क्षमता का कम पाया जाना अल्पबेरोजगारी, संस्थागत प्रतिरोध और सांस्कृतिक निष्क्रियता होते है । यह जीवन निर्वाह स्तर एवं प्रति व्यक्ति आय वृद्धि करनें में कई प्रकार का बाधाएं डालते है । सही और संतुलित विकास प्राप्त करने के लिए इन देशों की सरकारें (Government) इन समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए कठिन प्रयास करती हैं ।

3 पूँजी (Capital)

पूँजी को उत्पादन के साधन के रूप में पिरभाषित करते हुए हम कह सकते है कि पूंजी उत्पादन का वह साधन है जो हमें भवनों, कारखानों, मशीनों, उपकरणों, औजारों और माल की आगमन (inventories) के स्टॉक के रूप में हमें समाज में देखने को मिलता है । पूँजी आर्थिक विकास को सही तरीके से चालू रखने का एक उपकरण है और मानवीय पूँजी के रूप मे उत्पादकता को बढ़ाता है जैसे—तकनीकी शिक्षा पर निवेश, स्वास्थ्य और दक्षता पर निवेश, जो कि समाज की उत्पादक क्षमता को बढ़ाता है ।

पूंजी निर्माण वह प्रक्रिया है जिसमें एक समय अविध में उत्पादन को और अधिक उत्पादित किया जाना है और यही प्रक्रिया निरंतर आगे जुड़ती जाती है । आर्थिक विकास के सिद्धान्तों में पूंजी एक केन्द्रीय (Central) स्थित रखती है । भूमि की मात्रा स्थिर है व अपरिवर्तनीय है । और पूंजी को भूमि के स्थान पर प्रतिस्थापित किया जा सकता है । पूँजी निर्माण की प्रक्रिया अन्त : क्रियाओं व संचयन क्रिया द्वारा होती है । एक बार जब यह सिक्रय होकर चल जाती है तो यह स्वयं ही अपने आप आगे बढ़ जाती है । पूँजी बड़े पैमाने के उद्योगों, विशिष्टीकरण को बढ़ाने और कार्यकुशलता को बढ़ाने, तकनीकी प्रवृति के लिए, कार्य—क्षमता बढ़ाने, आर्थिक विस्तार करने एवं औद्योगीकरण के लिए आधार प्रदान करती है । पूँजी निर्माण की दर और उपलब्ध पूंजी का अनुक्लतम उपयोग किसी भी देश के विकास की दर को निर्धारित करते है ।

4 संगठन और निर्णयन (Organisational and decision making)

विकास के लिए विभिन्न क्षेत्रों के बीच संसाधनों के आवंटन, तकनीकी चयन, उत्पादन साधनों का अनुपात, बचत और निवेश में उत्पादकों के विभाजन और इसी क्रम में और बिन्दुओं को मद्देनजर रख कर निर्णय लिये जाते हैं। निर्णय कर्ता ही संगठन कर्ता होते हैं। और वे आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण (Central) केन्द्रीय भूमिका अदा करते हैं। योग्य (Competent) और कुशल (efficient) संगठन कर्ता उपलब्ध संसाधनों का सर्वश्रेष्ठ तरीके से उपयोग करते हैं और इस प्रकार देश के आर्थिक विकास में वृद्धि (augmenting) करते हैं।

निर्णय कर्ता (decision maker) की कुशलता विद्यमान परिस्थितियों जैसे कानून एवं व्यवस्था, मौदिक एवं राजकोषीय नीतियों, कीमत संयंत्र, बाजार की दशाओं आदि से प्रभावित होती है । जहाँ संगठन कर्ता कार्य कर्ता है वहाँ राज्य प्रशासन सुधार के लिए बहुत कुछ कार्य कर सकता है ।

5 उपक्रम (Enterprise)

उपक्रम / उद्यम आर्थिक विकास को आगे चलाने वाली मुख्य शक्ति है । निर्बाध वादी नीति (Laissez–faire policy) में कम विश्वास के कारण और समाजवादी विचारधारा के कारण विकसित राष्ट्रों में उद्यमियों का महत्व कम हो गया है । लेकिन फिर भी आर्थिक विकास को और अधिक बढ़ाने, प्रभावपूर्ण बनाने में उद्यमी अभी भी बहुत कुछ कर सकते है ।

6 तकनीकी (Technology)

तकनीकी प्रगति के द्वारा आधुनिक विचारधारा आविष्कार, नयी—नयी खोजों, आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक क्षेत्र की तकनीक उपायों के साथ—साथ वास्तविक उत्पादन फलन में परिवर्तन आते हैं । विकसित देशों का विकास वहाँ की प्रौद्यौगिकीय उन्नतता या विकसित होने पर मुख्य रूप से निर्भर करता है प्रौद्यौगिकी क्रांति कम साधनों से अधिक उत्पादन प्रदान करती है । किसी भी देश की तकनीकी प्रगति स्वयं विज्ञान की प्रगति, शिक्षा और तकनीकी प्रचुरता में संसाधनों के प्रयोग पर निर्भर करती है, साथ ही तकनीकी सम्पन्न्ता व उसके व्यवहार में लाने की रीति पर निर्भर करती है ।

7 आर्थिक संयंत्र या प्रणाली (Economic Mechanism)

एक देश का विकास वहाँ की आर्थिक प्रणाली और कार्य करने की क्रियाओं जैसे कीमत, संयंत्र, बाजार की पूर्णताओं, श्रम विभाजन, राजकोषीय नीति (Fiscal policy) सार्वजनिक उपयोगिता और उत्पादन के साधनों की उत्पादकता आदि पर निर्भर करता है।

8 सामाजिक-सांस्कृतिक तत्व (Socio - Cultural Factors)

मानवीय मूल्य और संस्थाएं आर्थिक जीवन को विभिन्न (Various) माध्यमों के द्वारा प्रभावित करती है । जैसे उपभोग प्रवृति, आर्थिक संगठन के तरीके, श्रम कुशलता, सामान्य जीवन का दृष्टिकोण, शिक्षा, स्वास्थ्य प्रोत्साहन, पुरस्कार आदि, ये सभी मानवीय मूल्य श्रम की क्षमता और उत्पादकता को प्रभावित करती है और देश के विकास को गित देने है ।

इस प्रकार आर्थिक विकास के विभिन्न चरों का विश्लेषण करने से यह प्रकट होता है, कि प्राक्रतिक व मानवीय संसाधनों के प्रतिस्थापन की एक विस्तृत (व्यापक) सीमा है, कोई भी साधन चाहे पूंजी हो या तकनीकी सामाजिक क्षमता हो या भौतिकीय विकास, कोई भी अपने आप में संतोषजनक या पूर्ण नही है । उत्पादन में कम से कम सभी की आवश्यकता होती है । और इनमें से प्रत्येक एक विशेष स्थिति में प्रभाव पूर्ण होता है कोई भी सार्वभौमिक संपन्न नहीं है और ना ही इनका कोई समाधान है ।

18.2 क्षेत्रीय विकास के सूचक (Indicators of Regional Development)

भारत में क्षेत्रीय विकास का अध्ययन समय—समय पर अर्थशास्त्रियों प्रशासनिक (सरकारी) अभिकरण, और आर्थिक कार्यकर्ताओं के दलो द्वारा किया जाता रहा है, क्षेत्रीय विकास के कारकों का मुख्य अध्ययन और उनके उपयोग निम्न प्रकार से किए गये है।

18.2.1 भारतीय आर्थिक एवं वैज्ञानिक अनुसंधान संस्थान (The Economic and Scientific Research Foundation of India)

1960–61 से 1970–71 के दशक मे फसल उत्पादन से प्राप्त कृषि आय में अधिक ऊँची वृद्धि दर देखने को मिलती है । जो कि विकसित देशों में पहले से ही विद्यमान है । जब कि अल्पविकसित देशों में इस दिशा मैं कोई उत्साह जनक स्थिति नहीं है । राष्ट्रीय औसत कृषि आय में 142.66 प्रतिशत की वृद्धि हुई है । पंजाब, हरियाणा, गुजरात और राजस्थान में यह राष्ट्रीय औसत से उपर 200 प्रतिशत से उपर है । मैसूर, उड़ीसा, जम्मू और काश्मीर और कैरल में 142.66 से 200 प्रतिशत के बीच में जब कि अन्य सभी राज्यों में कृषि आय की दर राष्ट्रीय वृद्धि दर से कम है ।

18.2.2 पाण्डे समिति (Pandey Committee)

1968 मे भारत सरकार ने पिछड़े क्षेत्रों कि पहचान के लिए कार्यकर्त्ताओं का एक दल नियुक्त किया, जिसे पाण्डे समिति का नाम दिया गया । ताकि पिछड़े क्षेत्रों के औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित किया जा सके । नियुक्त दल या पाण्डे समिति ने पिछड़े क्षेत्रों की औदयोगिक पहचान निम्न मापदण्डों के आधार पर की —

- 1 बड़े शहरों और औद्योगिक संस्थानों से दूरी (Distance from large Cities and Industrial Projects)
- 2 प्रति व्यक्ति आय (Per Capita income)
- 3 द्वितीयक एवं तृतीयक उद्योगों में जनसंख्या को लगाना (Population engaged in Secondary and Tertiary industries)
- 4 आर्थिक एव प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग (Utilisation of economic and natural resources)

इसके बाद विकास योजना आयोग ने राष्ट्रीय विकास परिषद (National Development Council) से विचार विमर्श करने के बाद निम्न कार्य क्षेत्र अनुशंसित (Recommended) किये –

- 1 प्रति व्यक्ति खाद्यान / व्यापारिक फसल उत्पादन (Per Capita food grains/ Commercial Crop Production)
- 2 कृषि मजदूरों का अनुपात (Proportional of agricultural workers)
- 3 प्रति व्यक्ति औद्यौगिक उत्पादन (Per Capita industrial Output)
- 4 द्रितीयक एवं तृतीयक गतिविधियों (activities) में कारखाना रोजगार या वैकल्पिक रोजगार ।
- 5 विध्त का प्रति व्यक्ति उपयोग (Per Capita Comsumption of electricity)
- 6 जनसंख्या के संबंध में सड़क यातायात की लम्बाई और रेलवे माइलेज।

पाण्डे समिति और योजना आयोग दोनों ने ही यह सुझाव दिया कि पिछड़े क्षेत्रों के औद्यौगिक विकास को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए और कम से कम जीवन निर्वाह स्तर की आधारभूत संरचनात्मक सुविधाएं (infrastructural facilities) सभी जिलों को दी जानी चाहिए।

18.2.3 चक्रवर्ती समिति (Chakravarty Committee)

पिछड़े क्षेत्रों की पहचान और वर्गीकरण की समस्या को चक्रवर्ती समिति ने और अधिक वर्गीकृत कर परीक्षण किया । चक्रवर्ती समिति ने निभ चौदह सूचकों को पिछड़े क्षेत्रों के लिए चुना :

- 1 प्रति वर्ग किलोमीटर जनसंख्या का घनत्व (Population density Per sq. K.M. area)
- 2 कार्य शक्ति में कृषि श्रम का प्रतिशत (Percentage of agricultural, worker)
- 3 ग्रामीण जनसंख्या का प्रति व्यक्ति द्वारा उत्पादन में खाद्यान्न उत्पादन का कुल मूल्य (Gross value of output of food grains per head of rural Population)

- 4 ग्रामीण जनसंख्या का प्रति व्यक्ति उत्पादित अखाद्यान उत्पदान का कुल मूल्य (Gross value of output of non food grains per head of rural Population)
- 5 ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिव्यक्ति कुल फसल उत्पादन का मूल्य (Gross value of output of all crops per head of rural Population)
- 6 प्रतिष्ठानों या संस्थानों (establishments) की कुल संख्या में से विघुत उपभोग करने वालें कुल संस्थानों (establishments) का प्रतिशत ।
- 7 कुल पारिवारिक संस्थानों (Household establishments) में विश्रुत उपभोग करने वाले पारिवारिक संस्थानों का प्रतिशत ।
- 8 कुल गैर पारिवारिक संस्थानों का प्रतिशत
- 9 प्रति लाख जनसंख्या पर पंजीकृत कारखानों में कार्यरत श्रमिकों की संख्या (Number of workers in registered factories per lakh of Population)
- 10 प्रति सौ वर्ग किमी. क्षेत्रफल में सतही की लंबाई (Length of surfaced Roads per 100aquare km. of area.)
- 11 प्रति लाख जनसंख्या पर सतही भागों की लंबाई (Length of surfaced Roads per lakh of Population)
- 12 पुरूष जनसंख्या में पुरूष साक्षरों का प्रतिशत (% of male literats to male population.)
- 13 महिला जनसंख्या में महिला साक्षरों का प्रतिशत (Percentage of female literates to female population.

14 कुल जनसंख्या में कुल साक्षरों का प्रतिशत चक्रवर्ती समिति ने पिछड़े क्षेत्र के इन चौदह सूचकों को प्राथमिकी आधार पर चुनने के लिए तीन विधियों का प्रयोग किया । श्रेणी क्रम विधि द्वारा (Ranking method) 164 जिलों को पिछड़ेपन के रूप में वर्गीकृत किया और सूचकांक विधि द्वारा 206 जिलों को पिछड़ेपन के रूप में वर्गीकृत किया एवं तृतीय मूल अवयव विश्लेषण (Principal Component analysis) द्वारा 181 बिलों को पिछड़ेपन में वर्गीकृत किया। 155 जिलों को सभी तीनों पद्धतियों द्वारा वर्गीकृत किया गया । समिति ने इन सामूहिक (Common) जिलों को देश के दृष्कर पिछड़े क्षेत्रों के रूप में माना।

18.2.4 पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिए राष्ट्रीय समिति (National Committee on development of Backward areas NCDBA)

इस समिति ने असफलताओं को मापने के लिए गरीबी रेखा (Poverty line) से नीचे रहने वालों का जनसंख्या में प्रतिशत या बेरोजगारी की दर, प्रति व्यक्ति घेरलू उत्पाद मूल्य (Domestic Product) सहित सूचकों को एक संख्या में संयुक्त रूप से रख कर क्षेत्रीय पिछड़ेपन को मापना ज्यादा सरल माना, समिति ने पाया कि इस प्रकार का माप संतोषजनक नहीं है । समिति ने कहा: "निर्धनता व बेरोजगारी पिछड़ेपन की स्पष्ट तस्वीर है किन्तु निश्चित तौर पर एक कार्योत्पादक (Causative) तत्व नहीं है ।

NCDBA ने यह भी पाया कि समपूर्ण सूचकांकों को प्रयोग में लाने के बजाए पिछड़ेपन को परिभाषित करने कें लिए क्षेत्रीय सूचिकाओं को विकास के विशिष्ट क्षेत्रों के क्रम में प्रयुक्त करना ज्यादा सरल है जैसे— कृषि पिछड़ापन औद्यौगिक पिछड़ापन, शैक्षणिक पिछड़ापन आदि।

इन सूचिकाओं को क्षेत्रीय असमानताओं के विभागीय स्तरों पर अनुवर्तन में प्रयोग किया जा सकता है । औद्यौगिक पिछड़ेपन की अवधारणा में विशेष रूप से कुछ वैधता (Validity) हो सकती है । परंतु सामान्यतया पिछड़ेपन की पहचान करने की समस्या के लिए सामान्य उत्तर यही होता है कि विभागीय सूचकांक दृष्टिकोण बहुत ज्यादा आशाजनक (Promising) नहीं है ।

इस प्रकार NCDBA समिति ने पिछड़े क्षेत्रों को पहचानने के लिए संपूर्ण सूचकांक प्रणाली को मंजूर नहीं किया । इसके बजाय समिति ने पिछड़े क्षेत्रों की पहचान करने के लिए निम्न सुझाव दिए ।

- 1 भयंकर सुखा ग्रस्त क्षेत्र ।
- 2 शुष्कक्षेत्र।
- 3 जनजातीय क्षेत्र ।
- 4 पहाड़ी क्षेत्र ।
- 5 भयंकर रूप से बाढ से प्रभावित क्षेत्र ।
- 6 क्षार/लवणपन/ खारेपन से प्रभावित तटीय क्षेत्र ।

समिति ने इन छ: प्रकारों को पिछड़ेपन के मूलभूत आधारक तत्व (Fundamental factor) माना। इनके अलावा एन.सी.डी.बी.ए. ने पिछड़े क्षेत्रों की पहचान हेतु दो मुख्य बातें बताई । एक तो उत्पादन संबंधों और सामाजिक संरचना में दोहरे तत्वों की व्यापकता या प्रचलन में होना बताया तथा दूसरी प्रशासकीय उपस्थिति (administrative Presence) की कमी ।

18.2.5 प्रो. राजकृष्ण ने अपने लेख "केन्द्र एवं परिधि (The centre and the periphery)

1980 में अंतराज्यीय असमानताओं को निम्न छ: श्रेणियों में वर्गीकृत किया-

- 1 आय, निर्धनता और बेरोजगारी ।
- 2 कृषि सूचक।
- 3 औद्यौगिक सूचक।
- 4 आधारभूत संरचनात्मक सूचक ।
- 5 सामाजिक सेवा सूचक।
- 6 संसाधन आवंटन सूचक ।

प्रो॰ राजकृष्ण ने पाया कि 72 प्रतिशत कुल निर्धन जनसंख्या और 66 प्रतिशत बेरोजगर जनसंख्या सात प्रमुख राज्यों में केन्द्रित है । ये राज्य पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश महाराष्ट्र, तिमलनाडु एवं आंध्र प्रदेश है । प्रो ॰ राज कृष्ण ने कई अध्ययनों के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि असमानताओं में हल्की सी कमी या गिरावट 1950 में आई परंतु 1960 में असमानताओं में वृद्धि हुई और 1970 के प्रारंभिक वर्षों में यह यथावत रही । उन्होंने यह भी निष्कर्ष निकाला कि राज्य प्राकृतिक संसाधनों की कमी के कारण निर्धन नहीं हैं बिल्क निवेश की अपर्याप्तता (insufficiency) के कारण वे निर्धन हैं ।

औद्यौगिक क्षेत्र में अन्तर्राज्यीय असमानताओं का परीक्षण करनें के लिए उन्होंने दो सूचकों का प्रयोग किया । ये सूचक हैं —

- 1 मूल्य वृद्धित प्रति व्यक्ति निर्माण (The value added by manufacturer per capita) और
- 2 निर्माण कार्यों में कर्मचारियों का अनुपात ।

बिहार सबसे ज्यादा पिछड़ा राज्य प्रमाणित हु आ है । जब कि केंद्र सरकार द्वारा इसी राज्य में सर्वाधिक विनियोग किया गया है । महाराष्ट्र, गुजरात, पश्चिमी बंगाल, और पंजाब राज्यों ने केन्द्र सरकार के कम विनियोग के बावजूद आर्थिक विकास में उच्च श्रेणी प्राप्त की है।

आधारभूत और सामाजिक सेवा सूचकों (Indicators of fundamental and Social Services) के सन्दर्भ में बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान और उत्तरप्रदेश राज्य महाराष्ट्र, गुजरात, पश्चिमी बंगाल, पंजाब, आंध्रप्रदेश, तिमलनाडु और हिरयाणा राज्य से पीछे है । प्रो ॰ राजकृष्ण नें निष्कर्ष रूप से बताया कि लगभग पिछले तीन दशकों से समपूर्ण विकास को विचाराधीन रखने के बजाय विकास के कई महत्वपूर्ण आयामों को दृष्टिगत न रखने के कारण अन्तर क्षेत्रीय (interregional) (अन्तर्राज्यीय एवं अन्तराराज्यीय) असमानताओं को बढ़ावा मिला है जो कि बढ़ते हुए प्रमाणों के रूप में दर्शाये गये है । विकास की दरों ओर उनके स्तर "भद्रालोक" और "शूद्रा" (Bhadraloka and shudra) के रूप में राज्य के रूप होते जा रहे है। संयुक्त राष्ट्र के शब्दों में, एक गम्भीर "उत्तर—दिक्षण समस्या" देशों में जन्म लेते रही है । जो कि मानचित्र में पिछड़े क्षेत्रों के रूप में पहचानी जा चुकी है और वास्तव में उत्तर दिक्षण समस्या न होकर "केन्द्र परिधीय समस्या" (Central Peripheral Problem) है ।

दी इकोनोमिक टाईम्स (The Economic Times) ने 1982 में विभिन्न राज्यों में गरीबी के फैलाव का अध्ययन किया । नौ राज्य उड़ीसा, त्रिपुरा, मध्यप्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, तिमलनाडु, आसाम, उत्तरप्रदेश, और कर्नाटक में कुल जनसंख्या का 48.13 प्रतिशत गरीब जन्मसंख्या रहती है जो कि निर्धनता रेखा (Poverty line) से नीचे है । दूसरी तरफ पंजाब और हरियाणा सबसे अमीर / धनी राज्य है जहाँ गरीबी के रेखा से नीचे क्रमश : 23.15 प्रतिशत और 24.48 प्रतिशत जनसंख्या रहती है । आपके तथ्यों के लिए 1982 में पूरे भारत के औसत को 100 मानते हुए चालू मूल्यों पर प्रति व्यक्ति आय के आधार पर राज्य से तुलना

कर क्षेत्रीय असमानताओं का विश्लेषण किया गया है । 1980-81 के लिए वे राज्य जो कि राष्ट्रीय औसत से ऊपर हैं वे पंजाब, महाराष्ट्र, हरियाणा, गुजरात, ओर पश्चिमी बंगाल हैं जिनके सूचकांक क्रमश : 173, 148, 137, 123, और 103 हैं । वे राष्ट्र जिनके सूचकांक औसत से कम है वे हैं हिमाचाल प्रदेश (98.5), जम्मू एवं कश्मीर (95.2), कर्नाटक (91.0), केरल (90.5), तिमलनाडु (89.1), आंध्र प्रदेश (85.6), आसाम (81.5), राजस्थान (81.3), उत्तरप्रदेश (74.4), मध्यप्रदेश (71.8), उड़ीसा (71.7), मणिपुर (69.8), और बिहार (59.4) है।

प्रो. आर. टी. तिवारी (Prof. R.T. Tiwari) ने 1984 में 19 सूचकों के आधार पर कृषि, उद्योग, सिंचाई, उर्जा, यातायात राष्ट्रीय औसत से अधिक है : पंजाब (157), केरल (139), तिमलनाइ (137), महाराष्ट्र (123), गुजरात (119), हिरयाणा (116), कर्नाटक (114), और पिश्चमी बंगाल (110) हैं । जिन राज्यों का औसत राष्ट्रीय औसत से कम है उनके नाम आन्धप्रदेश (98, हिमांचल प्रदेश (98), उत्तर प्रदेश (87), उड़ीसा (84), राजस्थान (81), बिहार (78) और मध्यप्रदेश (76) हैं । इस प्रकार मध्यप्रदेश जो देश का भूमि की दृष्टि से सबसे बड़ा राज्य होने पर भी पंजाब के निष्पादन स्तर से आधा भी नहीं है । पांचवीं योजना में क्षेत्रीय असमानताओं की समस्या तीसरी पंचवर्षीय योजना अविध और उसके बाद पांचवीं पंचवर्षीय योजना में अध्ययन की गई । जब राज्यों की पांचवीं पंचवर्षीय योजना तैयार की जा रही थी तो राज्यों के पिछड़े जिलों को मद्धेनजर रखतें हुए योजना बनाई गई।

इनके लिए निम्न सूचक प्रयोग में लाए गये-

- 1 शुद्ध कृषि उत्पादन में प्रति श्रमिक औसत मूल्य (Per worker value of net agricultural Producation)
- 2 शुद्ध औद्यौगिक उत्पादन में प्रति श्रमिक औसत मूल्य (Per worker average value of net industrial Production)
- 3 शुद्ध बोये गये क्षेत्रफल मे सिंचित क्षेत्रफल का प्रतिशत (Percentage of irrigated area to net sown area)
- 4 विधुत का प्रतिव्यक्ति उपभोग (Per Capita consumption of electricity)
- 5 प्रति सौ वर्ग किमी क्षेत्रफल पर सड़क मार्ग (Roads per 100sq. Km. of area)
- 6 प्रतिलाख जनसंख्या पर अस्पतालों की संख्या (Hospitals per lakh, of Population)
- 7 प्रतिलाख जनसंख्या पर औषधालयों की संख्या (Dispensaries per lakh, of Population)
- 8 प्रतिलाख जनसंख्या पर अस्पताल में विस्तरों की जनसंख्या (Bads in per lakh of Population)

- 9 प्रतिलाख जनसंख्या पर बैंक शाखाएँ (Branches of Banks per lakh of Population)
- 10 जनसंख्या की वृद्धि दर (Growth rate of Population)
- 11 प्रति हजार पुरूषों पर महिलाओं की संख्या (Number of Females per thousand males or Sex Ratio)
- 12 कुल जनसंख्या में 0 से 14 वर्ष के आयु समूह का प्रतिशत (Percentage of 0-14 years age groups of total population)
- 13 कुल जनसंख्या में शहरी जनसंख्या का प्रतिशत (Percentage of Urban Population to total Population)

के आधार पर हम आर्थिक प्रणाली या अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में क्षेत्रीय आर्थिक विकास के सूचकों / निर्देशकों को समेकित या एकीकृत कर सकते है। अर्थव्यवस्था के मुख्य क्षेत्र जिनके विकास को हम माप सकते है निम्म है—

- 1 कृषि क्षेत्र (Agricultural Sector)
- 2 औदयौगिक क्षेत्र (Industrial Sector)
- 3 बैंकिंग क्षेत्र (Banking Sector)
- 4 परिवहन क्षेत्र (Transport Sector)
- 5 सामाजिक क्षेत्र (Social Sector)
- 6 शिक्षा (Education)
- 7 स्वास्थ्य (Health)
- 8 राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय (National income and per capita income)
- 9 अन्य (Others)

18.2.6 कृषि क्षेत्र के विकास के सूचक (Indicators of Development of Agricultural)

कृषि क्षेत्र के विकास संबंधी, सूचक निम्न हैं -

1 भूमि से सम्बन्धित सूचक–

- (क) शुद्ध क्षेत्रफल वार प्रति व्यक्ति कृषि (Per Capita net area sown)
- (ख) सकल क्षेत्रफल वार प्रति व्यक्ति कृषि (Per Capita gross area sown)
- (ग) दोहरे कृषि क्षेत्र का सकल कृषि क्षेत्र का प्रतिशत (Percentage of double sown area to gross sown area)
- (घ) दोहरे कृषि क्षेत्र से शुद्ध कृषि क्षेत्र का प्रतिशत
- (ङ) शुद्ध सिंचित क्षेत्र से शुद्ध कृषि क्षेत्र का प्रतिशत (Percentage of net irrigated area to net area)

- (च) सकल सिंचित क्षेत्र से सकल कृषि क्षेत्र का प्रतिशत (Percentage of gross irrigated area to gross sown area)
- (छ) उपरोक्त सभी सूचकों का योग

2 श्रम से सम्बन्धित सूचक (Indicators Concerning labour)

- (क) कुल श्रमिकों में से कृषकों का प्रतिशत
- (ख) कुल श्रमिकों में से कृषि श्रमिकों का प्रतिशत
- (ग) ग्रामीण जनसंख्या में कृषर्को का प्रतिशत
- (घ) क्ल कृषि श्रमिकों में तकनीकी कृषि श्रमिकों का प्रतिशत
- (ङ) उपरोक्त सभी सूचकों का योग

3 पूंजी से संबंधित सूचक

- (क) कुल कृषि क्षेत्र के प्रति सौ हैक्टेयर पर पश्धन की संख्या
- (ख) कुल भूमि के प्रति सौ हैक्टेयर पर दुधारू पशु धन संख्या
- (ग) कुल कृषि क्षेत्र के प्रति सौ हेक्टेयर पर काम में लाये उर्वरक
- (घ) कृषि भूमि के प्रति सौ हेक्टेयर पर कुल कृषि उपकरण
- (ङ) कृषि उपज के प्रति लाख पर कृषि साख संस्थाओं की संख्या
- (च) उपरोक्त सभी सूचकों का योग

4 कृषि आय से संबंधित सूचक (Indicators relating to agricultural income)

- (क) प्रति व्यक्ति भूमि से प्राप्त आय (Per capita land revenue)
- (ख) फसल प्रति व्यक्ति (रूपयों में) (Per Capita value of crops in rupees)
- (ग) फसल प्रति हैक्टेयर रूपयों में (per heactare value of crops in rupees)
- (घ) उपरोक्त आय के सभी सूचकों का योग

5 कृषि विकास के सूचकों के योगों का योग या महायोग (Total of totals of indicators of Agricultural development)

- (क) भूमि से संबंधित सूचकों का योग
- (ख) श्रम से संबंधित सूचकों का योग
- (ग) पूंजी से संबंधित सूचकों का योग
- (घ) कृषि आय के सूचकों का योग
- (ङ) कृषि विकास के उपरोक्त चारों योगों का योग या महायोग और यह योग ही एक क्षेत्र विशेष के कृषि विकास के सभी सूचकों का समय होगा।

18.2.7 औद्यौगिक विकास के सूचक (Indicators of Industrial sector)

1 औद्यौगिक विकास के प्रत्यक्ष सूचक (Direct indicators of Industrial Sector)

- (क) प्रति लाख जनसंख्या पर पंजीकृत कारखानों की संख्या,
- (ख) प्रति लाख जनसंख्या पर पंजीकृत कारखानों में कर्मचारियों की संख्या (Number of workers in registered factories over per lakh of Population)

- (ग) कुल श्रमिकों में द्वितीयक व तृतीयक क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों की संख्या का प्रतिशत (Percentage of secondary and tertiary sector workers to total workers)
- (घ) लघु पैमाना उद्योगों, में प्रति व्यक्ति निवेश (Per Capita investment in small scale industries)
- (ङ) औद्यौगिक उत्पादन की प्रति व्यक्ति कीमत (Per Capita value of industrial Production)
- (च) औद्यौगिक विकास के प्रत्यक्ष सूचकों का योग

2 औद्योगिक विकास का माप आय के रूप में (Revenue as a measure of industrial Development)

- (क) बिक्री कर से प्राप्त प्रति व्यक्ति आय (Per Capita revenue from sales tax)
- (ख) उत्पादन शुल्क से प्राप्त प्रति व्यक्ति आय (Per Capita revenue from excise duties)
- (ग) मनोरंजन कर से प्राप्त प्रति व्यक्ति आय
- (घ) औद्यौगिक उत्पादन से प्राप्त प्रति व्यक्ति कीमत, (Per Capita value of industrial production)
- (इ) औद्यौगिक विकास के आय मापको का योग

3 औद्यौगिक विधुत विकास के सूचक (Indicators of Industrial electricity Development)

- (क) कुल विद्युत उपभोक्ताओं में से औद्यौगिक विद्युत उपभोक्ताओं का प्रतिशत (Percentage of industrial electricity consumers to total electricity consumer)
- (ख) ग्रामीण औद्योगिक विद्युत उपभोक्ताओं का कुल ग्रामीण विद्युत उपभोक्ताओं में से प्रतिशत (Percentage of rural industrial electricity consumers to total rural electricity)
- (ग) कुल विद्युत उपभोग में से औद्यौगिक विद्युत उपभोग का प्रतिशत (Industrial electricity consumption to total rural industrial electricity consumption to total rural electricity)
- (घ) कुल ग्रामीण विद्युत उपभोग में से ग्रामीण औद्यौगिक उपभोग का प्रतिशत (Percentage of rural industrial electricity consumption to total rural electricity consumption)

- (ङ) कुल संबद्ध या संयुक्त खेप में से ग्रामीण औद्यौगिक संयुक्त खेप का प्रतिशत (Percentage of industrial connected load to total connected load)
- (च) कुल संयुक्त खेप में से ग्रामीण औद्यौगिक संयुक्त खेप का प्रतिशत (Percentage of rural industrial connected load to total rural industrial connected load)
- (छ) विद्युत का प्रति व्यक्ति उपभोग (Per Capita consumption of electricity)
- (ज) औद्यौगिक विद्युत विकास के सूचकों का योग (Totals of indicators of industrial electricity development)

4 औद्यौगिक विकास के स्चकों के योगों का योग (Totals of totals indicators of industrial development)

- (क) औदयौगिक विकास के प्रत्यक्ष सूचकों का योग।
- (ख) औदयौगिक विकास के आयमापकों का योग।
- (ग) औद्यौगिक विद्युत विकास के सूचकों का योग।
- (घ) औद्यौगिक विद्युत विकास के उपरोक्त सूचकों के योगों (क, ख, व ग बिन्दुओं) का योग, और यही योग एक क्षेत्र विशेष के औद्यौगिक उत्पादन के सभी सूचकों का सकल योग या महायोग होगा।

18.2.8 बैकिंग विकास के सूचक (Indicators of Banking Development)

- (क) प्रति लाख जनसंख्या पर अनुस्चित वाणिज्यिक बैंकों की शाखायें (Branches of Scheduled commercial banks for per lakh of Population)
- (ख) प्रति लाख जनसंख्या पर को-आपरेटिव (सहकारी) बैकों की शाखाएँ (Branches of co-operative banks per lakh of Population)
- (ग) प्रति सौ वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में बैंकों की शाखायें (Bank branches per hundred square Kilometer of area)
- (घ) अनुसूचित वाणिज्यिक बैंको में प्रति व्यक्ति जमाएं (Per capita deposits in the scheduled Commercial Banks)
- (ङ) को–ओपरेटिव बैंकों में प्रति व्यक्ति जमाएं (Per capita deposits in cooperative Banks)
- (च) अनुसूचित वाणिज्यिक बैकों द्वारा प्रति व्यक्ति अग्रिमें (Per capita advances by scheduled commercial Banks)
- (छ) कुल जमाओं में अग्रिमों का प्रतिशत (Percentage of advances to total deposits)
- (ज) उपरोक्त सभी सूचिकाओं का योग (Totals of all indices)

18.2.9 परिवहन एवं संचार विकास के सूचक (Indicators of Transport and communication Development)

परिवहन एवं संचार विकास के सूचक निम्न है :-

- (क) प्रति लाख जनसंख्या पर पंजीकृत कुल वाहनों की संख्या
- (ख) प्रति लाख जनसंख्या पर मार्ग किमी. में (Roads in Kilometers per hundred square Kilometers of area)
- (ग) प्रति सौ वर्ग किमी क्षेत्रफल में मार्ग किमी में (Roads in Kilometers per hundred square kilometer of area)
- (घ) प्रति लाख जनसंख्या पर रेलवे रूट किलोमीटर में (Railway routes in Kilometers per lakh of Population)
- (इ) प्रति सौ वर्ग किमी क्षेत्रफल में रेलवे रूट किलोमीटर में (Railway routes in Kilometers per hundred square Kilometer of area)
- (च) प्रति लाख जनसंख्या में कुल डाकघर (Totals of post offices per lakh of Population)
- (छ) प्रतिलाख जनसंख्या पर टेलीफोन कनेक्शनों की कुल संख्या (Total numbers of telephone connections per lakh of Population)
- (ज) उपरोक्त सूचिकाइयों का योग (Totals of above indices)

18.2.10 सामाजिक विकास के सूचक (Indicators of Social Development)

क्षेत्रीय विकास में सामाजिक विकास के सूचक निम्न है:-

- (क) कुल जनसंख्या में ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत (Percentage of Rural Population to total Population)
- (ख) प्रति हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में शहरों की संख्या (Number of Cities per thousand square Kilometer of area)
- (ग) कुल जनसंख्या में गैर अनुस्चित जाति, जनजाति एवं पिछड़ी जाति जनसंख्या का प्रतिशत (Percentage of non SC / ST and BC Population to total Population)
- (घ) प्रति हजार पुरूषों पर महिलाओं की संख्या अर्थात् लिंग अनुपात (Sex Ratio)
- (ङ) जनसंख्या घनत्व या प्रति वर्ग किमी क्षेत्रफल में निवास करने वाले व्यक्तियों की संख्या।
- (च) कुल जनसंख्या में कुल कार्यरत जनसंख्या का प्रतिशत।
- (छ) साक्षर जनसंख्या का प्रतिशत (Percentage of literate population)
- (ज) स्वस्थ जनसंख्या का प्रतिशत (Percentage of healthy population)
- (झ) पक्के घरों में रहने वाली जनसंख्या का प्रतिशत

- (ञ) जीवन प्रत्याशा वर्षो में (Life expectancy)
- (ट) उपरोक्त सूचिकाओं का योग।

सामाजिक विकास के उपरोक्त सूचकों के अतिरिक्त एक क्षेत्र के सामाजिक विकास में शैक्षिक विकास एवं स्वास्थ्य विकास से संबंधित नीचे दिए जा रहे सूचकों को भी सिम्मिलित किया जाना चाहिए।

18.2.11 शिक्षा के विकास के सूचक (Indicators of Development of Education)

क्षेत्रीय विकास में शिक्षा के विकास के सूचक निम्न हैं -

- (क) कुल जनंसख्या (Total population) में साक्षर जनसंख्या (Literate population) का प्रतिशत।
- (ख) कुल पुरूषों (Total males) में साक्षर पुरूषों (Literate males) प्रतिशत।
- (ग) कुल महिलाओं (Total Females) में साक्षर महिलाओं (Literate Females) का प्रतिशत।
- (घ) कुल ग्रामीण जनसंख्या (Total rural population) में साक्षर ग्रामीण जनसंख्या (Literate rural population) का प्रतिशत।
- (ङ) व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों का प्रतिशत (Percentage of people having professional education)
- (च) प्रति लाख जनसंख्या पर स्कूल विद्यालयों की संख्या।
- (छ) प्रति हजार वर्ग किमी क्षेत्रफल में स्कूलों की संख्या।
- (ज) प्रति हजार विद्यार्थियों पर शिक्षकों की संख्या।
- (झ) प्रति लाख जनसंख्या पर महाविद्यालयों (Colleges) की संख्या।
- (ञ) प्रति हजार वर्ग किमी क्षेत्रफल में महाविद्यालयों की संख्या।
- (ट) प्रति सौ विदयार्थियों पर महाविदयालय में शिक्षकों की संख्या।
- (ठ) प्रति लाख जनसंख्या पर व्यावसायिक संस्थाओं (Professional institutions) की संख्या।
- (इ) प्रति हजार वर्ग किमी क्षेत्रफल में व्यावसायिक संस्थाओं (Professional institutions) की संख्या।
- (ढ) प्रति सौ छात्रों पर व्यावसायिक संस्थाओं में शिक्षकों की संख्या।
- (ण) परिवार का औसत आकार (Average size of family)
- (त) जनसंख्या की दशवार्षिकी वृद्धि दर (Decennial growth rate of population)

18.2.12 स्वास्थ्य विकास के सूचक (Indicators of Health Development)

स्वास्थ्य विकास के सूचक निम्न हैं-

(क) प्रति लाख जनसंख्या पर एलौपैथिक चिकित्सालयों (Allopathic Hospitals) की संख्या।

- (ख) प्रति लाख जनसंख्या पर एलौपैथिक चिकित्सालयों (Allopathic Hospitals) में बिस्तरों (Beds) की संख्या।
- (ग) प्रति हजार वर्ग किमी क्षेत्रफल में एलौपैथिक चिकित्सालयों (Hospitals) की संख्या।
- (घ) प्रति लाख जनसंख्या पर एलौपैथिक चिकित्सालयों (Allopathic Hospitals) में चिकित्सकों की संख्या ।
- (ङ) प्रति लाख जनसंख्या पर एलौपैथिक चिकित्सालयों (Allopathic Hospitals) की भवन निर्माण लागत (Costs of buildings)
- (च) प्रति हजार वर्ग किमी क्षेत्रफल मे, आयुर्वेदिक (Ayurvedic), होम्यौपैथिक (Homeopathic) और यूनानी (Unani) चिकित्सालयों की संख्या ।
- (छ) प्रति लाख जनसंख्या पर आयुर्वेदिक, होमियोपैथिक व यूनानी चिकित्सालयों (Ayurvedic, Homeopathic, Unani Hospitals) में चिकित्सकों (Doctors) की संख्या ।
- (ज) प्रति लाख जनसंख्या पर आयुर्वेदिक, होमियोपैथिक व यूनानी चिकित्सालयों में बिस्तरों की संख्या ।
- (झ) प्रतिलाख जनसंख्या पर आयुर्वेदिक, होमियोपैथिक व यूनानी चिकित्सालयों में उपकरणों की कुल लागत (Costs of equipments)
- (ञ) इलाज करवाने की प्रति व्यक्ति आवृति (Prescription frequency per person)
- (ट) पेय जल सुविधा (drinking water facility) प्राप्त करने वाले ग्रामों का प्रतिशत
- (ठ) प्रति लाख जनसंख्या पर पार्को (Parks) की संख्या,
- (इ) उपरोक्त सूचिकाओं का योग (Totals of above indices)

18.2.13 राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय विकास के सूचक (Indicators of National income and per capita income Development

आर्थिक विकास को मापने का राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय एक महत्वपूर्ण सूचक है, इन सूचकों में निम्न तत्व सम्मिलित हैं —

- (क) तत्संबंधी वर्ष की राष्ट्रीय आय (National income during the year) के सूचक ।
- (ख) तत्सबंधी वर्ष में राष्ट्रीय आय में हुई वृद्धि (Growth of NI during the Year) के सूचक
- (ग) तत्संबंधी वर्ष में प्रति व्यक्ति आयः के सूचक (Per capita income during the year)
- (घ) तत्संबंधी वर्ष में प्रति व्यक्ति आय में हुई वृद्धि के सूचक (Indicators of growth of per capita income during the year)

- (ङ) उपरोक्त सूचिकाओं का योग (Totals of above indices)
- 18.3 विकास के सूचकों को बनाने की क्रिया विधि (Methodology of making indicators of Development)

1 समंक और स्त्रोत (Data and Sources)

किसी भी विकास के अध्ययन हेतु हमें विषय वस्तु व अध्ययन की आवश्यकता व उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त (appropriate) सूचकों का चुनाव करना होता है । यह सूचक प्राथमिक समंकों पर आधारित हो सकते है या फिर द्वितीयक समंकों (Secondary) पर। परंतु प्राय : अधिकतर सूचक द्वितीयक समंकों पर आधारित होते है जो कि विभिन्न संस्थाओं (institutions), कार्यालयों (Offices) या अभिकरणों (Agencies) से प्राप्त होते है, विभिन्न समितियां (Committees) व विभिन्न व्यक्ति अपने अध्ययन हेतु विभिन्न प्रकार के सूचकों का प्रयोग करते है ।

- 2 सूचकों को तैयार करना (संकलित करना) संग्रहित करना व श्रेणी / कोटि / क्रम प्रदान करना (Processing, Aggregating and Ranking Indicators)
 - (1) सूचकों का प्रयोग या तो विकास की पूरे काल (Over time) तुलना करने या फिर संपूर्ण क्षेत्रों या दृष्टिकोणों से समग्र रूप से (Over space) तुलना करने के लिए किया जाता है।
 - (2) जब हम काल या समय (over time) के अनुसार विकास की तुलना (compare) करते हैं तो हम एक आधार वर्ष (base year) निर्धारित करते हैं और इस आधार वर्ष के विकास के आकड़ों या अंकों (figures) को सौ मानते हैं और तब दूसरें वर्ष (other year) या आलोच्य वर्ष के विकास के आकड़ों (figures) की गणना (Calculate) आधार वर्ष के आकड़ों से पंद्रह वर्ष के क्रमवार सूचकों (respective indicators) की निम्न सूत्र की सहायता से करते हैं । सूत्र :-

आलोच्य वर्ष का विकास अंकों में अाधार वर्ष का विकास अंकों में

या $\frac{\text{current year Development figure}}{\text{Base year's dovelopment figure}} \times 100$ डीएफएच

(3) जब संपूर्ण दृष्टिकोणों या क्षेत्रों की समग्र रूप (over space) के आधार पर तुलना करनी हो तो हमें एक औसत विकास अंक (average development figure) को आधार मानते है, जैसे यदि हमें एक राज्य के जिलों का तुलनात्मक अध्ययन (Comparing study) करना है तब हम राज्य के एक औसत अंक को

आधार के रूप में ले सकतें है और जिलें के विकास सूचकांक की गणना आधार वर्ष पर निम्न सूत्र की सहायता से कर सकते है —

सूत्र: -

जिला विकास का अंक राज्य के विकास का अंक

या $\frac{District\ Development\ figure}{State\ Development\ figure}\ \times\ 100$

विकास के यें अंक प्रत्येक जिले वार एक दूसरे कॉलम मैं समान्तर रखे जा सकते है । (उदाहरण तालिका क्रम एक)

- 4 अंत में एक संयुक्त या संघटित सूचिका बनाते हैं : इसके लिए प्रत्येक जिले की सभी सूचिकाओं को जोड़ते है और उन्हें सूचिकाओं की सखा से भाग देकर (devided) विकास का औसत सूचकांक (average index of development) बनाई है इसके बाद जिले की सभी सूचिकाओं के विकास के औसत सूचकांकों की संख्या से भाग देकर जिले का विकास सूचकांक निकालते है, इसी क्रम में सभी जिलों के विकास सूचकांकों को जोड़ कर संख्या से भाग देकर राज्य का विकास सूचकांक निकालते है :
- 5 संमको की कोटि या श्रेणी (rank) उनकी औसत सूचिकाओं के परिमाण या महत्व (importance) के आधार पर जिले, के अनुसार की जाती है । इन क्रमों को एक स्तंभ (column) में रखा जा सकता है । उदाहरण तालिका नं. 1

18.4 निबन्धात्मक प्रश्न

- 1 क्षेत्रीय विकास के सूचकों के, अध्ययन का क्या उद्देश्य (objectives) है?
- 2 क्षेत्रीय विकास के मुख्य सूचक कौन सें हैं?
- 3 एक क्षेत्र में आप कृषि विकास (Agrucultural Development) के स्तर का माप कैसे करेंगे।
- 4 एक क्षेत्र विशेष में औद्यौगिक विकास (Industrial Development)का माप कैसे करेंगे ।
- एक क्षेत्र विशेष में सामाजिक विकास (Social Development)को। मापने की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
- 6 विकास के सूचक समंकों के संकलन एकत्रीकरण व कोटि (Processing, Aggregating and Ranking) प्रदान करनें की विधि बताईये ।

18.5 सारांश (Summary)

आर्थिक विकास के सूचकों का अध्ययन विभिन्न क्षेत्रों की विकास योजनाएं बनाने के लिए, शहरीकरण की समस्याओं सै छुटकारा पाने (Problems of Urbanisation) अर्थ व्यवस्था की विकास की आन्तरिक द्दो (internal conflicts) को दूर करने के लिए क्षेत्रीयता (Regional) एवं राष्ट्रवाद (National) दूरियों को कम करने के लिए अर्थव्यवस्था के संतुलित

(Balanced) विकास के लिंए, जनजातीय क्षेत्रों (Tribal areas) के अध्ययन के लिए, अर्थ व्यवस्था के दुत गित व नियमित (rapidally and smoothly) विकास के लिए, संसाधनों के संरक्षण व विकास (development and conserve resources) के लिए तथा संतुलित औद्यौगिक विकास (Balanced industrial development) के लिए आवश्यक है, क्योंकि आर्थिक विकास में क्षेत्रीय अध्ययन अभी बहुत की कम हो पाया है या इस संबंध में साहित्य की अत्यंत कमी है।

क्षेत्र (Region) एक मैदान या क्षेत्रफल (Place or territory) स्थान या प्रदेश होता है जो कि आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, प्रशासनिक या भौगोलिक (Geographical) तथ्यों के आधार पर अध्ययन की आवश्यकता व उददेश्य के अनुसार अवलोकन हेतु प्रयुक्त होता है । इन क्षेत्रों को मुख्य रूप से तीन श्रेंणियों में विभक्त किया जा सकता है । विकसित क्षेत्र, विकासशील क्षेत्र व अविकसित क्षेत्र, तीनों ही क्षेत्रों की विशेषताएं भिन्न-भिन्न होती है ।

आर्थिक विकास के कारको में भूमि और प्राकृतिक संसाधन (Natural Resources) श्रम एवं मानवीय संसाधन, पूंजी एवं अतिरिक्त संसाधनों का अन्वेषण तकनीकी एवं उत्पादन की श्रेष्ठ तकनीक (introduction of better technique) को प्रस्तुत करना, संगठन व निर्णय लेना (Organisation and decision making) आर्थिक प्रणाली में श्रेष्ठतम कौशल का प्रयोग (economic mechanism) संस्थागत व संगठनात्मक परिर्वतन(institutional and organisational modification), आय का वितरण (income disribution) में सुधार लाना व इसे और अधिक समान (equitable) बनाना है। इनके साथ ही अन्य कारक व मानव संसाधनों की रूचियों, स्वभाव (interests and tastes). परंपराओं (traditions) को भी आर्थिक विकास के कारकों में सम्मिलित किया जा सकता है।

क्षेत्रीय विकास के सूचक एक निश्चित समयाविध में एक क्षेत्र की दूसरे क्षेत्र से आर्थिक आधार पर क्षेत्रीय विकास का तुलनात्मक अध्ययन करते है। भारत में विभिन्न सरकारी संस्थाएं एवं निजी संस्थाएं विकास के सूचकों को देश के विभिन्न प्रदेशों के विकास स्तर (development level) को मापने में प्रयुक्त करती है।

भारत की आर्थिक एवं वैज्ञानिक शोध संस्था (The economic and scienific research foundation of India) नें 1971 में विभिन प्रदेशों में कृषि विकास (Agricultural development) का अध्ययन किया। 1968 मे सरकार ने पांच सूचकों की सहायता सें पिछड़े क्षेत्रों की जानकारी के लिए कार्यकर्ताओं (Workers) का एक समूह नियुक्त किया जो कि पाण्डे समीति (Pandey Committee) कें नाम से जाना गया। बाद मे राष्ट्रीय विकास परिषद (National development council) के साथ योजना आयोग (Planning commission) के परामर्श पर यह कार्य छ सूचकों की सहायता सें किया गया जब कि बाद में चक्रवर्ती समिति (Chakravarty Committee) ने इसी कार्य को चौदहः सूचकों की सहायता से संपन्न किया। विकास के आधार पर पिछड़े प्रदेशों कों राष्ट्रीय समिति (National committee) ने छः मुख्य प्रदेशों में वर्गीकृत किया है। विभिन्न सूचकों की सहायता के आधार

पर देश में क्षेत्रीय विकास के अध्ययन के लिए प्रो. आर. टी. तिवारी (Prof.R.T.Tiwari) और पंचम पंचवर्षीय योजना के कार्यकर्ताओं का प्रो. राजकृष्ण (Prof. Raj Krishan) इकोनामिक टाईम्स अध्ययन दल (The Economic Times study group) भी बनाए गए।

विभिन्न अध्ययनों के आधार हम क्षेत्रीय विकास के सूचकों को अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में निम्म रूप से वर्गीकृत करते है, जैसे — कृषि, उद्योग, बैकिंग, परिवहन, सामाजिक क्षेत्र, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं राष्ट्रीय एवं—प्रति व्यक्ति आय सूचक बनाने के लिए जो समंक काम में लाये जाते है वे प्राथमिक (Primary) या द्वितीयक (Secondary) किसी भी प्रकार के हो सकते है। द्वितीयक संमको को विभिन्न संस्थाओं, कार्यालयों, अभिकरणों या व्यक्तियों से एकत्रित किया जा सकता है।

विकास के सूचकों को संकलन, संग्रहण या एकत्रीकरण व क्रम प्रदान करने का काम विशेष रीति दवारा स्पष्ट किया जाता है।

18.6 शब्दावली

1 क्षेत्र (Regions)

क्षेत्र एक भौगोलिक मैदान, क्षेत्रफल, स्थान या प्रदेश होता है। जिसकें अस्तित्व (existence) का अध्ययन की आवश्यकता या उद्देश्यानुसार आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, प्रशासनिक या भौगोलिक रूप से अवलोकन किया जाता है।

2 विकास के सूचक (Indicators of Development)

सापेक्षिक समंकों (Relative data) से उत्पन्न विकास का माप जो कि तुलनीय हो (comparable) विकास के सूचक कहलाते है।

3 समंक (Data)

समंक एक प्रकार की सूचना (Information) है जो शब्दों में भी (in words) है। सकती है। परन्त् प्रायः यह अंकात्मक (Figures) रूप में प्रकट की जाती है।

4 प्राथमिक समंक (Primary Data)

वे समंक जो सर्वेक्षण करता (Surveyer) द्वारा प्रथम समय ही एकत्रित किये जायें या वे समंक जिनका पूर्व में कोई अस्तित्व (existence) नहीं। प्राथमिक समंक कहलाते —.

5 द्वितीयक समंक (Secondary Data)

वे समंक जो पूर्व में एकत्रित किये जा चुके है वे पहले ही किसी के द्वारा काम में लाये जा चुके हों तथा जिन्हें अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन की आवश्यकतानुसार पुन: काम में ला सकता है।

18.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें (Some Useful Books)

- 1. डॉ. श्रीमित एस. मूर्ति रीजनल डिस्पेरिटिज इन दी इकोनोमिक डवलपमेण्ट (1985) एम. पी. प्रकाशक. उज्जैन.
- 2. अग्रवाल एण्ड सिंह. दी इकोनोमिक्स आफ अण्डर डवलपमेण्ट कण्ट्रीज.
- 3. एल्डर जे. एच. केपिटल मूवमेण्ट एण्ड इकोनॉमिक डवलपमेण्ट.

4. बाल कृष्ण, आर. स्ट्टीज़ इन इण्डियन इकोनॉमिक प्रोबलम.

5. बाल कृष्ण, आर. रीजनल प्लानिंग इन इण्डिया (1948) बंगलोर.

6. बूयर एण्ड यामे. दी इकोनॉमिक ऑफ अण्डर डवलप्ड कण्ट्रीज (1957) जेम्स

निसंबर एण्ड कम्पनी, कैम्ब्रिज.

7. भट्टाचार्य, डी. अण्डरस्टैंडिंग इण्डियाज इकोनॉमी.

8. बंकिम एण्ड फोर्ड प्लानिंग एण्ड ग्रोथ इन रिच एण्ड पूअर कण्ट्रीज.

9. बॉस एच. सी. स्पेशियल डिस्पर्सनस ऑफ इकोनॉमिक एक्टिविटी (1965)

रोटर्डम यूनिवर्सिटी.

10. बुकानन एण्ड एलिस एप्रोच टू इकोनॉमिक डवलपमेण्ट.

11. ब्राईट जे. वी. इकोनमिक डवलपमेण्ट एण्ड प्रोडक्टीविटी.

12. दत्ता एसेस ऑन इकोनॉमिक डवलपमेण्ट

13. दश्य जी. एच. जे. स्टडीज इन रीजनल प्लानिंग (1949) फिलिप, लन्दन.

14. डॉब, माँस इकोनामिक ग्रोथ एण्ड प्लानिंग.

15. दरबिर प्रोबलम्स ऑफ इकोनामिक प्लानिग.

16. दत्ता ए. के. सम लेसन्स ऑफ रीजनल प्लानिंग इन इण्डिया.

17. फ्रीडमेन जे. एण्ड रीजनल डवलपमेण्ट एण्ड प्लानिंग(1965) ए. रीडर लन्दन. एलोन्सो

18. गिलन्स ए. रीजनल प्लानिंग एण्ड डवलपमेण्ट (1955) लीडेन न्यूयार्क.

19. गुप्ता के. आर. इकोनोमिक्स ऑफ डवलपमेण्ट (1967) आत्मा राम एण्ड संस देहली.

20. हेन्सन पब्लिक एण्टर प्राइजेज एण्ड इकोनॉमिक डवलपमेण्ट.

21. हार्वे डी. पी. रीजनल रिसोर्सेज एण्ड इकोनॉमिक ग्रोथ (1960).

22. हासवैल, एम. आर. इकोनॉमिक्स ऑफ डवलपमेण्ट इन विलेज (1967)

एलाइड बॉम्बे.

23. हजलवुड ऑर्थर दी इकोनोमिक्स ऑफ अण्डरडवलप्ड एरियाज, (1955) ऑक्सफोर्ड

यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन.

24. हु सैन, आई. जेड. इकोनॉमिक्स फेक्टर्स इन इकोनॉमिक ग्रोथ (1967) एलाइड बाम्बे

25. हर्शमैन, ए. ओ. दी स्ट्रेट जी ऑफ इकोनॉमिक डवलपमेण्ट (1961) याले

26. इसार्द लेटर मेथडस ऑफ रीजनल एनेलाइज (1962) एम. आई. टी. लंदन.

27. कहार, एस. प्रोडिक्टविटी एण्ड इकोनॉमिक ग्रोथ.

28. केदार नाथ प्रसाद टेक्योलॉजिकल च्वॉइस अण्डर डवलप्ड प्लानिंग (963) पॉपुलर

पब्लिकेशन बाम्बे.

29. कहान, एन. ए. प्रोबलम्स ऑफ ग्रोथ ऑफ एन अण्डर डवलप्ड़

इकोनॉमि(1961)बॉम्बे, इण्डिया एशिया.

दी इकोनोमिक्स ऑफ ए बेकवर्ड रीजन इन ऐ बेकवर्ड इकोनामि 30. केदार नाथ प्रसाद ए केस स्टडी ऑफ बिहार (1961) 2 वोल्यूम, साइंटिफिक बुक ऐजेन्सी, कलकत्ता. 31. किण्डल बर्गन इकोनॉमिक डवलपमेण्ट मेकग्राहिल, न्यूयार्क. 32. लिबिंस्टीन , एच इकोनॉमिक बेकवर्डनेस एण्ड इकोनॉमिक ग्रोथ. डवलपमेण्ट प्लानिंग. 33. लुइस, एल. ए. 34. लियर मंथ, ए.टी.ए. मैस्र स्टेट-ए रीजनल सिन्थेसि, वोल्यूम (1960) इण्डियन स्टेंटीस्टिकल इन्स्टीट्यूट, कलक्ता. 35. मैंक ग्रा. ग्रेविन डकोनॉमिक थ्योरी एण्ड रीजनल प्रोबलम्स. 36. मेक ग्रा. ग्रेविन रीजनल पालिसी इन ब्रिटेन (1969) एलन एण्ड उनविन, लंदन. दी ग्रोइंग इकोनॉमिक. 37. मीड, जी. ई. 38. मेयर एण्ड बॉल्डविन इकोनॉमिक डवलपमेण्ट (1957) बॉम्बे, एशिया. इकोनॉमिक डवलपमेण्ट आफ अण्डर डवलपमेण्ट रीजन्स इन 39. मेटी, टी. के. इटली (1969) कर्नाटक यूनिवर्सिटी प्रेस, धारदार. लेवल्स ऑफ रिजलन डवलपमेण्ट इन इण्डिया (1961) सेन्सस 40. मिश्रा, ए. ऑफ इण्डिया. 41. मिर्डल, ग्न्नार इकोनॉमिक थ्योरी एण्ड अण्डरडवलप्ड रीजन्स (1966) वोरा एण्ड कम्पनी, बॉम्बे. 42. नाग, डी. एस. प्राबलम्स ऑफ अण्डरडवलप्ड इकोनॉमिक (1962) लक्ष्मी नारायण एण्ड संस, आगरा. रीजनल प्लानिंग, बॉम्बे. 43. प्रकाश राव, वी.एल.एस 44. प्रकाश राव जी.एल.एस एण्ड प्लानिंग रीजंस इन दी मैसूर स्टेट. एण्ड एल. एस. भाट 45. रेड्डावे, एल. आर. दी डवलपमेण्ट ऑफ दी इण्डियन इकोनोमि. 46. रीन, ए. एफ ए सर्वे ऑफ इकोनोमिक डवलपमेण्ट. 47. रोबॉक, एस. एच. रीजनल एण्ड डवलपमेण्ट इन इण्डिया (1959). 48. साहनी, बलवीर, एस. सेविंग्स एण्ड इकोनोमिक डवलपमेण्ट (1966).साईण्टिफिक ब्रक ऐजेन्सी, कलकत्ता. 49. शर्मा, टी. आर. लोकेशन ऑफ – इण्डस्ट्रीज इन इण्डिया. अण्डर डवलप्ड एरियाज (1957) हार्पर एण्ड रॉ, न्यूयार्क. 50. शेनन, एल.डब्ल्यू. 51. सिंगर इण्टरनेशनल डवलपमेण्ट ग्रोथ एण्ड चैलेंज, (1964) मैकग्राहिल न्यूयार्क. पेटर्नस ऑफ इकोनामिक डवलपमेण्ट. 52. सिंह बी. बी. इण्डिया ए रीजनल ज्योग्राफी (1967) नेशनल ज्योग्राफीकल 53. सिंह, आर. एल.

सोसायटी ऑफ इण्डिया, वाराणसी.

रीजनल प्लानिंग समप्रिंसिपल्स (1959).

55. वकील एण्ड, ब्रहमानंद प्लानिग फॉर एक्सपाण्डिंग इकोनॉमी.

54. टिनबर्जन, जे.

56. जिमरमेन, ली.जे. पूअर लैण्डस् स्पिलेण्डस दी वाईइनिंग गेप (1965).

रेण्डम हाउस, न्यूयार्क.

इकाई 19

भारत के प्रमुख प्राकृतिक संसाधन एवं उनका प्रादेशिक वितरण

इकाई की रूपरेखा

- 19.0 उद्देश्य
- 19.1 प्रस्तावना
- 19.2 भारत के प्राकृतिक संसाधन : प्रादेशिक विश्लेषण 19.2.1 प्राकृतिक प्रदेश
- 19.3 मिट्टी
- 19.4 वन संसाधन
- 19.5 खनिज
- 19.6 जल व शक्ति संसाधन
- 19.7 सारांश
- 19.8 निबन्धात्मक
- 19.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

19.0 उद्देश्य

संसाधनों से हमारा अभिप्राय उन तत्वों से है जो मनुष्य की निजी या सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करे । यह तत्व दोनों प्रकार के हो सकते है भौतिक एवं अभौतिक । भौतिक तत्वों में हम प्राकृतिक देनों को शामिल करते है जैसे वन, खिनज, मिट्टी, जलवायु, जल इत्यादि । अभौतिक तत्वों में मानव संसाधन व सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों की गणना की जाती है । इस अध्याय में हम भौतिक प्राकृतिक संसाधनों का अध्ययन करेंगे ।

19.1 प्रस्तावना

कुछ समय पूर्व तक उत्पादन का, विशेषत : कृषि का अध्ययन वस्तु की दृष्टि से किया जाता था (Commodity Approach) । मगर अब जोर दिया जाता है प्रादेशिक / क्षेत्रीय अध्ययन पर । सो चाहे कृषि उत्पादन हो अथवा औद्योगिक उत्पादन — किसी का भी अध्ययन करना हो, अर्थात किसी भी आर्थिक गतिविधि का अध्ययन करने के लिये प्रादेशिक दृष्टिकोण अपनाया जाता है । क्योंकि आर्थिक गतिविधियां प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर है इसलिये प्राकृतिक संसाधनों का भी प्रादेशिक या क्षेत्रीय अध्ययन आवश्यक हो जाता है । अब हम भारत के प्राकृतिक संसाधनों के प्रादेशिक वितरण का अध्ययन करेंगे ।

धरातल के उन भूखण्डों को, जिनकी प्राकृतिक दशाओं में समानता हो—जैसे जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति, मिट्टी इत्यादि इन्हें हम प्राकृतिक प्रदेशों की संज्ञा दे सकते है । इन प्राकृतिक प्रदेशों के विभाजन में मानवीय हाथ नहीं होता। यह पूर्णतया प्रकृति द्वारा निर्धारित किये जाते है । इसलिये यह होते भी अपरिवर्तनशील है । मगर विभिन्न प्रदेशों में कोई निश्चित सीमा—रेखा नहीं होती । जैसें किन्हीं दो प्रदेशों में उनकी सीमाओं पर तो जलवायु वही रहेगी । ज्यों—ज्यों सीमा रेखा से दूर प्रदेश के भीतर जायेंगे, जलवायु या अन्य प्राकृतिक संसाधन भिन्न होते जायेंगे और तब एक प्रदेश विशेष के विलक्षण लक्षण नजर आयेंगे।

स्थानीय विषमताओं को देखते हुए एक प्राकृतिक प्रदेश को भी अनेक उपप्रदेशों में बाँटा जा सकता है। जब हम किसी देश के प्राकृतिक संसाधनों का प्रादेशिक अध्ययन करते है तो हो सकता है कि कोई प्रदेश बहुत बड़े और कुछ बहुत छोटे हों। उसका कोई अन्तर नहीं पड़ता। ज्यादा महत्व इस बात का है कि प्रत्येक प्रदेश की संरचना, जलवायु, वन सम्पदा, पशु—पिक्षयों के प्रकार, कृषि का ढाँचा आदि एक समान हो।

भारत में प्राकृतिक संसाधनों के अध्ययन के लिये अनेक संस्थाएं है । आरम्भ में सर्वे ऑफ इंडिया (Survey of India) तथा जियोलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया (Geological Survey of India) या भारतीय भूगिभेंक सर्वेक्षण दो प्रमुख संस्थाएं थी । मगर समय की आवश्यकताओं को देखते हुए पंचवर्षीय योजनाओं में न केवल इनका विस्तार किया गया बल्कि अनेक नई संस्थाएं भी स्थापित की गई । राष्ट्र के प्राकृतिक संसाधनों के आँकलन के लिए 1950 में इंडियन ब्यूरो ऑफ माईन्स (Indian Beaurea of Mines) की स्थापना की गई जिसके कार्यों में सर्वेक्षण के साथ ही विकास के लिये नीति संरचना भी सिम्मिलित थी । पैट्रोलियम संसाधनों के अध्ययन व सर्वेक्षण के लिये तेल व प्राकृतिक गैस आयोग की स्थापना की गई । आसाम, गुजरात व बौम्बे हाई में पैट्रोल व गैस के भण्डार खोज निकालने में इस आयोग की महत्वपूर्ण भूमिका थी । 1945 में स्थापित जल व शक्ति आयोग जल व शक्ति संसाधनों के विकास में संलग्न है । भारतीय कृषि अनुसंधान केन्द्र के मिट्टी व भूमि उपयोंग सर्वेक्षण के अन्तर्गत मिट्टी का सर्वेक्षण किया जाता है । इस प्रकार भारत में अनेक संस्थाएं देश के प्राकृतिक संसाधनों के सर्वेक्षण, अध्ययन, आंकलन व उनके सर्वाधिक, सर्वश्रेष्ठ उपयोग के लिये कार्यरत है ।

19.2 भारत के प्राकृतिक संसाधन : प्रादेशिक विश्लेषण

भारत देश की उत्तर से दक्षिण तक लम्बाई 3214 किलोमीटर व पूर्व से पश्चिम तक 2938 किलोमीटर है । कुल भौगोलिक क्षेत्र 32,87,263 वर्ग किलोमीटर है । तथा समुद्र तट लगभग 7516 किलोमीटर है । क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत एक विशाल देश है व संसार में सातवें स्थान पर हें । न केवल आकार बल्कि भौगोलिक स्थिति व आर्थिक संसाधनों की दृष्टि से भी यह महत्वपूर्ण है ।

आर्थिक विकास की दृष्टि से कुछ प्राकृतिक संसाधनों का अत्यन्त महत्व है । इन्हें हम निम्नलिखित श्रेणियों में बांट सकते है :

- 1) भूमि व मिट्टी संसाधन
- 2) वन संसाधन
- 3) शक्ति संसाधन

- 4) खनिज संसाधन
- 5) जल संसाधन

अब हमें यह देखना है कि भारत में इन संसाधनों की उपलब्धि कहाँ–कहाँ होती है ।

19.2.1 प्राकृतिक प्रदेश

भौतिक परिस्थितियां, धरातलीय रूपरेखा, मिट्टी, जलवायु, फसलों का ढांचा, जल, शिक्त व खिनज संसाधनों के आधार पर भारत देश को अनेक लोगों ने विभिन्न प्रदेशों में बांटा है। हम यहां डा.पी. सेनगुप्ता द्वारा दिये गये विभाजन को मान कर चलेंगे। यह विभाजन उन्होंने (Census of India) में एक मोनोग्राफ में दिया था। उनके अनुसार भारत को पांच प्राकृतिक प्रदेशों में बांटा जा सकता है और इन प्रदेशों के आगे अनेक उप—प्रर्देश है। यह प्राकृतिक प्रदेश इस प्रकार है:

मुख्य प्रदेश

उप – प्रदेश

l हिमाचल प्रदेश

(1) पश्चिमी हिमालय

(i) कश्मीर हिमालय

(2) पूर्वी हिमालय

- (ii) पंजाब कुमाऊ हिमालय
- (iii) सिक्किम दार्जिलिंग
- (iv) असम हिमालय.
- (v) असम की पहाड़ियाँ व पठार

II बड़ा मैदान

- (1) गंगा का निचला मैदान
- (vi) डैल्टाई मैदान
- (vii) मध्य गंगा का मैदान
- (viii) असम घाटी
- (2) उपरी गंगा का मैदान
- (ix) (अ) रूहेलखण्ड मैदान
 - (ब) अवध का मैदान
 - (स) गंगा-यमुना का मैदान

- (3) उत्तरी-पश्चिमी मैदान
- (x) (अ) उत्तरी पंजाब का मैदान
 - (ब) दक्षिणी पंजाब का मैदान
 - (स) राजस्थान का मैदान

III प्रायद्वीपीय पठार और पहाड़िया

- (1) उत्तरी-पूर्वी प्रायद्वीपीय पठार
- (xi) (अ) छोटा नागपुर पठार
 - (ब) बुन्देलखण्ड पठार
 - (स) छत्तीसगढ़ बेसिन
 - (ड) बस्तर का पठार
 - (ई) उड़ीसा की पहाड़ियाँ

- (2) उत्तरी-पश्चिमी प्रायद्वीपीय पठार
- (xii) (अ) अरावली की पहाड़ियाँ
 - (ब) चम्बल बेसिन
 - (स) बुन्देलखण्ड का उपरी पठार
 - (ड) मालवा पठार और विन्धयन पहाड़ियाँ
- (3) महाराष्ट्र पठार और इसके अंग
- (xiii) (अ) लावा का पठार
 - (ब) पश्चिमी घाट
 - (स) बैणगंगा घाटी
- (4) कर्नाटक का पठार (xiv) (अ) मैदानी प्रदेश
 - (ब) मालनद प्रदेश

(5) आंध्र का पठार

- (xv) (अ) तेलंगाना पठार
 - (ब) रायलसीमा पठार

(6) तमिलनाडु का पठार

- (xvi) (अ) पठार और पहाड़ियों
 - (ब) पश्चिमी घाट प्रदेश

IV पश्चिमी तट

पश्चिमी तट

(xvii)(अ) कोंकण तट

(ब) कर्नाटक मालाबार तट

V पूर्वी तट

(xviii)(अ) तमिलनाडु तट

- (ब) आन्ध्रा तट
- (स) उड़ीसा तट

प्रथम अर्थात, हिमालय प्रदेश पहाड़ी क्षेत्र है जो 1000 से 6000 मीटर तक ऊँचा और 240 किलोमीटर की लम्बाई में विस्तृत है। यहां जलवायु काफी शुष्क है। भूमि का उपयोग इस प्रकार है। कृषि के लिये : 25 लाख हैक्टर, फल-उद्यान व वन : 22 लाख हैक्टर, चारागाह : 10 लाख हैक्टर। यहां कुछ खनिज पदार्थ भी पाये जाते है जिनमें प्रमुख स्लेट, चूने का पत्थर, बाक्साईट,' जिप्सम, ताँबा व लिग्नाईट, कोयला प्रमुख है।

बड़ा मैदान अधिकांशतः बाढ़ द्वारा निर्मित मैदानी क्षेत्र है। यहां की मिट्टी इसिलये बहुत उपजाऊ है तथा भूमिगत एवं धरातलीय जल स्रोतों से भरपूर है। इसिलये अधिकतर भूमि पर कृषि की जाती है। खिनज पदार्थ में तांबा, अभ्रक, लोहा—मैगनीज आयस्क, पैट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस काफी मात्रा में उपलब्ध है।

प्रायःद्वीपीय पठार एवं पहाड़ियों के क्षेत्र में भूमि कटी—फटी है, चट्टानों से भरी है, व लावा का विशाल क्षेत्र है, यह धरातल 900 मीटर से कम ऊंचा है। मिट्टी अधिक उपजाऊ नहीं है, जल स्रोत भी अधिक नहीं है। इस क्षेत्र में पाये जाने वाले मुख्य खनिजों में है — बाक्साईट, चूना पत्थर, अश्रक, सोना, डोलोमाईट, मेग्नेसाईट तथा मैगेनीज।

तटीय मैदान का क्षेत्र समुद्र और घाट के बीच का क्षेत्र है जो नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी के कारण अत्यन्त उपजाऊ है। जलस्रोतों की बहुतायत होने से कृषि के अन्तर्गत लगभग 1.8 करोड़ हैक्टर भूमि है। 66 लाख हैक्टर वन व 10 लाख हैक्टर पर चारागाह है। यहां प्राप्त मुख्य खिनजों में से कुछ बाक्साईट, जिप्सम, चूना–पत्थर, चीनी मिट्टी और लौह अयस्क इत्यादि है।

इनके अतिरिक्त कुछ द्वीप समूह भी भारतीय अर्थव्यवस्था में योगदान करते है। उदाहरणतः लक्षद्वीप व अंडमान व निकोबार द्वीपसमूह।

19.3 मिट्टी

भारत मुख्यतः एक कृषि प्रधान देश है जिसकी अधिकतर जनसंख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। कृषक की कुशलता को प्रभावित करने वाले तीन मुख्य कारक है : जलवायु, मिट्टी व ढलान। मिट्टी भूपृष्ठ पर मिलने वाले असंगठित पदार्थों की वह ऊपरी पर्त है जो धूल, चट्टानों अथवा वनस्पति के योग से बनती है । मिट्टी का निर्माण जलवायु तथा चट्टानों के विखण्डन के परिणामस्वरूप होता है । इसलिये विभिन्न जलवायु और विभिन्न चट्टानों से बनी मिट्टियां विभिन्न प्रकार की होती है । उनके रूप व उर्वराशक्ति में अन्तर रहता है । कृषि की गहनता व विस्तार को प्रभावित करने में मिट्टी का महत्वपूर्ण स्थान है । देश की फसलों का ढांचा मिट्टी के प्रकारों व भौगौलिक पर्यावरण पर निर्भर करता है । उदाहरणार्थ उत्तर—दक्षिण में कपास की अधिक उपज होती है क्योंकि वहां आर्द्रता सोखने वाली रेगड काली मिट्टी वाली भूमि है ।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्था (दिल्ली) के अनुसार मिट्टियां 8 प्रकार की होती है— (1) लाल मिट्टी (2) काली मिट्टी (3) लेटेराईट (4) क्षारयुक्त (5) हल्की काली (6) दलदली कांप (7) रेतीली व (8) वनों वाली ।

इनमें भारत के सर्वाधिक हिस्से में (कुल क्षेत्र के 43% भाग में) कांप मिट्टी पाई जाती है । 13.7% प्रतिशत भूमि पर काली मिट्टी व 10.2% पर लाल (रेतीली व लाल) मिट्टी पाई जाती है । इस प्रकार भारत का 2/3 हिस्सा इन तीन प्रकार की मिट्टीयों से बना है । लेटेराईट, लाल पीली मिट्टी मरूस्थल देश के क्षेत्रफल के 1/6 भाग में है । और पहाड़ी मिट्टी, तराई मिट्टी व सलेटी व भूरी मिट्टी 9.1% भाग पर है शेष सब प्रकार की मिट्टियां केवल 7.8% भूमि पर पाई जाती है ।

भारत की मिहियों को मुख्यत: चार श्रेणियों में बांटा जा सकता है :

- (1) पहाड़ी प्रदेश की मिट्टीयां
- (2) विशाल मैदान की मिट्टीयां
- (3) प्रायद्वीपीय मिट्टीयां
- (4) अन्य मिट्टीयां

हिमालय प्रदेश की मिहियाँ : इनमें अधिकतर वन उगते है । कुछ भूमि पर चावल व आलू तथा कांगड़ा, देहरादून, दार्जिलिंग व असम की पर्वतीय ढालों पर चाय उगाई जाती है ।

विशाल मैदान में सर्वत्र कांप मिट्टी पाई जाती है पंजाब, हरियाणा, उत्तर-प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, आसान तथा उत्तरी राजस्थान आदि में यही मिट्टी है । प्रायद्वीपीय मिट्टीयों में

काली, लाल, पीली व लेटेराईट मिट्टीयां होती है । काली मिट्टी में कपास, मूंगफली, ज्वार, बाजरा व तम्बाकु की फसलें उगाई जाती है । लाल व पीली मिट्टीयों में कपास, गेंहूँ, दालें, मोटा अनाज रागी, तम्बाकू और साग—सिट्जियां व आलू उगाये जाते है । लेटेराईट मिट्टी कर्नाटक, महाराष्ट्र, पूर्वी व पश्चिमी घाट, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, प. बंगाल, असम, मेघालय व बिहार इत्यादि में पाई जाती है। इनमें गन्ना, रागी व चावल का उत्पादन किया जाता है । इन राज्यों में ऊपर के भागों में चारा भी उगाया जाता है । इनके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकार की मिट्टीयां भी है जैसे पीट मिट्टी जो आंध्र प्रदेश में पाई जाती है व धान की खेती के लिये उपयुक्त है । दलदली मिट्टी जो पानी खड़ा रहने से बन जाती है, मरूस्थली मिट्टी व नमकीन मिट्टी । यह मिट्टियां अधिकतर अनउपजाऊ होती है ।

19.4 वन संसाधन

वन एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है । किसी भी अर्थव्यवस्था के विकास में वनों का महत्वपूर्ण योगदान है । इनसे हमें अनेक आवश्यक वस्तुएं प्राप्त होता है जिन्हें हम दो श्रेणियों में बांट सकते है—प्रधान वन उपज व गौण वन उपज । प्रधान उपज जिसमें लकड़ी व ईंधन शामिल है चीड़, देवदार, कैल, सिस्सू, टीक व साल के पेड़ों से प्राप्त होती है । गौण उपज में बांस, बेंत, गोंद, रंग, लाख, चमड़ा रंगने वाले रंग, राल, औषधयुक्त पौधे चारा व घास शामिल है । वन न केवल आर्थिक जीवन के लिये अपितू पर्यावरण के लिये भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है । जलवायु निर्धारण, भूमि कटाव व बाढ़ के नियन्त्रण, वर्षा की मात्रा, वन्य जीवन इत्यादि के लिये और प्रदूषण से बचाव के लिये वन बहुत आवश्यक है । आजकल तो इन्हें धरती के फेफड़े कहा जाता है।

भारत में 751 लाख हैक्टर भूमि या कुल भौगोलिक क्षेत्र के 19.7%' भाग पर वन पाये जाते है । आवश्यकता के अनुसार हमारा वन क्षेत्र बहुत कम है । प्रतिव्यक्ति वन क्षेत्र भी केवल 0.11 हैक्टर है जो संसार की 1.08 हैक्टर औसत की तुलना में बहुत कम है । इन वनों का वितरण भी बहुत असमान है । ज्यादातर पहाड़ी क्षेत्रों में था दूरदराज क्षेत्रों में ही वन पाये जाते है । यदि राज्यों की दृष्टि से देखा जाये तो अधिकतम वन क्षेत्र मध्य प्रदेश में (155 लाख हैक्टर), उसके बाद महाराष्ट्र (64 लाख), आंध्र प्रदेश (63 लाख), उड़ीसा (60 लाख), अरुणाचल प्रदेश (51 लाख) व उत्तर—प्रदेश में (51 लाख) है । शेष सब राज्यों में 50 लाख हैक्टर भूमि से कम भूमि वनों के अन्तर्गत है ।

इन्हें प्राकृतिक प्रदेशों में हम इस प्रकार विभाजित कर सकते है :

हिमालय प्रदेश— 18%, उत्तरी मैदान— 5%, पठारी क्षेत्र— 57%, पश्चिमी घाट व तट— 10%, व पूर्वी घाट व तट— 10%,

हिमालय क्षेत्र में वर्षा अधिक होने की वजह से सघन वन पाये जाते है । पश्चिमी हिमालय (कश्मीर क्षेत्र) में लगभग 32 लाख हैक्टर भूमि वनों के अन्तर्गत है जिनमें चौड़ी पत्तीवाले ओक, पर्णपाती, चीड़ व देवदार कें पेड़, बांस व सवाई घास मिलते है । इनकी लकड़ी से दियासलाई, कागज की लुग्दी, व गन्धा बिरोजा आदि बनाये जाते है । पूर्वी हिमालय प्रदेश में

16 लाख हैक्टर भूमि पर वन पाये जाते है जिनमें ओक, देवदार व बांस, अस तथा बेंत भी पैदा होते है ।

अब हम आते है बड़े मैदान पर । यह प्रदेश अधिकांशत : बाढ़ द्वारा निर्मित मैदानी क्षेत्र है जो सम्पूर्ण भारत के लगभग 175 भाग पर फैला है । अनेक निर्दयों जैसे गंगा, यमुना, सतलज, व्यास, रावी, गण्डक, कोसी, ब्रहमपुत्र इत्यादि से सिंचित होने के कारण इसमें अधिकतर भूमि पर कृषि की जाती है । इस प्रकार वनों का प्राय : अभाव है । असम घाटी में साल व लोह काष्ट प्रभूति वृक्ष तथा बांस, बेंत व अनेक अन्य प्रकार की पास मिलती है ।

प्रायद्वीपीय पठार एवं पहाड़ियों में बस्तर के पठार में लगभग 48 लाख हैक्टर भूमि पर साल व सागवान के बहुमूल्य वन है । उड़ीसा पहाड़ियों में भी साल तथा पतझड़ वाले घने वन पाये जाने है । छोटा नागपुर के पठार में बांस व सवाई घास के जंगल है । महाराष्ट्र के पठार में पश्चिमी घाट क्षेत्र में घने उष्ण कटिबन्धीय वन पाये जाते है । तमिलनाडु के पठार में पश्चिमी घाट के अन्तर्गत नीलगिरी, अन्नामलाई, पलनी और इलायची की पहाड़ियों में 12.5 लाख हैक्टर भूमि पर उष्ण कटिबन्धीय सघन वन पाये जाते है । तटीय मैदान में कर्नाटक—मलाबार तट पर सघन वन है जिनमें मूख्यत : सागवान के पेड पाये जाते है ।

भारत में वनों की उत्पादकता बहुत कम है केवल 0.5 घन मीटर प्रति हेक्टर प्रतिवर्ष । संसार की औसत 2 घन मीटर प्रति हैक्टर प्रतिवर्ष है । प्रति हैक्टर उत्पादन का मूल्य 1973 और 1980 के बीच दुगुने से अधिक हो गया – 23 रूपये से बढ़ कर 56 रूपये । लेकिन अन्य देशों की तुलना में यह फिर भी बहुत कम है जैसे पश्चिमी जर्मनी में 565 रूपये, स्विटजरलैण्ड में 494 रूपये व आस्ट्रिया में 336 रूपये । मगर यह देखा गया है कि जहाँ—जहाँ किसानों ने निजी तौर पर अपने खेतों में वानिकी की है तो 10,000 रूपये से अधिक आसानी से उपार्जित किये है । लाखों लोग वानिकी, से अपनी जीविका उपार्जित करते है । 1993 – 94 में वानिकी व लड्डे बनाने से विशुद्ध घरेलू उत्पाद 3832 करोड़ रूपये (1980– 81 मूल्यों पर) था और वनों से 8412 करोड़ रूपये की साधन आय प्राप्त हुई । 1976 – 77 में वन उपज के निर्यात से 90 करोड़ रूपये की आय हुई थी। मगर अभी भी हमें वन उपज आयात करने की आवश्यकता पड़ती है ।

19.5 खनिज

खनिज संसाधनों की दृष्टि से भारत काफी सम्पन्न देश है । यहां विभिन्न प्रकार के महत्वपूर्ण खनिज प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है जो एक मजबूत औद्योगिक आधार के लिये प्रयाप्त है । मगर इनका वितरण बहुत असमान है । दामोदर घाटी में पैट्रोलियम के अलावा अन्य खनिज पदार्थों का अधिकतम भण्डार है जबिक मंगलोर से कानपुर तक यदि एक रेखा खींची जाये तो उसके पश्चिम में पठारी क्षेत्र में बहुत कम खनिज सम्पदा है इस रेखा के पूर्व की ओर धातु खनिजों, कोयले, अभ्रक व अनेक गैर धातु खनिजों के भण्डार है ।

खनिज तीन प्रकार के होते है:

- (1) धात्विक खनिज : जैसे लोहा, ताम्बा, मैगनीज, टंगस्टन, सीसा, जस्ता, बाक्साईट, सोना, चाँदी, इल्मेनाईट, बैराईट, मैग्नेसाईट, सिलेमेनाईट, टिन इत्यादि ।
- (2) अधात्विक खिनज जैसे अभ्रक, एसबेस्टस, पायराईट, नमक, जिप्सम, हीरा, घिया पत्थर, किटोनाईट, इमारती पत्थर, संगमरमर, चूने और सीमेंट का पत्थर, कांच बनाने का बालू व विभिन्न प्रकार की मिट्टियां।
- (3) अणुशक्ति वाले खनिज : जैसे युरेनियम, थोरियम, इल्मेनाईट, बैरीलियम, जिरकन, सुरमा, ग्रेफाईट इत्यादि ।

भारतीय भूगर्भीय सर्वेक्षण के अनुसार भारत के 50 मुख्य धातु क्षेत्र व लगभग 400 मुख्य स्थान है जहां यह धातुएं मिलती है । खिनज संसाधनों का जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। लगभग उत्पादन के हर क्षेत्र में किसी न किसी खिनज पदार्थ की आवश्यकता पड़ती है—लोहा और कोयला तो बिलकुल ही आधारभूत खिनज है, मैगनीज, ताम्बा, कांच बनाने की बालू, चूना पत्थर, अभ्रक, बाक्साईट, पैट्रोलियम और गैस । इन सभी पदार्थों के बिना आर्थिक जीवन की कल्पना करना भी कठिन है।

भारत मे अधिकतर खनिज पदार्थ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है । लौह—अयस्क

आधुनिक युग में लोहे का अत्यन्त महत्व है यह न केवल मजबूत व टिकाऊ धातु है बिल्क सस्ता भी है । साथ ही यह अच्छी विदेशी मुद्रा कमाने का भी साधन है । उदाहरणार्थ 1990–91 में 1200 करोड़ रूपये के लौह अयस्क का निर्यात किया गया । भारत में उत्तम किस्म के लौह अयस्क के भण्डार भारतीय भूगर्भीय सर्वेक्षण के अनुसार अनुमानत : 2222 करोड़ टन है जो कि विश्व के भण्डार के लगभग 20% है । और संसार में सर्वाधिक है । लोहे और इस्पात उद्योग के लिये आवश्यक कच्चा माल भी आसपास ही उपलब्ध होने के कारण लोहा–इस्पात उद्योग के विकास की सम्भावना भी अच्छी है ।

यहां लौह अयस्क के भण्डार पंजाब, कुमाऊ, हिमालय क्षेत्र में (6.0 करोड़ टन), डैल्टाई मैदानों में उत्तरी—पश्चिमी प्रायद्वीपीय पहाड़ियों में (2.03 करोड़ टन), उत्तरी—पूर्वी प्रायद्वीपीय पठार व बस्तर में (441.2 करोड़ टन), उड़ीसा की पहाड़ियों में छोटा नागपुर में (जहां देश के लौह अयस्क भण्डार का 96% भाग है) तथा बैन गंगा घाटी क्षेत्र में (2.2 करोड़ टन) और रायलसीमा के पठार में (18.4 करोड़ टन), तिमलनाडु के पठार में (30 करोड़ टन) तथा तटीय मैदानों में कोंकण तट पर (61 से 81 करोड़ टन) है । इसके अतिरिक्त कुछ भण्डार उत्तरी पश्चिमी मैदान, दिक्षण भाग में दामोदर घाटी में, असम घाटी में, आंध्रप्रदेश में, तेलंगाना पठार, कर्नाटक पठार व कर्नाटक तट पर भी पाये जाते है । राज्यों की दृष्टि से देखें तो अधिकतर भण्डार पाये जाते है उड़ीसा, बिहार, मध्यप्रदेश, कर्नाटक और गोआ में ।

भारत में 1994–95 में लौह अयस्क का 607 लाख टन का उत्पादन हुआ जिसका मूल्य 1043.0 8 करोड़ रूपये था। उस वर्ष इसके 260 लाख टन निर्यात से 1297 करोड़ रूपये की विदेशी मुद्रा अर्जित की गई।

कोयला

लोहा इस्पात उद्योग के लिये आवश्यक एक और खिनज है कोयला । कोयला न केवल उर्जा व गर्मी का स्त्रोत है बिल्क अनेक आवश्यक पदार्थों का भी स्त्रोत है जैसे गैस, तारकोल, अमोनिया, पिच, कोक, तेल, उर्वरक, प्लास्टिक, रंग इत्यादि । भारत का विश्व मे कोयला उत्पादन में तीसरा स्थान है । कुमाऊ हिमालय में लिग्नाईट कोयला, पूर्वी हिमालय प्रदेश व दार्जिलिंग—सिक्किम क्षेत्र में भूरा कोयला पाया जाता है । पूर्वी पहाइियों और पठारी क्षेत्र में भी इसके सम्भावित विशाल भण्डार है । और गारों खासी और नागालैण्ड में भी अछूते विशाल भण्डार है । राजस्थान में कुछ लिग्नाईट, व गंगा के डेल्टाई मैदान में दामोदर घाटी में काँफी बड़े भण्डार (1320 करोड टन) है । असम घाटी क्षेत्र, उत्तरी पूर्वी प्रायद्वीपीय पठार में बघेलखण्ड पठार में लिग्नाईट, छत्तीसगढ बेसिन में, बस्तर के पठार में भी कोयला पाया जाता है । छोटा नागपुर का पठार में कोकिंग कोल का देश का 54% तथा अकोकिंग कोल का 30% पाया जाता है । बैनगंगा घाटी, तेलंगाना पठार और पश्चिमी तटीय मैदानों में कच्छ के प्राय द्वीप में लिग्नाईट पाया जाता है । राज्यों की दृष्टि से प. बंगाल में रानीगंज व बिहार में झिरया व बोकारों में मुख्य कोयले की खाने है । लिग्नाईट तिमलनाडु में, नई वेली में अधिक मिलता है । बिहार में देश के 37% भण्डार है, पश्चिम बंगाल में 18% व मध्यप्रदेश में 16%।

आर्थिकी

भारत में 1995–96 में 2700 लाख टन कोयले का उत्पादन किया गया। कुल उत्पादन का 60% से अधिक भाग विद्युत उद्योग में काम आता है और 13% लोहा और इस्पात उद्योग में । अन्य सब कार्यों के लिये शेष 37% कोयले का प्रयोग होता है ।

बाक्साईट

यह एक अन्य महत्वपूर्ण खिनज है जिससे अल्यूमिनियम बनता है । यह धातु लौहे की तरह मजबूत मगर बहुत हल्की होने के कारण हवाई जहाज बनाने के काम आती है । इसके भारत में 2804 लाख टन के अनुमानित भण्डार है । और संसार में बाक्साईट उत्पादन में भारत का बारहवां स्थान है । यह पदार्थ हिमालय क्षेत्रों में पीर—पंजाल पहाड़ियों पर (1.30 करोड़ टन), प्रायद्वीपीय पठार में बुंदेलखण्ड, बघेलखण्ड, छत्तीसगढ वेसिन (2.5 लाख टन) बस्तर के पठार में, छोटा नागपुर के पठार मे, 17% महाराष्ट्र, कर्नाटक व आका के पठारों में, (20 लाख टन) मिलता है । पिश्चमी तट पर कच्छ प्रायद्वीप में (61 लाख टन), काठियावाइ प्रायद्वीप में (1.0 करोड़ टन) व कोंकन तट पर भी— कुछ भण्डार मिलते है ।

आर्थकी

1994–95 में 78.28 करोड़ रूपये मूल्य का 46.44 लाख टन बाक्साईट का उत्पादन हुआ। लगभग 50 लाख रूपये मूल्य के बाक्साईट का प्रतिवर्ष निर्यात होता है।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य महत्वपूर्ण धातुएं जो भारत में पाई जाती हैं इस प्रकार है । डोलामाईट पीर पंजाल, पूर्वी हिमालय प्रदेश, छत्तीसगढ बेसिन (25 लाख टन), छोटा नागपुर, महाराष्ट्र व कर्नाटक के पठार, उत्तरी—पश्चिमी मैदान व प्रायद्वीपीय पठार में,

बघेलखण्ड और काठियावाड़ में (46 लाख टन) मिलता है । इसके अनुमानत 29.36 करोड़ टन के भण्डार है । ग्रेफाईट पीर पंजाल, बस्तर, आंध्रप्रदेश व तमिलनाइ के पठार में पाया जाता है । जिप्सम के अनुमानत : 11349 लाख टन के भण्डार भारत में है यह पीर पंजाल (46 करोड़ टन) राजस्थान (89.90 लाख टन) व आधप्रदेश के पठार में 1.5 करोड़ टन पाया जाता है । चूने का पत्थर के भण्डार 2.83 करोड़ टन है । यह भी पीर पंजाल मे, भूटान में (डोलोमाईट युक्त) गारो खासी, संयुक्त मीकर व उत्तरी कछार पहाड़ियों में, उत्तरी पश्चिमी मैदान में, राजस्थान में (310 करोड़ टन), रोहिलखण्ड का मैदान, मध्यगंगा के प्रायदवीपीय किनारों पर (40 करोड़ टन), डैल्टाई मैदान में (152 लाख टन), असम घाटी क्षेत्र में, उत्तर प्रायद्वीप में अरावली पर्वत में (34.5 करोड़ टन), उदयपुर, बुंदेलखण्ड, छत्तीसगढ वेसिन में (1.2 करोड़ टन) बस्तर, महाराष्ट्र, कर्नाटक व आंध्रप्रदेश के पठार में, पश्चिमी तट पर (16.7 करोड़ टन), काठियावाड़ में (7 करोड़ टन), तथा ग्जरात के मैदान में (86.8 करोड़ टन) पाया जाता है । कांच बनाने की बालू भारत में पूर्वी हिमालय प्रदेश मे खासी और जयन्तिया पहाडियों में, उपरी गंगा मैदान में व ग्जरात के मैदान में पाई जाती है । ताम्बे के भारत में अन्मानित भण्डार 335 लाख टन है । यह धात् उत्तरी पश्चिमी मैदान में राजस्थान में (30 लाख टन), व बस्तर व छोटा नागपुर के पठारों में पाया जाता है। अभ्रक भी विभिन्न पठारी क्षेत्रों में पाया जाता है। मैगनीज डेल्टाई मैदान में उत्तर–पश्चिमी प्रायदवीपीय पठार में अरावली पर्वत पर (40 लाख टन) तथा बस्तर, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश के पठार में व तटीय गुजरात में कर्नाटक तट पर पाया जोता है ।

खनिज तेलों अर्थात पैट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस की दृष्टि से भारत की स्थिति अभी सन्तोष जनक नहीं है । यदयपि अन्तर्राष्ट्रीय भूगर्भिक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में 620 करोड़ टन भण्डार है, पैट्रोंलियम रसायन मन्त्रालय के अनुसार देश में 1313 लाख टन तेल के भण्डार तथा 592 करोड घन मीटर गैस के भण्डार है । अधिकतर तेल के स्त्रोत असम की पहाडियों में है । तेल तथा प्राकृतिक गैस आयोग के द्वारा किये गये सर्वेक्षण से चला है कि भारत में लगभग 26 बेसिन है जिनका 84.4% धरती पर (लगभग 14.1 लाख वर्ग किलोमीटर) तथा 15.6% (2.6 लाख वर्ग किलोमीटर) सागरीय क्षेत्र में है जिससे तेल मिलने की सम्भावनाएं है। अधिकतर तेल उपरी असम (ब्रह्मप्त्र घाटी जिसमें नागालैण्ड मिकिर की पहाड़िया और मेघालय के ऊपरी पठार, मिजोरम मणिप्र, त्रिप्रा सिलचर और कच्छार शामिल है, डिबोई क्षेत्र, स्रमा घाटी, नाहरकटिया तेल क्षेत्र, समरीजन मेरेन तेल क्षेत्र तथा रूद्र सागर लखवा तेल क्षेत्र है । इस क्षेत्र में 1987 में 45.10 लाख टन तेल का उत्पादन हुआ। पश्चिमी बंगाल, जिसमें उड़ीसा का उत्तरी पूर्वी व तटीय भाग पश्चिम हिमालय प्रदेश, राजस्थान, सौराष्ट्र, कच्छ जिसमें अरावली के पश्चिम में राजस्थान के बीकानेर, जैसलमेर और बाइमेर जिले, कच्छ के साम्द्रिक क्षेत्र, उत्तरी सौराष्ट्र के मैदान और सौराष्ट्र के पठार आते हैं, उत्तरी ग्जरात प्रदेश जिसमें अंकलेश्वर, खम्भात व अहमदाबाद क्षेत्र है। इसमें 1987 में 50.4 लाख टन तेल का उत्पादन हुआ । तमिलनाइ, आन्ध्र प्रदेश तथा केरल कें तटीय क्षेत्र, अण्डमान निकोवार तट व बम्बई के निकट

बौम्बे हाई क्षेत्र में भी तेल के भण्डार है । मगर अभी तेल का ज्यादा उत्पादन, (1) असम और उससे सम्बधित क्षेत्र, (2) खम्भात की खाड़ी के निकट गुजरात तथा (3) बौम्बे हाई में होता है। 1994–95 में 322.39 लाख टन तेल का उत्पादन हुआ । मगर खपत अधिक होने के कारण हमें 17838 करोड़ रूपये मूल्य का 413 लाख टन तेल का आयात करना पड़ा । सन्तोष की बात यह है कि जहां हम कुछ समय पूर्व 90% तेल विदेशों से मंगवाते थे आज मांग बढ़ जाने के बावजूद केवल 50% का आयात करना पड़ता है ।

खनिज पदार्थों के कुल उत्पादन मूल्य में स्वतंत्रता के पश्चात तेजी से वृद्धि आई है । 1951 में खनिज उत्पादन का कुल मूल्य 85 करोड़ रूपये था जो 1992 में 17241 करोड़ रूपये हो गया। उत्पादन मात्रा सूचकांक (1970=100)1961 में 62 से बढ़ कर 1989 में 306 पहुंच गया। भारत के निर्यात में भी खनिजों का महत्वपूर्ण योगदान है । 1993–94 में कुल निर्यात में 1.9% लौह अयस्क, 0.9% प्रोसेस्ड खनिज, 1.0% अन्य खनिज व 1.8% तेल व तेल उत्पादन का भाग था । इनका मूल्य अमरीकी डॉलर में क्रमश : 43. 27, 19.6, 23.2 व 39.78 करोड़ बैठता है ।

19.6 जल व शक्ति संसाधन

जल संसाधन भारत की जीवन रेखा है । यद्यपि भारत में जल अधिकतर क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है । इसके वितरण में तीव्र विषमतायें है । जल संसाधन दो प्रकार के होते है। (1) धरातलीय एवं(2) भूगर्भिय । धरातलीय संसाधन धरती के ऊपर व भूगर्भीय जमीन के अन्दर पाये जाने वाले जल को कहते है । अनुमानत : समपूर्ण देश में औसतन 100 सेंटीमीटर वर्षा होती है जिसके दवारा लगभग 370 लाख हैक्टर मीटर जल प्राप्त होता है । इसमें 125 लाख हैक्टर मीटर जल वाष्प बन कर उडद जाता है । व 79 लाख हैक्टर मीटर धरती दवारा सोख लिया जाता है । इस प्रकार निदयों को 166 लाख घन मीटर जल ही प्राप्त होता है । मगर हमें यहां यह बात ध्यान में रखनी हैं कि भारत में वर्षा सामयिक, अनिश्चित तथा असमान होती है । अर्थात इसका समय काफी कुछ बंधा हु आ होने के बावजूद अनेक बार या तो वर्षा समय पर नहीं होती या फिर कम होती है । साथ ही देश के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न मात्रा में वर्षा होने से जल वितरण में असमानता भी बहुत है । और फिर वर्ष में क्छ ही महीने बारिश होती है, शेष वर्ष सूखा जाता है । इन सभी कारणों से विभिन्न उपयोगों के लिये धरातलीय व भूगर्भिक दोनों प्रकार के संसाधनों पर निर्भर रहना पड़ता है । अनुमानत : नदी जल की 660 करोड़ घनमीटर मात्रा सिंचाई के लिये काम में लाई जा सकती है । इसमें 1951 में केवल 17% या 95 करोड़ घनमीटर जल का प्रयोग हो रहा था । चौथी योजना के अन्त तक 45% जल का उपयोग किया जा सका ।

वर्षा का जो हिस्सा भूमि में सोखा जाता है वह भी सारा उपयोग के लिये उपलब्ध नहीं होता । 7900 करोड़ घनमीटर में से केवल 4300 करोड़ घनमीटर का उपयोग ही कृषि के लिये किया जाता है, शेष 3600 करोड़ घनमीटर इतना नीचे तक चला जाता है कि सिर्फ गहरे कुओं आदि के द्वारा ही उसका प्रयोग किया जा सकता है ।

भूगर्भिक जल के स्त्रोत पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिमी बंगाल मे है। भूगर्भिक जल के धरातलीय जल की तुलना में अनेक लाभ है जैसे, जहां तालाब आदि में पानी रिस कर तालाब सूख जाते है, भूगर्भिक पानी में रिसाव से कमी नहीं आती । न ही इसमें वाष्पीकरण होने का डर है । भारत में भूगर्भिक जल की सम्भावना काफी है । अन्दाज है कि 300 मीटर की गहराई पर 37 करोड़ हैक्टर मीटर जल भण्डार है । यह मात्रा वर्षा से प्राप्त जल से लगभग 10 गुना है ।

द्वितीय सिंचाई आयोग ने 1972 में अनुमान दिया था कि वर्षा व रिसाव से पुनर्भरण 670 लाख हैक्टर मीटर होता है । कुछ उपाय करने पर यह मात्रा बढाई भी जा सकती है । हाल की कुछ गणना के अनुसार पठारी क्षेत्र की मजबूत चट्टानों में जो भारत की भूमि का 70% है पहले जितना अनुमान लगाया गया था उससे कही अधिक जल है । अन्दाज है कि वार्षिक उपयोग की सम्भावना 420 लाख हैक्टर मीटर है जबिक अभी हम केवल 100 लाख हैक्टर मीटर का उपयोग कर रहे हैं । इस 420 लाख हैक्टर मीटर में से 21.9% उत्तर प्रदेश में जिसमें केवल 29% का उपयोग हो रहा है, मध्यप्रदेश में 14.1%, जिसमें 8% का उपयोग हो रहा है, पंजाब और हरियाणा में क्रमश : 3% तथा 2.1% सम्भावना है जिसमें मे यह क्रमश : 73% व 70% का उपयोग कर लेते है । यह प्रयोग कुओ व नलकूपों की वजह से सम्भव हुआ है । भारत के कुल जल संसाधनों व सिंचाई के लिये उनके उपयोग का विवरण हम इस प्रकार देख सकते हैं—

तालिका 19.1 भारत के जल संसाधन

(दस लाख घन मीटरों में) नदी बेसिन धरातलीय सम्भावित उपयोग में लाया धरातली योग बहाव भूमिगत जल बहाव गया भूमिगत जल 1. सिन्द 76,907 11,109 8,515 54,563 46,048 2. गंगा 5,09,760 82,698 13,421 40,9551 73,376 4,99,914 6,058 220 20,803 6,278 ब्रहमप्त्र 12,278 4,937 8,389 4. लूनी 3,812 12,201 तथा और ग्जरात की कच्छ नदियाँ 5. साबरमती 3,663 2,467 1,470 1,826 3,296 6. माही 7,702 2,467 3,830 1,083 4,913 7. नर्मदा 44,331 4,937 2,786 1,372 4,158 8. तापी 17,982 5,814 5,383 1,545 6,928

| 9. गोदावरी | के | 32,024 | 5,184 | 11,756 | 299 | 12,055 |
|------------------|------|----------|--------|--------|----------|--------|
| उत्तर की | और | | | | | |
| बहने | वाली | | | | | |
| नदियाँ | | | | | | |
| 10. ब्राहमणी | एवं | 27,363 | 5,184 | 4,320 | 136 | 4,456 |
| वैतरणी | | | | | | |
| 11. महानदी | | 66,644 | 12,343 | 21,287 | 277 | 21,564 |
| 12. गोदावरी | | 1,17,997 | 14,194 | 32,732 | 5,389 | 38,121 |
| 13. कृष्णा | | 62,784 | 9,628 | 52,437 | 6,513 | 58,950 |
| 14. पेनार | | 6,858 | 2,374 | 5,031 | 1,390 | 6,421 |
| 15. कावेरी | | 18,601 | 5,801 | 17,930 | 2,557 | 20,487 |
| 16. प्रायद्वीप | के | 2,17,894 | 13,577 | 13,467 | अनुपलब्ध | 13,467 |
| पश्चिम में बहनें | | | | | | |
| वाली निदयाँ | | | | | | |

यदि हम जलशक्ति को देखें तो पूर्वी हिमालय प्रदेश में ब्रहमपुत्र से असम हिमालय में लगभग 1 लाख हैक्टर भूमि में सिंचाई की सम्भावनाएं है । बड़ा मैदान में बाढ़ के द्वारा निर्मित मैदानी क्षेत्र है—भारत के 1/5 भाग में फैले इस प्रदेश में अनेक नदियाँ है — गंगा, यमुना, सतलज, व्यास, गण्डक, कोसी और ब्रहमपुत्र । यद्यपि राजस्थान का मरूस्थल भी इसी क्षेत्र का हिस्सा है, मगर शेष "मैदान " क्षेत्र में जल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है । ऊपरी गंगा मैदान में गंगा—यमुना का दोआब, रोहिलखण्ड का मैदान तथा अवध का मैदान शामिल है । गंगा—यमुना दोआब में लगभग 20 लाख हैक्टर भूमि की सिंचाई हो सकती है । यहां चावल, गन्ना, कपास, गेहूं, तिलहन इत्यादि फसलें पैदा होती है । रोहिलखण्ड व अवध के मैदानों में गन्ना, कपास, गेहुं, चावल पैदा किया जाता है । मध्य गंगा के मैदान में उत्तर प्रदेश के भाग व बिहार में घाघरा, कोसी व गण्डक नदियाँ बहती हैं । वर्षा पर्याप्त होने से चावल, गन्ना व पटसन की फसलें यहां उगाई जाती है । डैल्टाई मैदान में चावल, जूट व मैदानी भाग की तराई में चाय की फसलें उगाई जाती है । असमघाटी क्षेत्र में तिलहन और चाय और पहाड़ी ढाल पर चाय, नारंगी व अनानास के बागान है।

प्रायद्वीपीय पठार एवं पहाड़ी क्षेत्र में सिंचाई की सम्भावनायें इस प्रकार है — उत्तरी— पश्चिमी प्रायद्वीपीय पठार— 16000 हैक्टर व चम्बल बेसिन 6000 हैक्टर । बुंदेलखण्ड में अधिकतर तालाब व छोटे बांधों द्वारा सिंचाई होती हैं । मालवा पठार व विन्धयन उच्च भूमि क्षेत्र में सिंचाई व जलविद्युत दोनों की सम्भावनाएं बहुत कम है क्योंकि भूमि कठोर व शुष्क है। महाराष्ट्र के पठार में ताप्ती नदी बहती है यहां कपास, गेहूं व मोटा अनाज पैदा किया जाता है । कर्नाटक के पठार में भीमा, कृणा, तुंगभद्रा व कावेरी मुख्य नदियाँ है । इस क्षेत्र में मूंगफली, गन्ना और कपास अधिक पैदा किये जाते है । आंध्रा के पठार में पेनार व सगीनेरू

निदयाँ बहती हे, तेलंगाना पठार में अधिकतर तालाबों के द्वारा सिंचाई की जाती है । यहां कपास व मोटा अनाज पैदा किया जाता है । रायलसीमा पठार में सिंचित क्षेत्र बहुत कम है । तिमलनाडु के पठार में कावेरी नदी बहती है ।

तटीय मैदान में पश्चिमी तट गर काठियावाड़ के प्रायद्वीप में कपास, मोटा अनाज तथा गेहूँ उगायें जाते है और तट के पास मत्स्य क्षेत्र है । गुजरात का मैदान साबरमती व माही निदयों द्वारा सिंचित है । यहां सिंचाई की सम्भावना 14.2 लाख हैक्टर ऑकी गई है । कोकन तट पर चावल, केला । आम व नारियल अधिक पैटा होता है और तटीय क्षेत्र में मछली पकड़ने से जीविका उपार्जन होता है कर्नाटक मालाबार तट पर नारियल व चावल की पैदावार होती है । पूर्वी तटीय क्षेत्र में महानदी,कृष्णा , कावेरी व गोदावरी निदयाँ बहती है । तमिलनाडु तट पर कावेरी नदी का डेल्टा है जिसमें धान और नारियल खूब होता है । आंध्र तट पर कृष्णा और गोदावरी का डेल्टा है जिसमें धान और तम्बाकू पैदा किया जाता है । और उड़ीसा तट पर मछली पकड़ने का कार्य होता है । तटीय क्षेत्रों में कुल मिला कर 1.8 करोड़ हैक्टर भूमि पर कृषि होती है, 10 लाख हैक्टर पर चारागाह तथा 66 लाख हैक्टर पर वन क्षेत्र है ।

पूरे भारत देश में कुल सम्भावित सिंचाई की क्षमता अनुमानत : 11.35 करोड़ हैक्टर है जिसमें 7.35 करोड़ हैक्टर धरातलीय जल व 4.0 करोड़ हैक्टर भूगर्भिय जल से प्राप्त की जा सकती है । पंचवर्षिय योजनाओं में सिंचाई परियोजनाओं पर विशेष ध्यान दिया गया है जिसके परिणामस्वरुप यह लगता 1950 और 1955 की बीच लगभग 5 गुणा बढ़ गई है ।

जल शक्ति से जुड़ी हुई है विद्यूत उत्पादन क्षमता । भारत की विद्युत उत्पादन क्षमता में पिछले पचास वर्ष में भारी वृद्धि हुई है । 1947 में 4700 मेगावाट से बढ़कर यह क्षमता 1992–93 में 72468 मेगावाट तक पहुंच गई । 1994–95 में इसके बढ़कर 81164 मेगावाट हो जाने की सम्भावना थी । 1978–79 में कुल विवृत शक्ति का 55% तापीय विद्युत कोयले व तेल से प्राप्त होती थी । 42.5% जल विद्यूत तथा 2.5% अणुशक्ति द्वारा प्राप्त होती थी। 1994–95 में यह अनुपात बदल कर क्रमश 71.6%, 25.60% व 2.74% हो गये थे । 1995–96 में विद्यूत का उत्पादन इस प्रकार रहा तापीय 29700 करोड़ किलोवाट घण्टा, जल 7230 किलोवाट घण्टा तथा अण् 780 किलोवाट घण्टा ।

राज्यों की दृष्टि से महाराष्ट्र में अधिकतम फिर क्रमश उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश व मध्य प्रवेश में उत्पादन होता है । इन सब राज्यों में 110000 लाख किलोवाट घण्टा से अधिक विदयुत का उत्पादन होता हैं ।

हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर, कर्नाटक, केरल व मेघालय जल विद्युत पर निर्भर है । दिल्ली बिहार, असम, गुजरात और पश्चिमी बंगाल कोयले से विद्युत प्राप्त करते है । व आंध्र प्रदेश, हरियाणा, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु व उत्तर प्रदेश इन दोनों प्रकार की विद्युत शक्ति पर निर्भर करते है । सम्पूर्ण हिमालय प्रदेश में 2.4 करोड़ किलोवाट बड़े मैदान में 50 लाख किलोवाट, प्रायद्वीपीय पठार एवं पहाड़ी क्षेत्र में 36 लाख किलोवाट तथा तटीय मैदान में 10 लख किलोवाट की सम्भावित क्षमता है ।

इसके अतिरिक्त आजकल गैर परम्परागत उर्जा साधनों जैसे सौर्य उर्जा, पवन उर्जा, समुद्री(ज्वार—भाटा) उर्जा व अ—वाणिज्यिक उर्जा के प्रयोग 'को भी प्रोत्साहन दिया जा रहा है ।

19.7 सारांश

भारत एक विशाल देश है जिसे प्रकृति ने अनेक अनुपम उपहारों से समान बनाया है । भौगोलिक स्थिति, जलवाय्, खनिज, वनस्पति, पश्—पक्षी सम्पदा, मिट्टियां, समुद्री तट, पर्वतमाला। हर प्रकार के आवश्यक संसाधन हमारे इस भारत देश को प्रकृति ने दिये है । स्जलाम, स्फलाम शस्यश्यामला धरती की कोख से हमें हर प्रकार का उत्पादन मिलता है । जहां एक ओर कृषि के लिये उर्वरा भूमि है, वहां दूसरी ओर उदयोगों के लिये हर प्रकार के खिनज उपलब्ध है । पर्वतमाला व घने जंगल भी है और लहरें मारता समुद्र भी— दोनों से ही अनेक पदार्थ हमें प्राप्त होते है ।अनेक प्रकार की फसलें यहां उगाई जाती है । कुछ जो जीवन का आधार है जैसे खाद्यान, फल और सब्जियाँ और कुछ फसलें जो उद्योगों के लिये कच्चा माल प्रदान करती है जैसे कपास, पटसन, गन्ना, वन-उपज, रेशम, रंग रोगन इत्यादि । लगभग प्रत्येक प्रकार के उद्योगों के लिये कच्चा माल यहां उपलब्ध है– फसलों के रूप में या खिनज, संसाधनों से, उर्जा के हर प्रकार के ज्ञान भी यहां पाये जाने है । जल विदयुत शिक्त, तेल और गैस, कोयला, समुद्री लहरें । देश के हर भाग में कोई न कोई संसाधन अवश्य उपलब्ध है जिससे देश को किसी वस्तु के लिये अन्य देशो पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं । सब तरफ से स्वावलम्बी, आत्मनिर्भर हो सकता है भारत । आर्थिक विकास के लिये सब संसाधन यहां उपलब्ध है । यह दुर्भाग्य की बात है कि हम प्रकृति की इन देनों का पूर्ण उपयोग नहीं कर पाये हैं । इन संसाधनों के उचित व पूर्ण प्रयोग से हम शीघ्र ही आर्थिक विकास की चोटियों को छ सकते है।

19.8 निबन्धात्मक प्रश्न

- (1) भारत में मिट्टी की प्रादेशिक विभिन्नताओं की विवेचना करें । तथा देश के फसल प्रारूप के साथ उनकें सम्बन्ध का विश्लेषण करें ।
- (2) वनों का हमारे जीवन में क्या महत्व है । विवेचन करें और भारत में इनके प्रादेशिक वितरण का विश्लेषण करें ।
- (3) भारत के जल संसाधनों का वर्गीक्रत विवरण व उनके उपयोग का विश्लेषण करें।
- (4) भारत में उपलब्ध विभिन्न खनिजों के प्रादेशिक वितरण का विवरण दे।
- (5) खनिज हमारे औद्योगिक जीवन की आधार रेखा है, विवेचन करें।
- (6) भारत में शक्ति संसाधनों का विवेचन करें।

19.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- (1) चर्तुभुज मेमोरिया आधुनिक भारत का वृहत भूगोल साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 1996
- (2) सुरेश चन्द्र बंसल भारत का भूगोल मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1997

(3) Jahar Lal Gupta and Anew Approach to Economic

Prabhas Ranjan Geography

Cattoraj World Press Pvt.Ltd.

Calcutta, 1990

(4) Ramamoorthy and Geography of India

Gopal Krishan jawahar Publication and Distributors,

New Delhi, 1996-97

(5) Government of India Economic Survey 1996–97

(6) Sengupta P and Economic Regionalisation of India. Problems

Sdasyuk Galina and Approach, Census of India 1996,

Monograph Series Monograph no 8, 1968

(7) Spate O.H.K and India and Pakistan Methuen and Co, Ltd.

Learmonth, AFA UK, 1967

(8) Central Statistical National Accounts Statistics 1995

Organisation (CSO)

Govt. of India

(9) V Vidyanath and Development of India

R Rammohan Rao(ED) Resource Base, Patterns, Problems And

Prospects,

Oxford university Press, 1988

(10) Sharma T.C. and Economic and Commerical

O.Coutinho Geography of India,

Vikas Publishing Home Pvt.Ltd. Delhi, 1996

(11) Economic and Oxford University Press

Social Atlas of India New Delhi 1987

इकाई 20

औपनिवेशिक काल में भारतीय प्रादेशिक संरचना का विकास

इकाई की रूपरेखा

- 20.0 उद्देश्य
- 20.1 प्रस्तावना
- 20.2 भारत का आध्निकीकरण एवं भारत का उपनिवेशीकरण
- 20.3 अठारहवीं शताब्दी में भारतीय अर्थव्यवस्था
- 20.4 उपनिवेशवाद के चरण
- 20.5 राजस्व प्रणाली व प्रादेशिक अर्थव्यवस्थाएं

20.5.1 रैयतवाडी

20.5.2 महालवाड़ी

20.6 कृषि का व्यावसायीकरण

20.6.1 व्यापार

20.6.2 उदयोग

20.6.3 शहरीकरण

- 20.7 सारांश
- 20.8 निबन्धात्मक प्रश्न
- 20.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

20.0 उद्देश्य

अंग्रेजों द्वारा भारत में अपनाई गई विभिन्न आर्थिक नीतियों की प्रकृति पर प्रकाश डालना तथा इन नीतियों का भारत के विभिन्न प्रदेशों पर क्या प्रभाव पड़ा इसका अध्ययन करना । अंग्रेजों ने अपने सामाज्यवादी हितों की पूर्ती के लिए भारत के विभिन्न प्रदेशों की आर्थिक परिस्थितियों, साधनों, जलवायु, मिट्टी व फसलों आदि की बारीकी से जाँच कराने के बाद ऐसी नीतियों का पालन किया जिससे कि इंग्लैण्ड के उद्योगों को कच्चा माल कम से कम दाम पर अधिक से अधिक मात्रा में व उत्तम गुणवत्ता का प्राप्त हो सके व इंग्लैण्ड में निर्मित माल भारत में बिक सके । अपने 190 वर्षों के राज्य—काल के दौरान यही अंग्रेजों का एकमात्र उद्देश्य था। भारत के विभिन्न प्रदेशों का किस प्रकार से इस उद्देश्य प्राप्ति के लिए शोषण किया गया व प्रदेशों में आर्थिक प्रगति व अर्थव्यवस्था को क्या मोड़ दिया गया यही इस लेख में प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है।

20.1 प्रस्तावना

भारत पर अंग्रेजों ने 190 वर्ष तक राज्य किया । 1757 में जब ईस्ट इंडिया कम्पनी ने बंगाल में अंग्रेजी राज्य की नींव रखी व 1765 में जब बंगाल, बिहार, उड़ीसा पर उनका अधिकार हो गया, तब भी अंग्रेजों का प्रशासनिक परिवर्तन करने का विचार बहुत कम था । उनकी एकमात्र इच्छा लाभप्रद व्यापार करना और राजस्व एकत्रित करके इंग्लैण्ड भेजने की थी । राज्य प्राप्ति की प्रक्रिया जो 1757 में प्रारम्भ हुई उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक सौ वर्ष के बाद लगभग समस्त भारत पर अंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ ही समाप्त हुई ।

उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेज सरकार ने जो भारत में नीतियाँ अपनाई उनकी जानकारी आवश्यक है क्योंकि तभी हम भारत के आर्थिक पिछड़ेपन के स्वरूप और विकसित देशों की तुलना में पीछे रह जाने के कारण समझ सकते है।

ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में हुई आर्थिक प्रक्रिया के सम्बन्ध में दो परस्पर विरोधी विचार धाराओं के अर्थशास्त्रियों व आर्थिक इतिहासकारों के मध्य बहस होती रही है व अब भी जारी है । इनमें से एक विचारधारा के अनुसार ब्रिटेन द्वारा, अराजकता की लम्बी अविध के बाद स्थापित शान्ति के फलस्वरूप भारत में व्यवस्था व शान्ति हुई । भारत को कुशल प्रशासक मिले, रेलमार्गों का विकास हुआ, व्यापार में वृद्धि हुई सिंचाई का विस्तार हुआ व कृषि क्षेत्र में भी उन्नति हुई । इसके विपरीत अर्थशास्त्रियों का दूसरा समूह यह विचार प्रस्तुत करता है कि ब्रिटिश राज्य के परिणामस्वरूप न कोई औद्योगिक विकास हुआ व कोई आर्थिक उन्नति भी नहीं हुई । अंग्रेजी राज्य के परिणामस्वरूप आर्थिक परिवर्तन हुए परन्तु आर्थिक विकास नहीं हुआ व दूसरी ओर यह राज्य हमारे आर्थिक प्रगति के मार्ग में बाधा बन गया।

20.2 भारत का आधुनिकीकरण या भारत का उपनिवेशीकरण

साम्राज्यवाद के पक्ष के इतिहासकार मौरिस डी मौरिस (Morris D Morris) का मत है कि ब्रिटिश राज का प्रभाव सीमित हु आ क्योंकि "प्रकटतः" भारत सरकार का सिक्रय आर्थिक विकास के लिए सोचा हु आ कार्यक्रम नहीं था क्योंकि ब्रिटिश राज अपने को चौकसी करने वाले चौकीदार की निशिक्रय भूमिका में देखते थे । यह धारणा सैधांतिक रूप से ही गलत है व इस मत का खंडन भट्टाचार्य ने किया है । यह भी प्रमाणित हो चुका है कि अहस्तक्षेप की नीति जो ब्रिटिश राज ने अपनाई तथा साम्राज्यवाद के बीच गहन सम्बन्ध था । दूसरे शब्दों में अहस्तक्षेप की नीति अपनाने का कारण ही साम्राज्य के हितों को प्रोत्साहित करना था । तथा यह भी स्पष्ट है कि भारत सरकार ने भारत में औधोगिक और वाणिज्यिक उपक्रमों को आरम्भ करने और उन्हें प्रोत्साहित करने तथा ब्रिटिश पूँजीपितयों को भारत में विशेष अधिकार देने में प्रत्यक्ष, सीधी और सिक्रय भूमिका निभाई थी । उसने अहस्तक्षेप नीति के उत्कर्ष काल में सरकारी खर्च पर भारत में चाय, सिनकोना व काँफी के बाग लगवाने का कार्यक्रम प्रारम्भ किया तथा कपास की खेती करवाई व परिवहन का सिक्रय रूप से संवर्द्धन किया था । गवर्नर—जनरल डलहौजी के कार्यकाल में राज्य की गारंटी के अंतर्गत रेलमार्गों का निर्माण करवाया गया । इसी प्रकार भारत ही एक ऐसा अहस्तक्षेप की नीति पर आधारित 'उदारवादी' राष्ट्र राज्य था जिसकी सरकार ने भारतीय श्रमिकों को चाय व काँफी बागानों में काम करने को बाध्य करने के लिए दिण्डत

कानून ननाए । इसके अतिरिक्त जो सरकार समस्त भूमि के स्वामित्व का दावा करती हो और जमींदारों गया किसानों व कर्जदारों और महाजनों के विवादों में खुला हस्तक्षेप करती हो, जैसा उन्नीसवी शताब्दी में ब्रिटिश सरकार करती थी, अथवा वह सरकार जिसने प्रतिबंधित व अपिरवर्तनीय मुद्रा चलाई हो, उस सरकार को केवल रात का चौकीदार या अहस्तक्षेप समर्थक नहीं कहा जा सकता । ब्रिटिश सरकार ने साम्राज्यवादी तत्वों को पनपने देने के लिए सिक्रय सहयोग देकर कच्चे माल के निर्यात पर आधारित अर्थव्यवस्था का विकास किया व जब भारतीय राष्ट्रीय नेताओं ने औद्योगीकरण के लिए सरकारी सहायता देने का प्रश्न उठाया तो, अहस्तक्षेप की नीति के सिद्धान्त का बहाना बना दिया ।

एक आदर्श उपनिवेश के रूप में भारत का रूपान्तरण आधुनिकीकरण, आर्थिक विकास और जहां भी आवश्यक हुआ, विदेशी पूंजी की सहायता से उद्योग और कृषि में पूंजीवाद के प्रतिरोपण के नाम से किया गया।

20.3 अठारहवीं शताब्दी में भारतीय अर्थव्यवस्था

मुगल साम्राज्य जब अपनी चरम, सीमा पर था तो उसने भारत के बहुत बड़े भाग की राजनैतिक व्यवस्था, स्थायित्व, एक रूप राजस्व नीति, शान्ति व्यवस्था में फलता—फूलता आन्तरिक व्यापार व उन्नतोमुख विदेशी व्यापार दिया । मुगल साम्राज्य आधुनिक राष्ट्रीय राज्य तो नही था व राज्य के अधिकांश भाग में स्वनिर्भर, पृथक (Isolated) अर्थव्यवस्था थी । परंतु मुगल साम्राज्य के अधीन देश के दूर के भाग अन्य राज्य के भाग से आर्थिक रूप से जुड़ गए थे व व्यापार का भी विस्तार हो रहा था।

1707 के बाद मुगल सामाज्य का पतन प्रारम्भ हु आ व तभी से भारत की आर्थिक व्यवस्था का भी विघटन शुरू हु आ। अनेक छोटे—छोटे राज्य अस्तित्व में आ गए व इन राज्यों में भी आपसी वैर. वैमनस्य का सम्बन्ध रहता था। अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक मुगल सामाज्य विखण्डित हो चुका था व सिकुइ चुका था। बंगाल, बिहार, उड़ीसा, हैदराबाद, गुजरात, सिन्ध, अवध, रोहिलखण्ड, राजपूत राज्य, मैसूर, महाराष्ट्र आदि या तो पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो चुके थे या केवल नाममात्र के लिए मुगल राज्य के अधीन थे।

कुछ इतिहासकारों के अनुसार मुगल—साम्राज्य के पतन के साथ ही मध्य 18वी शताब्दी में भारतीय अर्थव्यवस्था न्यूनतम स्तर पर पहुंच गई थी । राज्य के अनेक भागों में युद्ध व अनिश्चितता के परिणामस्वरूप घातक आर्थिक प्रभाव हुए। दिल्ली में कमजोर राज्य व नियमित आक्रमणों के परिणामस्वरूप दिल्ली के कलाकार व श्रमिक शहर छोड़ कर चले गए। आगरा भी पतनोमुख था। अवध के उत्पादकों पर भी बुरा प्रभाव पड़ा क्योंकि वह अपना माल दिल्ली व आगरा में बेचते थे। सिख शक्ति के उत्कर्ष के परिणामस्वरूप लाहौर व काबुल का मार्ग बन्द हो गया व इसका विदेशी व्यापार पर बुरा असर पड़ा। साधारण तौर पर कहा जा सकता है कि उत्तर—पश्चिम के शहर इस काल में पतन की ओर उमुख थे। बंगाल के शहर भी कमजोर हो रहे थे क्योंकि मराठा आक्रमणों का भय यहां सदा बना रहता था। सिल्क व सूती कपड़ा बनाने वाले पश्चिमी बंगाल छोड़कर पूर्वी बंगाल में जाकर बस गए। स्वतन्त्र राज्यों के उत्थान के परिणामस्वरूप बंगाल का दूसरे भागों से व्यापारिक सम्बन्धों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा व उसका

व्यापार अवध—आसाम तक सीमित हो गया। उत्तर—पश्चिम में मराठा आक्रमणों के फलस्वरूप गुजरात का सिल्क उद्योग नष्ट हो गया व फारस के साथ व्यापारिक सम्बन्ध नष्ट होने के बाद सूरत बन्दरगाह का पतन शीघ्रता से हुआ। दक्षिण भारत में भी राजनैतिक अव्यवस्था का उद्योग व व्यापार. पर बुरा प्रभाव पड़ा।

अठारहवीं शताब्दी मैं इस प्रकार राजनैतिक अस्थिरता का आर्थिक जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा परन्त् तब भी इसका यह अर्थ नहीं है कि इस शताब्दी में भारत की अर्थव्यवस्था का साधारणतया पतन हो गया था । 1787 तक आगरा मराठा व जाट शासकों के अधीन एक सम्पन्न शहर हो गया था जहां अनेक दिल्लीवासियों ने शरण ली थी । 1740 में जब कलकत्ता व कासिमबाजार का सिल्क उदयोग मराठा आक्रमणों के कारण नष्ट होने लगा था। 1750 के दशक में यह उदयोग इंग्लैड में सिल्क की बढ़ती हुई माँग के फलस्वरूप फिर से पनपने लगा था। इसी तरह गंगा नदी के क्षेत्र में अंग्रेज सरकार ने शान्ति व्यवस्था कायम की व इस क्षेत्र का कलकत्ता के माध्यम से व्यापार विश्व अर्थव्यवस्था से जुड़ गया । यह उत्तर भारत के आर्थिक इतिहास की प्रमुख विशेषता है । गंगा नदी के किनारे के साथ के प्रदेशों में 1757 के बाद अप्रत्याशित व्यापारिक विस्तार हुआ। इसका प्रभाव कृषि भूमि, फसल, औद्योगिक व वित्तीय संगठनों व शहरीकरण पर भी हुआ व इन तटीय क्षेत्रों में परिवर्तन का प्रभाव क्छ समय पश्चात अन्दर के इलाकों पर भी पड़ा। यदयपि दूरगामी क्षेत्र कम प्रभावित हूए। उदाहरण के लिए हम बेईड स्मिथ (Baird Smith) द्वारा 1861 में एकत्रित किए गए आकड़ों को ले सकते है। उन्होंने प्रमाणित किया कि 1861 में आजमगढ़ व गाजीप्र (उत्तर प्रदेश) में नमूने के तौर पर ली गई जनसंख्या का 33% से 50% भाग मैनचैस्टर में बने कपडे का प्रयोग कर रहा था। इसी समय व इसी प्रदेश की दूसरी विशेषता है अफीम व्यापार का तीव्रता से उत्पादन व विकास व इस व्यापार का कपड़ा उद्योग के विनाश के बाद रिक्त स्थान को भरना।

1800 से पहले भी गंगा नदी पर छोटे जहाज या नौकाएं चलती थी (जहाज 5-6 टन के होते थे जिन्हें 6-12 आदमी चलाते थे)। एक बड़ी नाव कलकत्ता से इलाहाबाद का सफर वर्षा के दिनों में बीस दिन में तय करती थी (रात को यात्रा नहीं की जाती थी)। इस यातायात में 1857 तक अन्तर केवल यह आया कि इंग्लैंड में बनी स्टीमिशिप चलने लगी व व्यापार अधिक हो गया। इस तरह पूर्व ब्रिटिश काल में हमारी अर्थव्यवस्था निष्प्राण नहीं थी। हस्तिशिल्प व कृषि का आपसी समन्वय था। कृषक के घरों में सूत कत जाता था और ग्राम के ही जुलाहे उसका उत्तम कपड़ा बना लेते थे। परंपरागत पद्धित के अनुसार जुलाहे, कुम्हार, तेली, सुनार, चमार ग्रामीणों की आवश्यकता पूरी कर देते थे व बदले में उपज का अंश प्राप्त कर लेते थे। भूमि पर दबाव अधिक नहीं था क्योंकि उद्योग बहुत थे। जनसंख्या के अनुपात में भूमि अधिक थी इसलिए भूमि का क्रय-विक्रय नहीं होता था। गांव की भूमि कृषक समाज की होती थी और प्रत्येक कृषक परिवार के पास थोड़ी बहुत भूमि जरूर होती थी, ग्रामीण अर्थव्यवस्था आत्मिनर्भर थी।

नागरिक अर्थव्यवस्था सम्पत्र थी। भारतीय हस्तशिल्प विश्व में सम्मानित था व भारतीय कपड़ा व आभूषणों, तलवारों आदि की माँग यूरोप के अनेक देशों में थी। व्यापार का संतुलन भारत के पक्ष में था व निर्यात के बदले भारत को सोना चांदी मिलता था।

20.4 उपनिवेशवाद के चरण

अंग्रेज शासकों ने विभिन्न तरीकों से भारत का शोषण किया। श्री आर.पी. दत्त ने भारत में साम्राज्यवादी काल को तीन भागों में बांटा है—

- (1) वाणिज्यवाद (वाणिकवाद), (Mercantalism) 1757 से अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक।
- (2) स्वतन्त्र व्यापारिक पूंजीवाद का काल (Free Trade Capitalism)। जो उन्नीसवीं शताब्दी में विकसित हुआ।
- (3) वित्त पूंजीवाद का काल (Financial Capital)। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों से 1947 तक।

प्रत्येक चरण अपने पूर्व की परिस्थितियों के कारण विकसित हुआ और साम्राज्यवादी शोषण की भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ प्रायः एक दूसरे पर आच्छादित हो जाती थी जिससे कि शोषण की पहली प्रणाली समाप्त होने से पहले ही वह शोषण के नए ढाँचे में ढल जाती थी।

अंग्रेजों के अधीन भारत एक "बस्ती" बन कर रह गया जहां से इंग्लैण्ड के उद्योगों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति की जाती थी व इंग्लैण्ड में निर्मित साम्राज्य के लिए भारत एक मण्डी बन कर रह गया।

ईस्ट इंडिया कम्पनी ने वाणिज्यवादी विचारधारा से प्रभावित होकर अपनी मातृभूमि में अधिक से अधिक भारतीय सोना चांदी पहुं चाने का प्रयास किया व इंग्लैण्ड से निर्यात की तुलना में आयात कम किया जिससे कि व्यापारिक संतुलन इंग्लैण्ड के पक्ष में हो गया । इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ईस्ट इंडिया कम्पनी ने व्यापार पर एकाधिकार स्थापित किया व सम्भावित प्रतिद्वन्दी समाप्त किए । दूसरा, कंपनी ने प्रयास किया कि वस्तुएँ कम से कम कीमत पर खरीदे और अधिक से अधिक मूल्य पर बेची जाए व इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए भारत पर औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित किया ।

औपनिवेशिक राज्य स्थापित करने की प्रक्रिया 1757 में प्लासी के युद्ध से प्रारम्भ हुई थी व 1857 तक भारत का अधिकांश भाग अंग्रेजी राज्य के अधीन आ गया । यद्यपि विस्तृत क्षेत्र पर राज्य स्थापना करने में अंग्रेजों को कुछ दशक लग गए, तथापि लूट खसोट व लाभांश प्राप्ति की प्रक्रिया 1757 से ही अंग्रेजों ने प्रारम्भ कर दी थी व इसके साथ ही भारत का शोषण भी प्रारम्भ हुआ । भूमिकर व्यवस्था, व्यापार नीति, कृषि नीति, पूंजी निवेश सभी एक ही उद्देश्य प्राप्ति के प्रति उन्मुख थे । कैसे भारत से अधिक से अधिक धन प्राप्त किया जाये या कैसे कच्चा माल इंग्लैण्ड पहुंचाया जाये व इंग्लैण्ड का निर्मित माल भारत में बेचा जाए। इस प्रक्रिया ने भारतीय अर्थव्यवस्था में आधारभूत परिवर्तन किया।

20.5 राजस्व प्रणाली व प्रादेशिक अर्थव्यवस्थाएं

अंग्रेजी राज्य की स्थापना का प्रत्यक्ष प्रभाव ग्रामीण भारत की अर्थव्यवस्था पर राजस्व प्रणाली के फलस्वरूप पड़ा। कृषि आय का प्रमुख स्रोत था तथी इसी धन से अंग्रेज भारतीय कच्चा माल खरीद कर इंग्लैण्ड भेज सकते थे।

जमींदारी राजस्व प्रणाली ग्रामीण समाज को स्थायित्व व निरन्तरता देने के विचार से व समाज में व्यवस्था कायम करने के उद्देश्य से जमींदार वर्ग की महता पर जोर देते हुए बंगाल, बिहार व उड़ीसा में अंग्रेजों ने स्थाई बन्दोबस्त लागू किया । यह बन्दोबस्त आरम्भ में कृषि में सुधार लाने में असमर्थ सिद्ध हुआ । पुराने जमींदार घराने नष्ट हो गए व नए जमींदार वर्ग अस्तित्व में आ गए । यद्यपि इनमें से कुछ ने कृषि सुधार में रूचि दिखाई तथापि अधिकांश अनुपस्थित जमींदार बन कर रह गए । यह जमींदार बहुत अधिक कर लगाते थे व इस तरह काश्तकारों और मालिकों के मध्य दलालों की श्रंखला बन गई व कृषकों पर लगान का बोझ बढ़ गया ।

20.5.1 रैयतवाडी

मद्रास और बम्बई प्रान्त के कुछ क्षेत्रों में 'रैयतवाड़ी प्रबन्ध लागू किया गया । यह समझौता सीधे रैयतों या किसानों के साथ किया गया व यहां रैयतों को मालिक स्वीकार करके भूमि सम्बन्धी सभी अधिकार दे दिए गए । पर इस प्रबन्ध से भी रैयतों को लाभ नहीं हुआ क्योंकि राजस्व दर बहुत उँची थी व उनके पास कर देने के बाद कुछ भी पूंजी नहीं बचती थी । कुछ ही समय बाद इस क्षेत्र में भी भूमि का क्रय–विक्रय होने लगा व यहां भी जमींदार व काश्तकार वर्ग उभर आए ।

20.5.2 महालवाड़ी

उत्तर पश्चिम प्रान्त, मध्य भारत और पंजाब में महालवाड़ी प्रबंध लागू किया गया। इस पद्धित में ग्राम को कर देने के लिए इकाई माना गया व कर निर्धारण पूरे गांव के साथ किया गया। पर यहां भी पटेदारों व जमींदारों के व्यक्तिगत अधिकार स्वीकार किए गए तथा बाद में यहां भी भूमि का हस्तांतरण हो गया व भूमि महाजनों व जमींदारों के हाथ में चली गई।

इस प्रकार भूराजस्व की वस्ती का अलग-अलग प्रान्तों में अलग-अलग रूप सामने आया। परन्तु सभी क्षेत्रों में भूराजस्व की दर कुल नकदी की जरूरत से जुड़ी थी। निर्धारण व वस्ती भी कठोरता से की जाती थी इसलिए तीनों ही प्रकार के क्षेत्र में किसानों का शोषण होने लगा तथा किसान भूराजस्व के नकद भूगतान के लिए कर्जें लेने लगे।

20.6 कवि का व्यवसायीकरण

कृषि का व्यवसायीकरण भी अंग्रेज शासकों की सामाजवादी आवश्यकताओं की पूर्ति से जुड़ा है।

मद्रास प्रैसीडेन्सी में व्यवसायीकरण में वृद्धि के कारण गरीब किसानों की समृद्धि में गिरावट आई । उस समय प्रचलित कीमतों ने भी उत्पादन को निरूत्साहित किया। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश में आधुनिकीकरण की नीति जिसके दर्शन —सड़क, रेल तथा नहरों के निर्माण में होते हैं— के बावजूद या शायद इसी कारण व्यवसायिक खेती के विस्तार ने कुछ असंतुलनों को जन्म दिया। उँची राजस्व की दर व सख्ती से वसूली के परिणामस्वरूप ऋणदाता उत्पन्न हुई।

महाराष्ट्र में भी भूराजस्व प्रणाली से इसी प्रकार की विषमताएं बढ़ी व अव्यवस्था फैली। पंजाब मे, यद्यपि उपरी तौर पर स्थिति बेहतर दिखती थी, अपितु मूल प्रवृत्ति यही थी। 40 लाख एकड़ भूमि जो खाली पड़ी थी, सिंचाई के माध्यम से खेती योग्य बनाई गई कृषि उत्पादन बहुत बढ़ा पर मूल फसलें अमरीकी कपास व गेंहु की विशेष किस्में थी जिसका बड़ा हिस्सा करांची बन्दरगाह से बाहर जाता था।

20.6.1 व्यापार

1860 के दशक के बाद से भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में नए प्रभावों के दबाव बढ़े; (dominated by new forces), अर्थात कच्चे माल की विदेशों में भारी मांग व इसके व्यापार में अप्रत्याशित वृद्धि। यह दौर 1930 तक चला। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत से नील, अफीम, कपास (कपड़ा, धागा व कच्ची कपास तीनों ही) व सिल्क का निर्यात होता था। बाद में जूट, चावल, तेल, तिलहन व चाय, कच्ची कपास निर्यात की प्रमुख फसलें बन गई। 1880 तक, उत्तर पश्चिम व मध्य भारत में गेंहूँ, कपास बम्बई से मद्रास से मूंगफली, बंगाल से बूट, उत्पादन व निर्यात की प्रमुख वस्तुएं बन गई।

यूरोपियन उत्पादकों ने पहला काँफी बाग 1840 में मैसूर में लगाया व 1810–80 के मध्य काँफी उत्पादन मैसूर, कुर्ग, नीलगिरी व मालाबार में विकसित हो गया।

नील उत्पादन ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारियों ने बंगाल में प्रारम्भ करवाया व 1800–1850 के मध्य इसकी खेती तीव्रता से बढ़ी ।

चाय की खेती आसाम में 1840 के दशक में प्रारम्भ कराई गई ।

20.6.2 उद्योग

भारत में औद्योगिक प्रगति बहुत ही धीमी गति से हुई । इसके अनेक कारण थे। औपनिवेशिक ढांचें के अन्तरगत उद्योगों पर अनेक प्रतिबन्ध थे—

- (1) भारतीय उद्योग अंग्रेजी पूंजी के नियन्त्रण में हों ।
- (2) भारतीय पूंजी केवल अंग्रेजी पूंजी की अधीनस्थ पार्टनर हो (Junior Partner)
- (3) भारतीय उदयोग कभी भी अंग्रेजी उदयोग के प्रतिदवन्दी न बनें ।
- (4) भारतीय बाजार में अंग्रेजी सामान की बिक्री पर भारतीय उत्पादन की प्रतिस्पर्धा न हो ।
- (5) भारी उद्योग नहीं स्थापित किए जाएं।

1857 से पहले ईस्ट इंडिया कम्पनी ने निर्यात व अपनी प्रशासनिक जरूरतें पूरी करने के लिए कुछ फैक्टरी लगवाई-चीनी, कपड़ा, कोयला खनन उद्योग पेर इनमें से कोई भी पनप

नहीं पाया। 1857 के बाद ब्रिटिश शासक ने सीधे अपने हाथ में सरकार लेने पर कुछ उद्योग प्रारम्भ करने की आवश्यकता समझी व कोयला खदान तथा तोपखाना बनाने की फैक्टरी लगाई।

1870 के बाद ही कपास व पटसन उद्योग फला-फूला । बम्बई में तीन कॉटन मिलें व बंगाल में दो बूट मिले प्रारम्भ की गई । 1895 तक 1 रू कॉटन मिल व 29 जूट मिलें प्रारम्भ की जा चुकी थी 1888 में 62 कपड़ा मिलें थी जिनमें से 3/4 बम्बई प्रैसीडेंसी में थी । कुछ गिरावट के बाद 20वी शताब्दी में कपड़ा मिलें तीव्रता से खुली व 1914 में कपड़ा मिलों की संख्या 264 तक हो गई । पहली आधुनिक बूट मिल 1859 में कलकत्ता में खुली व उसके बाद 1882 तक 20 बूट मिलें इसी क्षेत्र में खुल गई ।

रानीगंज (बंगाल) में प्रथम कोयला खान 1820 में प्रारम्भ की गई पर रेलगाड़ी के चलन के बाद ही कोयले की मांग बढ़ी व अनेक खिनज उद्योगों को प्रोत्साहन मिला। 1880 तक 56 कोयला खानों से कोयले का उत्पादन किया जाने लगा।

प्रथम विश्व युद्ध तक विदेशी शासकों ने औद्योगिक प्रगति के विरूद्ध की नीति अपनाई परन्तु युद्ध प्रारम्भ होने पर सरकार को कई वस्तुओं की आपूर्ति इंग्लैण्ड से करनी कठिन हो गई व इसलिए भारत के कुछ उद्योग प्रारम्भ करने की आवश्यकता महसूस की गई । परिणामस्वरूप 1916 में कमीशन का गठन किया गया व कुछ उद्योगों को प्रोत्साहन देने की नीति की घोषणा की ।

इस तरह 1881–1914 तक औद्योगिकीकरण की रफ्तार बहुत धीमी थी। जिन क्षेत्रों में यह प्रमुख रूप से केन्द्रित थे वह थे बंगाल का कलकत्ता क्षेत्र जहां हुगली बन्दरगाह था। इस क्षेत्र में बूट उत्पादन पर जोर दिया गया। बम्बई प्रेसिडैन्सी के परिचय क्षेत्र में बम्बई का बन्दरगाह निकासी का केन्द्र होने के कारण नवजात कपास एवं कपड़ा उद्योग पनपा। दक्षिण भारत में औद्योगिकीकरण नगण्य ही था। जो थोड़ा बहुत औद्योगीकरण हुआ भी, उसकी प्रगति मिली–जुली थी एवं वह मद्रास तक सीमित था। उत्तरी क्षेत्र में आधुनिक उद्योग लगभग नदारद ही था। यद्यपि पंजाब में कुछ कपड़ा मिलें थी पर करांची का अन्दरूनी हिस्सा पूरी तरह से खेतीहर था। करांची इस समय देश के तीसरे बड़े बन्दरगाह की तरह विकसित हो चुका था। इस समय अन्य उभरते हुए उद्योग थे कागज, भारी रसायनिक पदार्थ, काँच आदि। पर यह सभी अभी प्रारम्भिक अवस्था में ही थे।

20.6.3 शहरीकरण

औद्योगिकीकरण के साथ—साथ शहरीकरण और कारखानों के निर्माण के साथ शहरों के विस्तार के बीच एक कार्यकारण संबंध है । औपनिवेशिक भारत के शहर ठीक—ठीक औद्योगिक नगर नहीं है । फिर भी उद्योग और तथाकथित आधुनिकता के केन्द्रों के रूप में शहरों की बात उठती है ।

शहरीकरण के क्षेत्र में दो बातें स्पष्ट दिखाई देती है — (1) पुराने शहरों का पतन व दूसरी और नए शहरों का तीव्रता से विकास । नए शहर अधिकतर रूप से अंग्रेजी प्रशासन की प्रशासनिक व व्यापारिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विकसित हुए । उदाहरण के लिए हम कलकत्ता, मद्रास, बम्बई को ले सकते हैं । इसी के साथ अनेक छोटे शहर प्रशासनिक केन्द्र के रूप में विकसित हुए या भारतीय कच्चा माल निर्यात व विदेशी माल यहां बेचने के लिए जो व्यापारिक केन्द्रं बने उनका तीव्रता से विकास हुआ । यह बात विचारणीय है कि भारत में जो शहर विकसित हुए वह उद्योग प्रगति के प्रति उन्मुख न थे । शहरी जनसंख्या अपना जीविकोपार्जन अधिकतर प्रशासन, व्यापार या यातायात में कार्य करके करती थी ।

मुगल कालीन मुख्य राजधानी व शहर जैसे दिल्ली, आगरा व स्थानीय राज्यों की राजधानियाँ जैसे मुर्शिदाबाद, पटना, श्रीरंगपट्टम, हैदराबाद आदि का पतन हुआ। इनके स्थान पर ब्रिटिश काल में कुछ नए शहर विकसित तो जरूर हुए पर तथ्य यह है कि अंग्रेजी शासन के दौरान कुल जनसंख्या की तुलना में 1921 तक शहरवासियों का अनुपात जरा भी नहीं बढ़ा व उसके बाद भी बहुत धीमी गित से बढ़ा है । यद्यपि साधारणतया हम देखते है कि अंग्रेजी शासनकाल में बड़े—बड़े शहर निर्मित हुए पर जनगणंवादियों के पैमाने से खास शहरीकरण नहीं हुआ क्योंकि नगरों का विस्तार नहीं हुआ। यह प्रमाणित है कि ढाका, लखनऊ, मुर्शिदाबाद आदि शहरों की जनसंख्या बुरी तरह कम हुई और इतिहासकार इर्फान हबीब इसे विनगरीकरण कहते है। दूसरी ओर मद्रास, बम्बई व कलकत्ता की जनसंख्या में वृद्धि हुई।

औपनिवेशिक ढंग के नगरीकरण का एक और पक्ष है— औद्योगिकरण के बिना नगरीकरण जो पश्चिमी धारा के ठीक विपरीत है । नए महानगर प्रशासन व वाणिज्य के केन्द्रों के रूप में उठ खड़े हुए और कल—कारखाने यही—कहीं, पर कभी—कभी महानगरों के मध्य या उसके आसपास बन गए।

1854 के बाद रेलपथ के प्रसार का एक मूल उद्देश्य था कुछ समुद्रतट पर स्थित बन्दरगाहों (जैसे मद्रास, बम्बई, करांची व कलकत्ता भी) और देश के भीतरी हिस्सों के बीच कृषि उत्पादन की खरीद और वितरण तथा औद्योगिक पदार्थों के विक्रय के क्षेत्रों के बीच पुल कार्य करना । इस निर्यात के लिए रेलपथों के अलावा इन महानगरों में विदेशी व्यापारी कम्पनी जैसे बैंक, बीमा कंपन्नी, जहाजरानी कम्पनियों के दफ्तर की भी आवश्यकता थी । इनके अलावा मुगल काल में ही अंग्रेजों ने कोलकता, मद्रास जैसे शहरों में सुरक्षा की भावना ये किले बनाए थे और अंग्रेजी शासन के प्रारम्भ से ही यही किले प्रशासन केन्द्र बन गए । यही निर्यात केन्द्र भी थे इसलिए यहां सुविधाएं व कच्चा माल जैसे जूट व कपास आसानी से उपलब्ध था इसलिए यहां कारखाने लगाना आसान हो गया जैसे बम्बई । इनके अलावा छोटे राष्ट्रीय नगर थे जैसे कानप्र, अहमदाबाद जो औद्योगिक नगरों के रूप में विकसित हुए थे ।

रेलमार्गों का भौगोलिक विन्यास और माल ढोने का किराया, जिस दर पर लिया जाता था, यह दोनों ही देश के भीतर के सुदूर अंचलों से कच्चा माल ढोकर लाने और वहां अंग्रेजी औद्योगिक पदार्थों को पहुंचाने के अनुकूल थे। उपरोक्त भौगोलिक विन्यास इस प्रकार से किया गया था, जिससे कि भीतरी क्षेत्रों से कच्चा माल बम्बई, कलकत्ता आदि बड़े बन्दरगाह शहरों तक पहुंचाने का निकटमत मार्ग मिल सके । दूसरी ओर वही रेलमार्ग मैनचैस्टर से सूती कपड़े और बरमिंघम से लोहा—इस्पात आदि दूर भीतरी प्रदेशों तक पहुंचा सके । कच्चा माल तथा

अन्य कृषि प्रदार्थ जैसे पूर्वी बंगाल का चावल, मध्य प्रदेश और पंजाब का गेहूं दक्षिण भारत की रूई कम किराए पर बन्दरगाह शहरों तक लायी जाती थी।

देशी व्यापार में परिवहन की उन्नित, विलायती पूंजी से तैयार रेलपथ ने देश के सुद्र भीतरी भागों से कृषि उपज को बाहरी स्थानों पर ले आने में मदद पहुंचाई। कृषि उपज देश के कोने—कोने से मद्रास, कलकत्ता, बम्बई व करांची पहुंचने लगी। औपनिवेशिक नगरों में आधुनिक बन्दरगाह, आयात—निर्यात के व्यापारिक दफ्तर, बैंक आदि अंग्रेजी व थोड़ी मात्रा में भारतीय पूंजी के केन्द्रस्थल बने। वह एक नई दुनियां थी। देश के भीतर एक दूसरी दुनियां थी जहां किसान था, महाजन था और उनके दलाल थे। रेलवे इन दोनों के बीच एक पुल बन गई और रेल की सहकारी बनी नावें, बैलगाड़ियां व सरकार द्वारा तैयार सड़कें। इस तरह देश के भीतर खरीद बिक्री के बाजार का रास्ता आसान हो गया। दूसरा इसी के फलस्वरूप देश के अन्दर खेती का आंचलिक विशेषीकरण भी हुआ यानि विशेष प्रकार की मिट्टी व जलवायु का लाभ उठाकर फसलें उगाने की प्रवृत्ति बढ़ी जैसे बम्बई प्रेसिडैन्सी (आधुनिक महाराष्ट्र) में दक्षिण जिले में उपलब्ध काली मिट्टी रूई की खेती के लिए उत्तम है। यहां पहले किसान रूई, गेंहूँ, ज्वार आदि सब कुछ उगाते थे क्योंकि खाद्यान बाहर से मंगाने की व्यवस्था नहीं थी व रूई बेचने के साधन नहीं थे। 1860 के बाद रूई इंग्लैण्ड तक पहुंच्ने का मार्ग खुल गया व किसान रूई उत्पादन में ही लग गए। इस तरह किसान न केवल विक्रेता अपितु खरीददार भी बने क्योंकि अब अनाज नहीं उगाते थे व खाने के लिए अनाज के खरीददार बन गए।

उत्तरी भारत में निर्यात व्यापार का विस्तार, गंगा नदी में यातायात की सुविधाओं के कारण प्रदेश के कृषि क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया । कृषि फसलों की मांग विशेषकर नील, कपास, अफीम की मांग बढ़ी व इससे फसल के स्वरूप में परिवर्तन आया व भूराजस्व प्रणाली में परिवर्तन आने से प्रादेशिक अर्थव्यवस्था प्रभावित हुई।

व्यापारिक आवश्यकताओं से प्रभावित होकर नदी किनारे के गांव—शहर भी तीव्रता से विकसित हुए। व्यापारी, नाविक व अन्य यातायात (विशेषज्ञ आदि इन तटीय शहरों की ओर अग्रसर हुए—आगरा, बनारस, मिरजापुर, अनूपशहर बरेली, इलाहाबाद, कानपुर, दिल्ली भी विकसित हुए।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अधिकांश परिवर्तन गंगा के तटीय क्षेत्रों में ही हुए। उत्तर भारत के अन्य प्रदेश पंजाब, कश्मीर, राजपुताना में परिवर्तन बहुत धीमी गति से हुआ व बहुत ही कम हुआ।

20.7 सारांश

इस प्रकार औपनिवेशिक राज्य के अन्तर्गत भारत के विभिन्न प्रदेश भिन्न-भिन्न रूप से प्रभावित हुए। व्यापारिक परिवर्तन हुए, यातायात के साधन विकसित हुए। पारम्परिक उद्योगों का विनाश हुआ व कुछ नए प्रकार के उद्योग प्रारम्भ हुए। भूराजस्व प्रणाली, व्यापारिक नीति, भारत-पूंजी विरोधी औद्योगिक नीति सभी ने भारत के विभिन्न प्रदेशों को विभिन्न रूप से प्रभावित किया। अंदरूनी शहर जैसे बनारस व उज्जैन जो एक समय धार्मिक

केन्द्र होने के कारण बहुत पनप रहे थे, अब अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण हो गए व बन्दरगाह शहर, कलकत्ता, बम्बई, कराँची, मद्रास, जो अंग्रेजों के आगमन से पहले छोटे ग्रामों से अधिक कुछ न थे, अब सम्पन्न महत्वपूर्ण केन्द्र बन गए व यहीं पर औदोगिकरण की नींव पड़ी । इसी प्रकार वह प्रदेश जहां व्यवसायिक फसलें उगाई जाने लगी जिनकी विश्व में मांग थी—चाय, कॉफी, नील, अफीम, कपास, आर्थिक रूप से अंग्रेजी राज्य से अधिक प्रभावित हुए।

20.8 निबन्धात्मक प्रश्न

- (1) विभिन्न प्रदेशों में अंग्रेजों —द्वारा अपनायी गयी राजस्व प्रणालियों का विवरण देते हुए स्पष्ट कीजिए की इन नीतियों के मध्यम से अंग्रेजी सामाज्यवादी हितों की पूर्ति किस प्रकार हुई?
- (2) विभिन्न बन्दरगाह शहरों के विकास की महता पूर प्रकाश डालिए।
- (3) अंग्रेजी राज के दौरान प्रादेशिक फसल विशिष्टीकरण का उल्लेख कीजिए।

20.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. बिपिन चन्द्र : भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद

2. बिपिन चन्द्र : भारत मैं आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव और विकास

3. रजनी पामदत्त : आज का भारत

4. गिरिश मिश्र : आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास

5. Dharam Kumar (Ed.) Cambridge Economic History of India

Vol. II

इकाई 21

कृषि विकास : परिवर्तनशील क्षेत्रीय संरचना

- 21.0 उद्देश्य
- 21.1 प्रस्तावना
- 21.2 कृषि उत्पादन क्षमता
- 21.3 कृषि क्षेत्रफल
- 21.4 कृषि उत्पादन का प्रादेशिक स्वरूप
- 21.5 मूल्य उत्पादकता
- 21.6 नयी कृषि नीति
- 21.7 भारत में कृषि क्षेत्र
- 21.8 भारत में फसलों के ढांचे में परिवर्तन
 21.8.1 प्रादेशिक स्तर. पर अध्ययन
 21.8.2 कृषि उत्पादन
- 21.9 सिंचाई साधनों का विकास
- 21.10 सारांश
- 21.11 निबन्धात्मक प्रश्न
- 21.12 कुछ उपयोगी प्स्तकें

21.0 उद्देश्य :

भारत एक कृषि प्रधान देश है । हमारे देश की अर्थव्यवस्था में कृषि का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है । देश की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि व्यवसाय से ही जीविकोपार्जन करती है । वर्तमान समय में कृषि के प्रत्येक क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन आये है । बीजों की विभिन्न किस्में, अलग–अलग फसल के अनुसार खाद, कृषि कार्य में उपयोग में आने वाली सभी तरह की मशीनों में व्यापक परिवर्तन आये है । इससे कृषि उत्पादन में बहुत बढ़ोतरी दर्ज की गयी है ।

21.1 प्रस्तावना :

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान पायेंगे

- (i) देश की कृषि उत्पादन क्षमता में क्या परिवर्तन आये है ।
- (ii) भारत में कृषि उत्पादन का प्रादेशिक स्वरूप क्या है ।
- (iii) मूल्य उत्पादकता के बारे में
- (iv) नयी कृषि नीति के बारे में
- (v) भारत में कृषि क्षेत्र के बारे में
- (vi) भारत में फसलों के ढांचे में हुए परिवर्तन के बारे में
- (vii) प्रादेशिक स्तर पर कृषि से प्राप्त सकल घरेलू उत्पादक एवं विशुद्ध घरेलू उत्पाद के बारे में

21.2 कृषि उत्पादन क्षमता :

भारत की खाद्यान्न उगाने की क्षमता अधिकतम 250 मिलियन टन आंकी गयी है जो कि 2025 तक प्राप्त हो सकेगी और फिर अधिकतम जनसंख्या 125 करोड़ को भोजन दे पायेंगे: इससे अधिक जनसंख्या बढने पर व्यापक भुखमरी होगी।

1947 से 1997 के बीच खाद्यान का उत्पादन 50 मि.ट. से बढ़कर 185 मि.ट. व 1997–98 तक 200 मि.ट. (अनु) था। जनसंख्या 34 करोड़ से 94 करोड़ हुई। खाद्यान वृद्धि अतः 3.7 गुनी, जनसंख्या 3 गुनी। भारत की कृषि की यह एक बड़ी उपलब्धि है कि अतिरिक्त 60 करोड़ व्यक्ति (जो बराबर यूएसए. + प. योरोप + रुस की आज की जनसंख्या) को भोजन दे पाये। परन्तु अब अतिरिक्त जमीन कृषि के अन्तर्गत नहीं लायी जा पा रही है।

तालिका 21.1 वृद्धि दरें 1947–1967 तथा 1967–1997 के बीच प्रतिशत में इस तरह रही

| फसले | उत्प | ादन | उत्पात | दकता |
|---------------|---------|---------|---------|---------|
| | 1947–67 | 1967–97 | 1947–67 | 1967–97 |
| चावल | 4.0 | 2.6 | 2.4 | 2.0 |
| गेह्रँ | 3.3 | 4.9 | 2.3 | 3.1 |
| मोटा अनाज | 2.6 | 0.5 | 1.6 | 1.4 |
| दालें | 0.4 | 0.6 | 0.0 | 0.3 |
| सकल खाद्यान्न | 3.0 | 2.5 | 2.2 | 2.3 |

अब दरें गिरी है परन्तु स्तर (level) ऊँचा है (10 से 20 होना 100% परन्तु 100 से 110 मात्र 10%) मात्र गेह्ँ की ही प्रबल क्रान्ति हुई। चावल में दरें घटी स्तर बढ़ा। दालों की तुलनात्मक स्थिति हमेशा नीची रही।

21.3 कृषि क्षेत्रफल :

क्षेत्रफल 1947— 1967 के बीच कृषि के अन्तर्गत लाया जाने वाला क्षेत्रफल 1.41% वार्षिक से बढ़ा, 1968—81 के बीच वह मात्र 0.35% वार्षिक दर से बढ़ा, 1981—91 के बीच वह 0.06% वार्षिक था। अब वह नगण्य हो गया। उल्टे कृषि की जमीन शहरों के विस्तार से घटने की सम्भावना है।

भारत में हरित क्रान्ति 1967 के बाद आयी परन्तु वह गेहूँ—चावल तक सीमितरहीं। दालों में नहीं सोयाबीन में भी क्रान्ति आयी। यह बड़े किसानों तथा पंजाब, हरियाणा, प.उत्तर प्रदेश, गोदावरी जिले (आंध्र) सीमित क्षेत्रों में विशेष रही। कहते हैं कि भारत को हरित क्रान्ति नम्बर II चाहिए, वास्तव में भारत को Ever–green revolution चाहिए।

21.4 कृषि उत्पादन का प्रादेशिक स्वरुप :

तालिका 21.2 भारत के कृषि उत्पादन में विभिन्न राज्यों का प्रतिशत योगदान (वर्ष 1996–97)

| चावल | | मे | ोटा अनाउ | न | | गेह्रँ | | | दालें | |
|------------------|------|-------------------|---------------|-------|----|--------------|------|----|------------|------|
| 1. पं. बंगाल | 14.5 | 1. मह | ाराष्ट्र | 25.3 | 1. | उत्तर प्रदेश | 35.3 | 1. | म.प्र. | 25.7 |
| 2. उत्तर प्रदेश | 12.8 | 2. কল | गर्टक | 14.7 | 2. | पंजाब | 22.6 | 2. | उ.प्र. | 19.0 |
| 3. आन्ध्र प्रदेश | 12.0 | 3. 3 c | तर प्रदेश | 11.5 | 3. | हरियाणा | 12.2 | 3. | महाराष्ट्र | 15.4 |
| 4. तमिलनाडु | 8.2 | 4. ਸ੪ | य प्रदेश | 10.4 | 4. | मध्य प्रदेश | 10.4 | 4. | राजस्थान | 8.2 |
| 5. पंजाब | 8.5 | 5. राज | स्था न | 7.7 | 5. | बिहार | 7.1 | 5. | बिहार | 5.8 |
| 6. उडीसा | 8.4 | 6. आ | न्ध्र प्रदेश | 6.3 | 6. | राजस्थान | 5.8 | 6. | आ.प्रा. | 4.6 |
| 7. बिहार | 7.7 | 7. बिह | गर | 5.1 | 7. | महाराष्ट्र | 1.8 | 7. | कर्नाटक | 4.5 |
| 8. मध्य प्रदेश | 7.4 | 8. ਰਹਿ | मेलनाडु | 5.1 | 8. | गुजरा | 1.6 | 8. | गुजरात | 4.1 |
| 9. असम | 4.2 | 9. गुज | ारात | 3.5 | 9. | हि. प्रदेश | 0.7 | 9. | हरियाणा | 3.6 |
| 10. कनार्टक | 4.0 | 10. हि. | प्रदेश | 2.3 | 10 | . त्रिपुरा | 0.7 | 10 | . तमिलनाडू | 3.0 |
| 11. महाराष्ट्र | 3.1 | 11. हरि | याणा | 1.6 | | | | 11 | . उड़ीसा | 2.9 |
| 12. हरियाणा | 2.6 | 12. ਗੁ | म् कश्मी | ₹ 1.6 | | | | 12 | . प.बंगाल | 1.6 |

तालिका 21.3 सकल खाद्यान उत्पादन में राज्य

| राज्य | प्रतिशत हिस्सा |
|------------------|----------------|
| 1. उत्तर प्रदेश | 20.3% |
| 2. पंजाब | 11.8 |
| 3. मध्य प्रदेश | 10.2 |
| 4. महाराष्ट्र | 7.4 |
| 5. बिहार | 7.0 |
| 6. पं. बंगाल | 6.8 |
| 7. आन्ध्र प्रदेश | 6.6 |
| 8. हरियाणा | 5.6 |
| 9. तमिलनाडु | 4.7 |
| 10. कर्नाटक | 4.6 |
| 11. राजस्थान | 3.9 |
| 12. उड़ीसा | 3.7 |

तालिका 21.4 विभिन्न राज्यों में शुद्ध व सकल बोया गया क्षेत्र

| | S | |
|--------------|----------------------|--------------------|
| प्रमुख राज्य | लाख हैक्टेयर | लाख हैक्टेयर |
| | शुद्ध बोया क्षेत्रफल | सकल बोया क्षेत्रफल |

| | 1962–65 | 1992–95 | 1962–65 | 1992–95 |
|------------------|---------|---------|---------|---------|
| 1. आन्ध्र प्रदेश | 115.1 | 107.5 | 122.7 | 122.0 |
| 2. असम | 21.2 | 27.1 | 26.2 | 36.2 |
| 3. गुजरात | 95.3 | 94.4 | 50.3 | 87.3 |
| 4. बिहार | 84.8 | 74.4 | 106.9 | 93.0 |
| 5. हरियाणा | 34.8 | 34.9 | 41.5 | 54.3 |
| 6. कर्नाटक | 104.3 | 107.5 | 103.3 | 116.9 |
| 7. जम्मू कश्मीर | 6.8 | 7.3 | 8.1 | 9.7 |
| 8. केरल | 20.2 | 22.5 | 22.1 | 26.4 |
| 9. मध्य प्रदेश | 165.4 | 194.5 | 184.7 | 232.4 |
| 10. महाराष्ट्र | 181.5 | 179.7 | 179.6 | 198.3 |
| 11. उड़ीसा | 59.4 | 63.2 | 59.3 | 65.8 |
| 12. पंजाब | 38.6 | 41.8 | 40.9 | 68.1 |
| 13. राजस्थान | 139.2 | 162.1 | 138.8 | 185.4 |
| 14. तमिलनाडु | 60.6 | 55.5 | 70.3 | 67.3 |
| 15. उत्तर प्रदेश | 173.0 | 172.4 | 235.8 | 242.9 |
| 16. पं बंगाल | 55.1 | 53.3 | 64.1 | 79.1 |

भारत में आजादी के बाद के 50 वर्षों में से 20 वर्षों में से उत्पादन पिछले वर्ष की तुलना में घटा। कृषि विकास की कहानी बढ़ने ही बढ़ने की न थी।

उन्नत बीज सकल बीज 1970 – 71 में 15.4 मिलियन हे. में प्रयोग थे । 1995 – 96 में वे 75 मि. हे. में (आधी कृषि में प्रयोग होने लगे)

तालिका 21.5 उन्नत बीजों का उपयोग

| | 1970 – 71 | 1995 – 96 |
|-----------------|-----------|-----------|
| 1. पेड़ी (चावल) | 5.6 | 33.2 |
| 2. गेहूँ | 6.5 | 23.2 |
| 3. मक्का | 0.5 | 3.5 |
| 4. ज्वार | 0.8 | 9.0 |
| 5. बाजरा | 2.0 | 6.9 |
| सकल | 15.4 | 75.0 |

जाहिर हैं कि अन्तिम लक्ष्य तो शत प्रतिशत क्षेत्र होना हैं।

उन्नत बीजों की मात्रा मिलियन कुइन्टल में 1985 – 86 में 4.8 मि. कु. थी वह 1995 – 96 में बढ़कर 6.88 मि. कु. थी।

प्रगतिशील राज्य : पंजाब, हरियाणा, हि. प्रदेश, तमिलनाडु, जम्मू कश्मीर । आन्ध्र प्रदेश व बिहार

मध्यम राज्य : गुजरात, महाराष्ट्र, पं. बंगाल, तथा उत्तर प्रदेश

पिछड़े राज्य : केरल, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, उड़ीसा व राजस्थान.

उर्वरक के मामले में 90 के दशक के मध्य में स्थिति यह थी 1951 - 52 में मात्र 0.074 मि. ट. उर्वरक प्रयोग हुए । 1995 - 96 में 13.88 मि. ट. यानी 188 गुना सकल 3पयोग = 83 कि. ग्राम प्रति हेक्टेयर

तालिका 21.6 उर्वरकों का उपभोग (मिलियन टन मे)

| राष्ट्र के ओसत का प्रतिशत | राज्य |
|---------------------------|--|
| औसत से नीचे 4 | नागा तैं ड |
| 9 | असम |
| 20-33 | सिक्किम, राजस्थान, मेघालय, उड़ीसा व त्रिपुरा |
| 34-60 | म. प्र., हि. प्र. तथा जम्मू कश्मीर, |
| 61–80 | मणीपुर, महाराष्ट्र व गुजरात |
| औसत से ऊपर 100 के लगभग | कर्नाटक व बिहार, |
| 101-140 | पं. बंगाल व उ॰ प्र॰ |
| 150 | आन्ध्र प्रदेश व हरियाणा |
| 230 | दिल्ली वं तमिलनाडु |
| 350 | पंजाब |
| 550 | चंडीगढ |
| 700 | पांडीचेरी |

कीटनाशक 1951–52 में 575 टन प्रयोग हुए 1993–94 में 83000 टन। अब कम करके 61260 टन 1995–96 में Pesticides के स्थान पर बढ़ाना है।

तालिका 21.7 कीट नाशक दवाइयों का उपयोग

| हजार टन | राज्य |
|-----------|--|
| 100–200 | नागालैंड, मेघालय, मणीपुर, त्रिपुरा |
| 300–650 | हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर व असम |
| 1000–2000 | केरल व उड़ीसा |
| 2600 | राजस्थान, 3000 बिहार, 4000-5000 हरियाणा, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, |
| | महाराष्ट्र, पंजाब, 5000 पं. बंगाल, 7000 उत्तर प्रदेश 12000 |
| | तमिलनाडु व आन्ध्र प्रदेश प्रत्येक। |

तालिका 21.8 अन्तर्राज्यीय उत्पादन के आकड़ें

| | | चावल | गेह्ँ | मोटा | दालें | सकल |
|------------------|---------|-------|-------|------|-------|-------|
| | | | | अनाज | | |
| 1. आन्ध्र प्रदेश | 1990–91 | 9654 | 9 | 1971 | 696 | 12330 |
| | 1995–96 | 9195 | 5 | 1738 | 640 | 11578 |
| 2. असम | 1990–91 | 3270 | 105 | 18 | 49 | 3442 |
| | 1995–96 | 3390 | 95 | 19 | 57 | 3562 |
| 3. बिहार | 1990–91 | 6566 | 3560 | 1219 | 916 | 12259 |
| | 1995–96 | 6911 | 4181 | 1406 | 572 | 13069 |
| 4. गुजरात | 1990–91 | 791 | 1444 | 1982 | 627 | 4844 |
| 3 | 1995–96 | 827 | 1124 | 1697 | 457 | 4103 |
| 5. हरियाणा | 1990–91 | 1834 | 6440 | 747 | 540 | 9561 |
| | 1995–96 | 1860 | 7350 | 582 | 416 | 10208 |
| 6. हि. प्रदेश | 1990–91 | 107 | 602 | 713 | 14 | 1434 |
| | 1995–96 | 111 | 544 | 705 | 13 | 1773 |
| 7. जम्मू कश्मीर | 1990–91 | 555 | 297 | 467 | 25 | 1344 |
| | 1955–96 | 509 | 349 | 486 | 23 | 1367 |
| 8. कर्नाटक | 1990–91 | 2415 | 125 | 3307 | 552 | 6399 |
| | 1995–96 | 3019 | 150 | 4675 | 724 | 8768 |
| 9. केरल | 1990–91 | 1087 | _ | 6 | 18 | 1111 |
| | 1995–96 | 933 | _ | 6 | 19 | 956 |
| 10. मध्य प्रदेश | 1990–91 | 5738 | 5833 | 3223 | 3104 | 17999 |
| | 1995–96 | 5705 | 6468 | 2502 | 3102 | 17777 |
| 11. महाराष्ट्र | 1990–91 | 2314 | 918 | 7508 | 6546 | 12184 |
| | 1995–96 | 2563 | 898 | 6546 | 1661 | 11668 |
| 12. उड़ीसा | 1990–91 | 5275 | 56 | 526 | 1086 | 6942 |
| | 1995–96 | 6226 | 5 | 426 | 1176 | 7834 |
| 13. पंजाब | 1990–91 | 6535 | 12155 | 450 | 108 | 19249 |
| | 1995–96 | 6768 | 12724 | 443 | 83 | 20018 |
| 14. राजस्थान | 1990–91 | 142 | 4309 | 4765 | 1719 | 10935 |
| | 1995–96 | 118 | 5493 | 2492 | 1462 | 9566 |
| 15. तमिलनाडु | 1990–91 | 5782 | _ | 1307 | 348 | 7438 |
| | 1995–96 | 7583 | _ | 1242 | 359 | 9164 |
| 16. उत्तर प्रदेश | 1990–91 | 10260 | 18600 | 4039 | 2772 | 35671 |
| | 1995–96 | 10408 | 22202 | 4080 | 2252 | 38944 |

| 17. पं. बंगाल | 1990–91 | 10437 | 530 | 110 | 193 | 11270 |
|-----------------|---------|-------|-------|-------|-------|--------|
| | 1995–96 | 11887 | 850 | 131 | 126 | 12994 |
| सकल भारत अन्य | 1990–91 | 74291 | 55135 | 32699 | 14265 | 176390 |
| राज्यो UTs सहित | 1995–96 | 79818 | 62620 | 29617 | 13192 | 185047 |

भारत सरकार के आर्थिक सर्वेक्षण से

21.5 मूल्य उत्पादकता

1986-87 से 1988-89 के बीच भौतिक एवं मूल्य उत्पादकता की तालिका में राजस्थान सबसे नीचे था । निम्न तालिका में वस्तुत : 90 के दशक की शुरू की स्थिति है

तालिका 21.9 भौतिक उत्पादकता

| फसल | उसमें अधिकतम | उत्पादकता | सबसे नीचा | वहा पर अधिकतम |
|------------------|-----------------|-----------|---------------|----------------------|
| | उत्पादकता राज्य | टन /हे। | राज्य | उत्पादकता से प्रतिशत |
| 1 | 2 | 3 | 4 | 5 |
| 1. सकल खाद्यान | पंजाब | 2.3 | राजस्थान | 24.7% |
| 2. सकल मोटा अनाज | पंजाब | 2.5 | राजस्थान | 26.2% |
| 3. बाजरा | पंजाब | 1.1 | राजस्थान | 26.2% |
| 4. तिलहन | तमिलनाडु | 1.0 | राजस्थान | 46.7% |
| 5. चावल | पंजाब | 2.8 | मध्य प्रदेश | 28.6% |
| 6. गेह्रँ | पंजाब | 2.5 | कर्नाटक | 23.4% |
| 7. मक्का | कर्नाटक | 2.9 | असम | 20.0% |
| 8. चना | उत्तर प्रंदेश | 0.8 | महाराष्ट्र | 44.2% |
| 9. दालें | उत्तर प्रंदेश | 0.8 | आन्ध्र प्रदेश | 39.9% |
| 10. गन्ना | तमिलनाडु | 95.0 | बिहार | 46.7% |

निम्न तालिका में हम मूल्य उत्पादकता दर्शा रहे है। समय के साथ लागतें व मूल्य तथा उनके अन्तरों में परिवर्तन आता है परन्तु किसानों की यह मनोवृत्ति व प्रयास रहते है कि आय—खर्चा = लाभ को बनाये रखें। 1988–89 सर्वोत्तम राज्य तमिलनाडु : सबसे पीछे = राजस्थान

तालिका 21.10 मूल्य उत्पादकता

| | | ** | | |
|-------------|---------------|--------------------|-----------------|----------|
| राज्य | मूल्य | भारत में सकल मूल्य | भारत का सकल | सक्षमता |
| | उत्पादकता रु० | सृजन कृषि में से | कृषि क्षेत्र का | इन्डेक्स |
| | प्रति हे | प्रतिशत | प्रतिशत | 3÷4 |
| 1 | 2 | 3 | 4 | 5 |
| 1. तमिलनाडु | 9807 | 7.51 | 3.57 | 2.10 |
| 2. पंजाब | 8522 | 9.27 | 5.08 | 1.82 |

| 3. आन्ध्र प्रदेश | 5964 | 8.69 | 6.80 | 1.28 |
|------------------|------|-------|-------|------|
| 4. केरल | 5871 | 0.65 | 0.52 | 1.25 |
| 5. हरियाणा | 5753 | 4.60 | 3.74 | 1.24 |
| 6. पं. बंगाल | 5554 | 6.09 | 5.12 | 1.19 |
| 7. उत्तर प्रदेश | 5458 | 19.69 | 16.84 | 1.17 |
| 8. गुजरात | 5033 | 5.32 | 4.92 | 1.08 |
| 9. कर्नाटक | 4958 | 5.62 | 5.30 | 1.06 |
| 10. जम्मू कश्मीर | 4072 | 0.61 | 0.68 | 0.90 |
| 11. उड़ीसा | 4599 | 4.06 | 4.12 | 0.98 |
| 12. असम | 3664 | 1.79 | 2.28 | 0.79 |
| 13. बिहार | 3595 | 5.20 | 6.76 | 0.77 |
| 14. मध्य प्रदेश | 3076 | 7.97 | 12.10 | 0.66 |
| 15. हिमाचल | 2982 | 0.40 | 0.64 | 0.66 |
| प्रदेश | | | | |
| 16. महाराष्ट्र | 2946 | 7.63 | 12.10 | 0.63 |
| 17. राजस्थान | 2421 | 4.88 | 9.41 | 0.52 |
| भारत | 4688 | | | |

- तमिलनाडु में औसत जोत 1.07 हे. थी, जबिक राजस्थान में 4.44 हे.
- तमिलनाडु में 43% क्षेत्रफल सिंचित था जबिक 21% राजस्थान में
- तमिलनाडु में प्रति हे. उर्वरक प्रयोग था 100 कि.ग्रा. राजस्थान में 11 कि.ग्रा
- तमिलनाडु में 74% भाग में उन्नत बीज प्रयोग हुए थे जबिक राजस्थान में 30% भाग में
- तमिलनाडु में प्रति हे. साख उपलब्धि थी रु. 245 राजस्थान में रु. 56 थी। निम्न तालिका में हम सकल उत्पाद मूल्य व प्रति हे. मूल्य 1992–95 का भी, 1962–65 की तुलना में दर्शाते है ।

तालिका 21.11

| राज्य | करोड़ रु. | करोड़ रु. |
|------------------|-----------|-----------|
| | 1962–65 | 1992–95 |
| 1. उत्तर प्रदेश | 9363 | 21025 |
| 2. मध्य प्रदेश | 4807 | 11091 |
| 3. आन्ध्र प्रदेश | 4988 | 11020 |
| 4. महाराष्ट्र | 5207 | 10268 |
| 5. तमिलनाडु | 4700 | 9465 |
| 6. पंजाब | 2208 | 9255 |
| 7. कर्नाटक | 3318 | 8147 |

| 8. पं. बंगाल | 3254 | 7881 | |
|-------------------|------|------|--|
| 9. राजस्थान | 2415 | 6888 | |
| 10. गुजरात | 3317 | 6559 | |
| 11. हरियाणा | 1630 | 5499 | |
| 12. बिहार | 3933 | 5283 | |
| 13. केरल | 2517 | 4130 | |
| 14. उड़ीसा | 2439 | 3932 | |
| 15. असम | 1504 | 2965 | |
| 16. जम्मू कश्मीर | 243 | 540 | |
| 17. हिमाचल प्रदेश | 249 | 462 | |

तालिका 21.12

| | प्रति हेक्टेयर स्थिति | मूल्य उत्पादकता |
|----------------------------|-----------------------|-----------------|
| | 1962–65 | 1992–95 |
| 1. केरल (मसालों आदि से भी) | 11376 | 15626 |
| 2. तमिलनाडु | 6690 | 14074 |
| 3. पंजाब | 5396 | 13597 |
| 4. हरियाणा | 3927 | 10129 |
| 5. आन्ध्र प्रदेश | 4065 | 9390 |
| 6. उत्तर प्रदेश | 3970 | 8656 |
| 7. असम | 5728 | 8197 |
| 8. गुजरात | 3673 | 7460 |
| 9. पं बंगाल | 5075 | 7319 |
| 10. कर्नाटक | 3208 | 6970 |
| 11. उड़ीसा | 4114 | 5979 |
| 12. बिहार | 3680 | 5678 |
| 13. जम्मू कश्मीर | 2987 | 5567 |
| 14. हि. प्रदेश | 3048 | 5196 |
| 15. महाराष्ट्र | 2899 | 5177 |
| 16. मध्य प्रदेश | 2603 | 4773 |
| 17. राजस्थान | 1740 | 3715 |

EPW March 29,1997, G.S. Bhalla & G. Singh

21.6 नयी कृषि नीति

इसमें कृषि को "उद्योग" का दर्जा दिया गया है। अतिरिक्त साख, कृषि इंजीनियरिंग को बढ़ावा, IRDP को कृषि क्षेत्र से समन्वय, उत्पादकता वृद्धि आन्दोलन, 127 छोटे Agro climatic zones में विशिष्ठ प्रयत्न, तथा पुरानी नीतियों को चालू रखना इसकी विशेषतायें थी। आठवी योजना के अन्त में 210 मि. ट. का लक्ष्य 12 मि.ट. से कम रहा।

नवीं योजना में 245 मि. ट. का लक्ष्य 2001 में प्राप्त करना रखा गया जिसे बहुत अच्छी किस्मत से ही पूरा कर पायेगें। कृषि को Subsidy कम तथा बाजार मूल्यों से लाभ देने के लक्ष्य है।

- (1) कृषि की औसत विकास दर 3.5% वार्षिक से 4% वार्षिक रखने का लक्ष्य है।
- (2) सक्षम (efficient zones) अंचलों में यह दर 4.5 5.0% वार्षिक रखने का लक्ष्य तथा अक्षम (inefficient zones) में भी 2 से 2.5% वार्षिक रखने का लक्ष्य।
- (3) कृषि वस्तुओं पर आधारित प्रोसेसिंग यूनिट Urban क्षेत्रों में प्रोत्साहित कर कृषि से विपणन योग्य अधिक्य को बढ़ावा दिया जायेगा।
- (4) ऊँचे मूल्य सृजन की फसलों को बढावा दिया जायेगा।
- (5) भारत अब कृषि जनित वस्तुओं के "निर्यात में क्रान्ति" लायेगा।
- (6) फार्म-फर्मी का विकास होगा।
- (7) भारत में सकल खाद्य सुरक्षा है। इसे गिरने न देंगे। सकल भारतीयों को खाद्य सुरक्षा के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली को नया रुप निरन्तर दिया जाता रहेगा।

21.7 भारत में कृषि क्षेत्र

मूलत : भारत में मुख्यत: पांच कृषि प्रदेश बनाये गये है । इनमें 15 राज्यों को शामिल किया गया है । इन पांचों प्रदेशों से भारत के कृषि उत्पादन व कृषि से प्राप्त राष्ट्रीय आय दोनों का 97% भाग प्राप्त होता है । हम भी इन्ही पांच कृषि प्रदेशों को आधार मान कर भारत में कृषि के प्रादेशिक विकास का अध्ययन करेंगे ।

यह प्रदेश इस प्रकार है :

तालिका 21.13

| प्रदेश | प्रदेश मे सम्मिलित राज्य |
|--------------------------|--------------------------------------|
| (1) दक्षिणी प्रदेश | आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल तमिलनाडु |
| (2) पश्चिमी प्रदेश | गुजरात व महाराष्ट्र |
| (3) उत्तर पश्चिमी प्रदेश | हरियाणा, पंजाव |
| (4) मध्य भारत प्रदेश | मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश |
| (5) पूर्वी प्रदेश | आसाम, बिहार, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल |

इन विभिन्न प्रदेशों की पिछले कुछ वर्षों की प्रगति हम फसलों के क्षेत्रफल, उत्पादन व प्रति हेक्टर उत्पादकता के आधार पर देख सकते है ।

21.8 भारत में फसलों के ढाँचे में परिवर्तन

पिछले कुछ वर्षों में खाद्यानों की अपेक्षा अखाद्यान फसलों में अधिक प्रगति हुई है। अखाद्यान फसलों की चक्रवृद्धि विकास दर (compound growth rate) 1981–82 से 1991–92 के बीच 4.3% रही जबिक खाद्यान्न फसलों की यह दर केवल 2.8% थी। इसका कारण था कि अखाद्यान फसलों के उत्पादन में दोनों कारणों से वृद्धि हुई– क्षेत्र में 1.7% वृद्धि तथा उत्पादकता में 2.55% वृद्धि जबिक खाद्यान के अन्तर्गन क्षेत्रफल में वस्तुत: 1980 के दशक में कमी आ गई। क्षेत्रफल की वृद्धि दर 1981–82 और 1991–92 के बीच ऋणात्मक रही (–0.26%) मगर इसके बावजूद खाद्यान्न उत्पादन 2.92% प्रतिवर्ष की दर से बढ़ता रहा, यह एक उल्लेखनीय बात है। और इसका कारण था खाद्यान्नों की प्रति हेक्टर उत्पादकता का 3% से अधिक दर से बढ़ना।

अखाद्यान फसलों के क्षेत्र में 1.71% की दर से वृद्धि तथा खाद्यान फसलों में – 0.26% वृद्धि अर्थात क्षेत्र में कमी से लगता है कि खाद्यान फसलों से भूमि हटा कर अखाद्यान फसलों की कृषि के लिये प्रयोग में लाई जा रही है । देखना यह है कि यह प्रवृति पूरे देश में ही थी या कि कुछ प्रदेशों तक सीमित रही ।

हरित क्रान्ति के बाद अर्थात 1968 के पश्चात कृषि उत्पादन में तीव्र वृद्धि हुई । खाद्यानों व अखाद्यानों दोनों प्रकार की फसलों के उत्पादन में वृद्धि के दोनों कारणों—क्षेत्रफल में वृद्धि व उत्पादकता में वृद्धि अधिक महत्वपूर्ण रहा है । कुल कृषि उपज में भी उत्पादन की वृद्धि ज्यादा उत्पादकता की वृद्धि के कारण व कम क्षेत्रफल की वृद्धि के कारण हुई । उत्पादन में कुल वृद्धि 3.43% की दर से आई जिसने 2.93% उत्पादकता की वृद्धि के कारण व 0.49% क्षेत्र वृद्धि के कारण हुई, इसलिये पिछले तीन दशकों में अर्थात हरित क्रान्ति के बाद भूमि क्षेत्रफल व उत्पादकता में हुए परिवर्तनों व कुल उत्पादन पर उनके प्रभाव का अध्ययन आवश्यक हो जाता हैं, और सुनियोजित विकास के लिये यह अध्ययन हम प्रादेशिक स्तर पर करते है ।

21.8.1 प्रादेशिक स्तर पर अध्ययन

सकल घरेलू उत्पाद में योगदान

भारत का कृषि से प्राप्त सकल घरेलू उत्पाद व विशुद्ध घरेलू उत्पाद 1968 से 1981-82 के बीच क्रमश 2.16% व 2.15% की दर से तथा 1981-82 से 1991-92 के बीच 3.28% व 3.34% की दर से बढ़ा । यदि राज्यों की दृष्टि से देखा जाये तो अधिकतर राज्यों में 1981-82 के बाद कृषि उन्माद से प्राप्त आय में ज्यादा तेजी से वृद्धि हुई और अधिकतर राज्यों ने घरेलू उत्पादन मैं कृषि के भाग में न्यूनाधिक बहुत योगदान दिया । हम घरेलू उत्पाद में राज्यों के योगदान को राज्य घरेलू उत्पाद कह सकते है ।

दक्षिण प्रदेश: केरल और तिमलनाडु में 1968 से 1981–82 के बीच जहां कृषि से प्राप्त आय में नगण्य वृद्धि हुई 1981–82 और 1991–92 के बीच क्रमश 2.75% व 3.66% वृद्धि हुई। कर्नाटक में यह वृद्धि ज्यादा नहीं रही – 2.47% से 3.21% जबिक आंध्र प्रदेश में तो वृद्धि दर 2.48% ये गिर कर 1.81% रह गई।

पश्चिमी राज्यों में गम्भीर स्थिति थी जहां कृषि से प्राप्त राज्य घरेलू उत्पाद में न केवल वृद्धि नहीं आई अपितु उसके विपरीत कमी आ गई । गुजरात में यह दर 3.23% यें गिर कर शून्य रह गई और महाराष्ट्र में 4.48% से गिर कर 2.24% हो गई । इस प्रदेश में कृषि पर मौसम का काफी प्रभाव देंखा जाना हैं ।

उत्तरी-पश्चिमी राज्यों, हरियाणा व पंजाब में यह वृद्धि देर 1968 -69 से 1981-82 और 1981 - 82 से 1991 - 92 के बीच 2.93% तथा 3.47% से बढ़ कर क्रमश : 4.77% व 4.77% हो गई ।

भारत के शेष दोनों प्रदेशों के समस्त राज्यों में राज्य घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर 1970 के दशक की अपेक्षा 1980॰ के दशक मे अधिक रही । पश्चिमी बंगाल में तो उल्लेखनीय वृद्धि हुई । वहां यह दर 2.46% से बढ़ कर 6.88% हो गई । शेष राज्यों में यह दर इस प्रकार रही:-

तालिका— 21.14 कृषि जन्य राज्य घरेलू उत्पाद की चक्रवृद्धि वृद्धि दर

| | 1970 का दशक | 1980 का दशक |
|------------------|-------------|-------------|
| प्रदेश / राज्य | | |
| मध्य भारत प्रदेश | | |
| मध्य प्रदेश | 0.67 | 2.51 |
| राजस्थान | 3.11 | 2.51 |
| उत्तर प्रदेश | 3.11 | 3.34 |
| पूर्वी राज्य | | |
| असम | 1.72 | 2.34 |
| बिहार | 1.39 | 2.34 |
| उड़ीसा | 2.57 | 3.40 |
| प. पश्चिमी बंगाल | 2.46 | 2.46 |

उपरोक्त तथ्यों को देखते हुए हम कह सकते हैं, कि पश्चिमी राज्य प्रदेश एवं आन्ध्र प्रदेश को छोडकर शेष सब राज्यों में 1980 और 1990 के बीच कृषि की वृद्धि दर में वृद्धि हुई।

21.8.2 कृषि उत्पादन

कृषि विकास के स्वरुप को समझने के लिये सकल कृषि उत्पादन की अपेक्षा खाद्यान व अखाद्यान फसलों का अलग–अलग अध्ययन करना बेहतर है । हमने उपर देखा कि समस्त भारत के लिये खाद्यान्न उत्पादन की औसत चक्रवृद्धि वृद्धि दुरा निरन्तर 2.66% रही । मगर अन्तर यह था कि 1968 से पहले इसमें अधिक योगदान क्षेत्रफल में वृद्धि का था । 1968 के बाद खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि उत्पादकता में वृद्धि के कारण आई । उत्पादकता की वृद्धि दर 1981–82 से पहले 1.94% थी, उसके बाद एकदम बढ़कर 30.8% हो गई । बल्कि खादयानों

के अन्तर्गत भूमि क्षेत्र की वृद्धि दर में तो इस अविध में कमी आई थी— यह दर 1981 — 82 तक 0.38% रही थी, तत्पश्चात गिर कर 0.24% रह गई थी । अब यह देखना आवश्यक हो जाता है कि यह प्रवृत्ति क्या पूरे देश के लिये ऐसी ही रही या कुछ राज्यों में वृद्धि व कुछ राज्यों में कमी का यह प्रभाव था ।

दक्षिण प्रदेश :- दक्षिण प्रदेश के राज्यों में खाद्यानों की उत्पादकता में वृद्धि दर केरल में 1.56% से लेकर तमिलनाइ में 4.11% तक रही । यह काफी संतोषजनक स्थिति थी इसके विपरीत खादयानों के अन्तर्गत क्षेत्रफल में सभी राज्यों में कमी आई । केरल में खादयान क्षेत्रफल में 3.79% की गिरावट आई, आन्ध्र प्रदेश में 1.76% व तमिलनाइ में 0.81% की कमी आई । इससे स्पष्ट है कि दक्षिण क्षेत्र में 1980 के दशक में खादयान उत्पादन में कमी होने का मुख्य कारण खादयान के अन्तर्गत क्षेत्र में कमी आना था । भूमि क्षेत्र में कमी व उत्पादकता में विभिन्न अनुपात में वृद्धि के कारण इस दशक में खाद्यान उत्पादन की प्रवृतियाँ दक्षिण क्षेत्र के इन चार राज्यों में भिन्न-भिन्न रही । उदाहरणार्थ, आन्ध्र प्रदेश, में व तमिलनाइ में खादयान्न उत्पादन क्रमश 1.32% तथा 3.26% की दर से बढ़ा, कर्नाटक में लगभग स्थिर रहा तथा केरल में 2.29% कम हो गया । पूरे दक्षिण राज्य में 1970 के दशक में खादयान्न उत्पादन की दर आन्ध्र प्रदेश कर्नाटक व तमिलनाइ में इस दर में तीव्र कमी आने के कारण गिर गई । आन्ध्र प्रदेश में यह दर 1970 के दशक में 3.44% रही थी जो 1980 के दशक में 1.32% रह गई थी, कर्नाटक में 1.99% से कम हो कर शून्य रह गई और केरल-में तो यह दर ऋणात्मक हो गई । केवल तमिलनाडु में इस दर में वृद्धि आई और 1970 के दशक में स्थिरता की स्थिति से 1980 के दशक में 3.6% की दर हो गई । इस प्रकार समपर्ण दक्षिण प्रदेश में खाद्यान्न के अन्तर्गत क्षेत्र एव खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि दर दोनों में इन दो दशकों में कमी आई है।

इस प्रदेश में भूमि का उपयोग खाद्यान फसलों से हटाकर अखाद्यान फसलों को उगाने के लिये किया जाने लगा । केरल व आन्ध्र प्रदेश में यह प्रवृत्ति सर्वाधिक देखने में आती है, जहां 1980 के दशक में खाद्यान के अन्तर्गत क्षेत्र में क्रमश : 3.79% व 1.79% कमी आई। आन्ध्र प्रदेश में कपास व तम्बाक् तथा कर्नाटक में मूंगफली को छोड़ जिनके उत्पादन में 1980 के दशक में कोई वृद्धि नहीं आई, दक्षिण प्रदेश में 1980 के दशक में 1970 के दशक की अपेक्षा तथा खाद्यान्न फसलों की तुलना में भी अखाद्यान फसलों का उत्पादन अधिक रहा । कर्नाटक में कपास की प्रति हेक्टर उत्पादकता इस दशक में 9.63% की दर से बढ़ी । पंजाब की 7.93% की दर की तुलना में यह दर कहीं अधिक थी । सम्पूर्ण दिक्षण प्रदेश को देखें तो खाद्यान फसलों का असंतोषजनक प्रगति की कमी को –काफी सीमा तक अखाद्यान फसलों की वृद्धि ने पूरा कर दिया । सम्भव है आन्ध्र प्रदेश में कपास व तम्बाक् की असन्तोषजनक प्रगति ने मूगफली की 6.97% व मिर्चो की 7.435 की तीव्र वृद्धि दर को छिपा दिया हो जिससे अखाद्यान्नों की 1980 के दशक में समपूर्ण प्रगति असन्तोषजनक लगने लगी । केरल की कृषि अर्थव्यवस्था में अखाद्यान फसलों का महत्वपूर्ण स्थान है । उस राज्य में कुल कृषि दन का 76% भाग अखाद्यान्न फसलों का है । रबड व काली मिर्च उगाने वाला केरल अकेला राज्य है

और नारियल के कुल उत्पादन का 50% इस राज्य में पैदा होता है । 1970 के दशक में इस राज्य में पैदा होता है । 1970 के दशक में इस राज्य में कृषि की सकल प्रगति—खाद्यान व अखाद्यान फसलों को मिला कर खराब रही । लेकिन 1980 के दशक में यद्यपि खाद्यान फसलों के उत्पादन में कमी आई, (-2.29%) कृषि से प्राप्त राज्य घरेलू उत्पाद में 2.75% की दर से वृद्धि आई इसमें विभिन्न अखाद्यान फसलों की उत्पादन की तीव्र वृद्धि दर (रबड़ की 3% से लेकर काली मिर्च की 9% तक) का बड़ा योगदान था । आन्ध्र प्रदेश में 1970 के दशक में कृषि क्षेत्र से घरेलू उत्पादन में 2.48% की वृद्धि आई थी, 1980 के दशक में यह गिर कर 1.32% रह गई । इसका कारण था कि 1970 के दशक में खाद्यानों की उत्पादन वृद्धि दर 3.44% व कपास की 15.21% रही थी जो 1980 के दशक में गिर कर 1.32% व कपास तथा तम्बाकू में नगण्य हो गई । इस प्रकार जहां केरल में अखाद्यान फसलों की प्रगति ने सकल कृषि की प्रगति पर गहरा प्रभाव डाला, आन्ध्र प्रदेश में अखाद्यान फसलों की प्रगति ने खाद्यान फसलों की कमी को पूरा नहीं कर पाई ।

पश्चिमी राज्य – इन राज्यों मे भी 1970 से 1980 के बीच खाद्यान्न उत्पादन की चक्रवृद्धि वृद्धि दूर में कमी आई । महाराष्ट्र में यह दर 5.60% से गिरकर 2.1% व गुजरात में 2.92% से गिर कर – 1.81% रह गई । इसका मुखर कारण उत्पादकता में कमी था । और उत्पादकता में वृद्धि न होने का कारण था सिंचाई के साधन पर्याप्त न होना तथा अनेक बार अनावृष्टि की स्थिति हों जाना । पश्चिमी प्रदेश में महाराष्ट्र में कपास व गुजरात में राई (rapeseed) को छोड़कर अखाद्यान फसलों की प्रगति कुछ विशेष संतोषजनक नहीं रही । हिरत क्रान्ति के बाद दोनों दशकों मे महाराष्ट्र में कपाम के उत्पादन में केवल 2.5% प्रति वर्ष की दर से वृद्धि हुई और मूंगफली, गन्ना और मिर्च में 1980 के दशक में कोई वृद्धि नहीं हुई । गुजरात में जहां कृषि का लगभग आधा क्षेत्र अखाद्यान फसलों के अन्तर्गत है, 1980 के दशक में अनेक बार वर्षा अच्छी नहीं होने के कारण इन फसलों का उत्पादन कम रहा ।

उत्तर-पश्चिमी प्रदेश — भारत में हिरत क्रान्ति लाने मे अग्रिम उत्तर-पश्चिमी प्रदेश निरन्तर खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि में और छलांगें लगाता गया । और इन दो प्रदेशों में भी हिरयाणा का स्थान प्रथम रहा । पंजाब को इस प्रदेश ने खाद्यान्न के उत्पादन व उत्पादकता दोनों में पीछे छोड़ दिया । हिरयाणा में खाद्यान v u 1980 के दशक में 4.52% प्रति वर्ष की दर से बढ़ा जो पंजाब की 3.80% की दर से कहीं अधिक था । हिरत क्रान्ति के बाद 1970 के दशक में इससे विपरित स्थिति थी । पंजाब में खाद्यान्न उत्पादकता की वृद्धि दर 5.74% रही थी जबिक हिरयाणा मे यह 3.6% थी । इसका मुख्य कारण हिरयाणा में खाद्यानों की उत्पादकता में 5.1% की दर से तीव्र वार्षिक वृद्धि थी जो पंजाब में केवल 2.54% रही । और पंजाब में खाद्यान्न क्षेत्रफल की वृद्धि दर तो वस्तुत : 1970 के दशक की 2.34% से कम होकर 1980 के दशक मे 1.23% रह गयी और उत्पादकता भी 3.33% से कम होकर 2.54% रह गयी । हिरयाणा में 1980 के दशक में अखाद्यान फसलों का उत्पादन भी तीव्रता से बढ़ा ।

इन राज्यों की फसलों में राई तथा कपास का 20% हिस्सा है । इन दोनों की वृद्धि दर क्रमश : 1 7% व 6.89% रही । इसलिए अखाद्यान फसलों की उत्पादन वृद्धि की दर खाद्यान्न फसलों की अपेक्षा कही अधिक रही । पंजाब में अखाद्यान फसलों केवल 15% भूमि पर उगाई जानी है । और इनमें प्रमुख है कपास जो कुल कृषि भूमि के दसवें भाग पर उगाई जाती है । व देश के कुल उत्पादन का 23% भाग उपलब्ध कराती है । इस फसल की उत्पादन की वृद्धि दर, 1970 के दशक में 3.25% से बढ़कर 1980 के दशक में 9.94% हो गई । इसी कारण पंजाब में कृषि राज्य घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर 1970 के दशक में 3.47% से बढ़ कर 1980 के दशक में 4.77% हो गई । हिरयाणा में भी यह दर 4.77% रही । इसलिए इन दोनों ही राज्यों में अखाद्यान फसलों की उत्पादन की तीव्र वृद्धि दर से राज्य के घरेलू की यह वृद्धि सम्भव हुई।

मध्य व पूर्वी प्रदेश : इस क्षेत्र में मध्य प्रदेश व उत्तर प्रदेश दो प्रमुख खाद्यान उगाने वाले प्रदेश है । कुल भारत के खाद्यान्न उत्पादन का 30% भाग इन दो प्रदेशों में उगाया जाता है । पूर्वी प्रदेश में पश्चिमी बंगाल (7.6%), बिहार (6.1%), तथा उड़ीसा (5%) खाद्यान्न उत्पादन में प्रमुख है जहां भारत के खाद्यान्न उत्पादन का 18.7% उगता है । पश्चिमी बंगाल मैं खाद्यान उत्पादन की चक्रवृद्धि वृद्धि दर 6.1% बहुत अच्छी रही । उत्तर प्रदेश, उड़ीसा व बिहार में 3% से अधिक व कम प्रदेश तथा आसाम में 2.3% रही । राजस्थान ही एक अपवाद था जहां उत्पादन न केवल बढ़ा नहीं बल्कि अस्थिर भी था । इस मध्य एवं पूर्वी प्रदेश में भी उत्पादकता की वृद्धि ही उत्पादन की वृद्धि का मुख्य कारण रही । भूमि विस्तार की इसमें नगण्य भूमिका रही । बल्कि मध्य प्रदेश में क्षेत्रफल में 0.5% की कमी ही आई । आसाम के अतिरिक्त प्रति हेक्टर उत्पादकता की वृद्धि दर सभी राज्यों मैं 3% से अधिक बढ़ी और पश्चिमी बंगाल में तो 5.05% रही ।

हरित क्रान्ति के बाद राजस्थान के अतिरिक्त इन सभी राज्यों में खाद्यान उतादन में वृद्धि आई । मध्य प्रदेश मे, खाद्यान उतादन की वृद्धि दर 1970 के दशक में 0.88% से बढ़कर 1980 के दशक में 2.3% हो गई । यद्यपि भूमि क्षेत्र की वृद्धि दर 0.57% से गिर कर 0.58% हो गई थी। उत्तर प्रदेश में उत्पादन की वृद्धि दर 1970 के दशक में 2.55% से बढ़कर 1980 के बाद 3.37% हो गई । देखने में शायद यह दर इतनी अधिक न लगे, मगर जब उत्तर प्रदेश में देश के कुल खाद्यान उत्पादन में 21% से अधिक भाग पैदा होता है, इस बात को ध्यान में रखा जाये तो यह छोटी वृद्धि भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हों जाती है । इस प्रदेश में खाद्यान्न उत्पादन की तीव्र वृद्धि के कारण है नई तकनीकी का अपनाना, उन्नत किस्म के बीज, खाद, उर्वरक व साख आदि के वितरण की सुविधाओं में वृद्धि व सिंचाई के साधनों में विस्तार ।

इस प्रदेश में राजस्थान में कृषि से प्राप्त राज्य घरेलू उत्पादन वृद्धि दर 1980 कें दशक में खाद्यान उत्पादन की स्थिरता के बावजूद 4.91% रही । इसका कारण था यहां लगभग सभी अखादयान फसलों के उत्पादन में आशातीत वृद्धि — जैसे तिलहन, कपास, मिर्चें,

धिनिया, प्याज इत्यादि । इनकी उत्पादन वृद्धि दर 7.08% से लेकर 16.64% तक रही और इस वृद्धि का श्रेय उत्पादकता की वृद्धि को जाता है, क्षेत्र वृद्धि का, इसमें कोई स्थान नहीं था । इस राज्य में अखाद्यान फसलों का कुल कृषि भूमि में केवल 32% हिस्सा है इसलिए राज्य घरेलू उत्पाद में यह वृद्धि उल्लेखनीय है ।

इन तीनों प्रदेशों में — उत्तर पश्चिमी प्रदेश, मध्य भारत प्रदेश व पूर्वी क्षेत्र में जहां खाद्यान्न फसलों की प्रगति बहुत अच्छी रही, मुख्य अखाद्यान फसलों के उत्पादन में भी अच्छी प्रगति हुई। विशेषतः तिलहन, गन्ना, व कपास में हुई— प्रगति उल्लेखनीय है । पश्चिमी बंगाल, पंजाब और हरियाणा में अन्य सभी राज्यों की अपेक्षा विशेष तौर पर यह प्रगति बहुत अधिक रही ।

21.9 सिंचाई के साधनों का विकास

कृषि उपज की वृद्धि में सिंचाई के साधनों में विस्तार का बहुत योगदान होता है । भारत में 1970–71 और 1980–81 के बीच कुल सिचित क्षेत्र में 23% और 1980–81 से 1990–91 के बीच 24.9% की वृद्धि हुई। 1970 के दशक में सर्वाधिक वृद्धि पश्चिमी क्षेत्र में हुई जहां सिंचित क्षेत्र 49.1% बढ़ा। मध्य क्षेत्र में 36.7% तथा उत्तरी—पश्चिमी प्रदेश में 24.8% वृद्धि भी सराहनीय थी। इसके विपरीत पूर्वी तथा दक्षिणी प्रदेशों में सह वृद्धि क्रमश : 3% व 2.1% रही। 1980 के दशक मैं इस स्थिति में काफी परिवर्तन आया। पश्चिमी प्रदेश में सिंचित क्षेत्र की वृद्धि दर में अधिकतम कमी आई जहां यह गिर कर केवल 15.2% रही—अर्थात पहले दशक की तुलना में लगभग एक तिहाई। मध्य क्षेत्र व उत्तर पश्चिम में भी यह वृद्धि की दरें क्रमश : 27.2% तथा 18% पर 1970 के दशक की अपेक्षा काफी कम रही। दूसरी ओर, दक्षिण प्रदेश में यह 1970 के दशक की 2.1% से एकदम बढ़कर 1980 के दशक में 19.5% व पूर्वी प्रदेश में 3.0% से बढ़कर40.4% हो गई जो बहुत अधिक थी। मध्य भारत प्रदेश में 1970 से 1990 तक कुल 64% की वृद्धि हुई। 1970 के दशक में ज्यादा वृद्धि उत्तर प्रदेश में आई थी, 1980 के दशक में मध्य प्रदेश में सिंचित क्षेत्र में अधिक वृद्धि हुई। शायद यही कारण था कि इन दोनों प्रदेशों में जहां सिंचित क्षेत्र में इतनी तीव्रता से वृद्धि हुई, कृषि उत्पादन भी तीव्रता से बढ़ा।

इसलिए भारत में खाद्यान उत्पादन की वृद्धि में विभिन्न राज्यों /प्रदेशों की भिन्न-भिन्न भूमिका रही । एक और दक्षिण प्रदेश तथा पश्चिम प्रदेश में खाद्यान्न क्षेत्र में कमी आई पूर्वी राज्यों में स्थिरता का स्थान तीव्र वृद्धि ने ले लिया । मध्य भारत क्षेत्र में कृषि विकास की दर में तेजी आई तथा उत्तरी—पश्चिमी— प्रदेश में भी तीव्र वृद्धि की दर बनी रही । पिछले कुछ वर्षों में मध्य भारत क्षेत्र व पूर्वी क्षेत्र के अनेक कम उत्पादन वाले क्षेत्रों में उत्पादन तीव्रता से बढ़ा । अखाद्यान फसलों की उत्पादकता व उत्पादन में वृद्धि के कारण अधिकतर राज्यों में कृषि आय में भी तीव्र वृद्धि आई । इसलिए ज्यों—ज्यों कृषि का विकास अधिक क्षेत्रों व फसलों में फैला, कृषि के विकास का भारत में आधार अधिक विस्मृत होता गया

21.10 सारांश

भारतीय कृषि विकास के क्षेत्रीय पहलु का अध्ययन करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि कुछ क्षेत्रों में विकास की दर में तेजी आई है तो कुछ में कमी । इसका प्रभाव इन क्षेत्रों में आय व सम्पत्ति पर भी पड़ा है । धन और आय के वितरण की व्यवस्था का उस क्षेत्र के आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है । विश्व बैक (World Bank) की एक रिपोर्ट के अनुसार निर्धनता की रेखा के नीचे जनसंख्या है, विभिन्न प्रदेशों एवं राज्यों के लिये उसका अनुमान निम्नलिखित तालिका से लगाया जा सकता है ।

तालिका संख्या 21.15 भारत में गरीबी की रेखा से नीचे जनसंख्या का प्रादेशिक अनुमान

| | गरीबी रेखा से नीचे जनसंख्या | | |
|-------------------|-----------------------------|------|------|
| प्रदेश | 1970 | 1983 | 1988 |
| दक्षिण प्रदेश | 61.0 | 46.2 | 43.2 |
| पूर्वी प्रदेश | 61.8 | 57.3 | 51.3 |
| मध्य भारत क्षेत्र | 46.9 | 40.2 | 37.2 |
| पश्चिमी प्रदेश | 46.1 | 38.2 | 34.9 |
| उत्तरी प्रदेश ** | 12.6 | 9.8 | 8.3 |

गरीबी—रेखा से नीचे रहने वाली कुल ग्रामीण जनसंख्या का 90% भाग मुख्यत : दस राज्यों में रहता है: आन्ध्र प्रदेश, बिहार, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, तिमलनाडु, उत्तर प्रदेश व पश्चिमी बंगाल इस प्रकार भारत में अत्याधिक क्षेत्रीय असमानताएं है।

कुछ राज्यों या क्षेत्रों में पिछले कुछ वर्षों में अधिक विकास हु आ है, कुछ तुलनात्मक रूप में कम विकास कर पाये हैं । इसलिए अन्तर्प्रादेशिक असमानताएं बढ़ती गई है । यही नहीं कुछ राज्यों के विभिन्न हिस्सों में भी अन्तर है जैसे उत्तर प्रदेश जहां पूर्वी उत्तर प्रदेश में कम विकास व अधिक निर्धनता । यह प्रादेशिक असन्तुलन प्राकृतिक हो सकता है—प्राकृतिक संसाधनों में अन्तर के कारण, या मानवीय — मानव द्वारा कुछ क्षेत्रों पर अधिक व दूसरे क्षेत्रों पर कम ध्यान दिये जाने के कारण । एक अन्य प्रकार से हम प्रादेशिक असन्तुलन को देख सकते है—, सकल उत्पाद में या उत्पादन के किसी एक क्षेत्र में अर्थात कृषि, उद्योग या सेवाएं । अनेक बार देखा जाता है कि एक राज्य कृषि में अधिक विकास कर जाता है मगर उद्योगों में पिछड़ जाता है, तो दूसरे क्षेत्र में कृषि के विकास की अपेक्षा औद्योगिकरण अधिक होता है । कुछ क्षेत्र ऐसे हो सकते है जहां सर्वागीण, सकल विकास हो । किसी राज्य अथवा प्रदेश के पिछड़ेपन की अनेक निशानियां है— कृषि अथवा उद्योगों का पिछड़ेपन, प्रति व्यक्ति आय कम होना. भूमि पर जनसंखा का अधिक दबाव इत्यादि ।

^{**} यहा उत्तरी प्रदेश में हिमाचल प्रदेश भी सम्मिलन किया गया है।

^{*}स्रोत (Source) World Bank Report 1989.

भारत में कृषि विकास पिछले दो दशकों में लगभग सभी प्रदेशों में हु आ है । यह इस बात से स्पष्ट है कि अनेक कम उत्पादकता वाले क्षेत्रों में, जैसे मध्य भारत और पूर्वी राज्य जहां पहले विकास बहुत धीमी गित से हो रहा था, खाद्यान उत्पादन बहुत तेजी से बढ़ा है । साथ ही, अखाद्यान फसलों के विकास के कारण कृषि आयों में भी अधिकतर राज्यों में तीव्र वृद्धि आई । इस प्रकार कृषि का आधार भारत में काफी विस्तृत हो गया है ।

पश्चिमी प्रदेश के धीमें विकास की गति का कारण शायद कृषि से हटकर उद्योगों आदि पर जोर देना है। इस कारण संसाधन भी कृषि से हटाकर अकृषि कार्यो में लगा दिये गये है। वैसे इस प्रदेश में खराब मौसम व सिंचाई के साधन अपर्याप्त होने का भी प्रभाव रहा है।

दक्षिण राज्य में खाद्यान्न उत्पादन में कमी खाद्यानों के क्षेत्र में कमी आने से हुई । अखादयानों के उत्पादन में कहीं ज्यादा वृद्धि आई ।

प्रादेशिक नियोजन सें विभिन्न कृषि व खेती प्रणालियों के लिये निवेश व अध: संरचना या उपरी पूंजी (Infrastructure) का विकास होता है । किसी प्रदेश की जो संसाधन सम्भावनाएं होती है उनका न्यूनतम पूंजी के निवेश से अधिकाधिक विकास करना-जैसे नहरों को या पारम्परिक सिंचाई के साधनों को बेहतर बनाना और प्रादेशिक राज्यीय व क्षेत्रीय (Sectoral) आधार पर सन्त्लित विकास करना भारत जेंसे देश के विकास के लिये आवश्यक है । अभी पिछले कुछ वर्षो में हूए भारतीय अर्थव्यवस्था की विदेशी व्यापार नीतियों में परिवर्तन से अनेक प्रशासनिक नियंत्रण हटा दिये गये है । उदारीकरण (liberalistion) की इस नीति के कारण नये कृषि आधारित उदयोगों व कृषि निर्यात की वृद्धि के लिये अच्छी संभावनाएं पैदा हो गई है व सम्भव है कि दक्षिण भारत राज्य अखाद्यान फसलों में विशिष्टीकरण प्राप्त कर लें। जहां-जहां कृषि विकास की दर जब तक ऊँची रही है जैसे पंजाब, वहां अब उत्पादन में वृद्धि की प्रवृत्ति को तकनीक में परिवर्तन लाये बिना कायम रखना कठिन है । फसलों की विविधता लाने के लिए अब ज्यादा सुहाने अवसर चाहिये । दक्षिण, पश्चिम व उत्तर-पश्चिमी, तीनों प्रदेशों में खादयान उत्पादन में आई कमी को देखते हुए लगता है कि भविष्य में मध्य भारत व पूर्वी राज्यों को भारत की खादय स्रक्षा का भार वहन करना होगा । सौभाग्यवश इन दोनों राज्यों में न केवल इसकी सम्भावना नजर आई है बल्कि इन प्रदेशों में विभिन्न नीतियों का भी अच्छा प्रभाव देखने में आया है । इन्ही नीतियों पर जोर देने व इन प्रदेशों को पूरे साधन उपलब्ध कराने पर इन राज्यों से काफी आशा की जा सकती है ।

21.11 निबन्धात्मक प्रश्न

- 1) भारत की अर्थव्यवस्था के लियें कृषि के महत्व का विवेचन करें।
- पिछले कुछ वर्षों में भारत में: विभिन्न प्रदेशों एवं राज्यों के राज्य घरेलू उत्पाद में कृषि के योगदान का विवेचन करें ।
- 3) हरित क्रान्ति के पश्चात विभिन्न प्रदेशों एवं उनके राज्यों में आई खाद्यान्न उत्पादन की प्रवृति का विश्लेषण करें।
- 4) दक्षिणी प्रदेश व पूर्वी प्रदेश के पिछले तीन दशकों में कृषि विकास का विवेचन कर ।

5) अखाद्यान फसलों की तीव वृद्धि दर ने पिछले दो दशकों में किस प्रकार सकल कृषि उत्पादन की वृद्धि दर को उपर बनाये रखा ।

21.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) स्रेश चन्द्र बंसल भारत का भूगोल, मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ, 1997

2) Gopal Singh A geography of India; Atma Ram and Sons,

Delhi, 1970

3) Jahar Lal Guha A new approach to Economic Geography

4) and Prabhas Ranjan The World Press Pvt. Ltd. Calcutta, 1996

Chatteraj

5) T C Sharma and Economic and Comercial

6) O Coutinho Geography of India, Vikas

Publishing house, New Delhi 1996

7) Ranjit Tirtha Geography of India Rawat Publications,

Jaipur, 1996

8) S.D. Sawant and Agricultural Growth Across

9) C.V Achathan Crops and Regions in Ed. Uma Kapila,

Problems Of Indian Economy since

independence, Delhi, Academic foundation,

TRP 1997–98 edition.

10) O. S. Shrivastava Inter- State Economic

Development of Agriculture in India "Pointer

Publishers, SMS Highway, Jaipur

इकाई 22

औद्योगिक विकास : परिवर्तनशील क्षेत्रीय संरचना

- 22.0 उद्देश्य
- 22.1 प्रस्तावना
- 22.2 औद्योगिक विकास एवं क्षेत्रीय संरचना
 22.2.1 क्षेत्रीय विशेषताएं एवं औद्योगिक विकास
 22.2 2 संतुलित क्षेत्रीय विकास की आवश्यकता
- 22.3 क्षेत्रीय विकास के लिए औद्योगीकरण22.3.1 क्षेत्रीय औदयोगिक विकास के उद्देश्य
- 22.4 क्षेत्रीय औद्योगिक विकास का स्वरूप
 22.4.1 उद्योगों का क्षेत्रीयकरण
 22.4.2 क्षेत्रीय औदयोगिक विकास की व्यूहरचना
- 22.5 क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की संरचना22.5.1 क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की दिशा22.5.2 उद्योगों की क्षेत्रीय संरचना में परिवर्तन
- 22.6 सारांश
- 22.7 निबन्धात्मक प्रश्न
- 22.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

22.0 उद्देश्य :

भारत कई औद्योगिक विषयजातीय क्षेत्रों का एक संघ है, जो एक संपन्न सिंचित व औद्योगिक क्षेत्र, और एक पिछड़ी हुई कृषि के लघु औद्योगिक क्षेत्रों में फैला हुआ, सूखे व अकाल से प्रभावित रहता है। सरकार एक नियोजित तरीके से पिछड़े हुए क्षेत्रों का विकास करने के लिये प्रयासरत है। आर्थिक नियोजन एक क्रमशः विकास का साधन है, जिसका उद्देश्य औद्योगिकरण के द्वारा बहु स्तर पर रोजगार के अवसर प्रदान करके पिछड़े हुए क्षेत्रों की स्थित में सुधार करना है। इस प्रकार आजकल औद्योगिकरण दोषपूर्ण रूप में विकसित व कम विकसित क्षेत्रों के आर्थिक विकास की प्रक्रिया की महत्वपूर्ण विशेषता बन गयी है।

यह अध्याय (ईकाई) अपने देश के विभिन्न क्षेत्रों के औद्योगिक विकास के विश्लेषण पर केन्द्रित है । इस इकाई का महत्वपूर्ण उद्देश्य भारत की औद्योगिक संरचना की प्रस्तुती, विभिन्न क्षेत्रों के तीव औद्योगिकरण के लिये किये गये सरकारी प्रयासो, और इन क्षेत्रों के लिये उनकी परिस्थितियां व स्थिति के उपयुक्त विभिन्न प्रकार के उद्योगों को प्रोत्साहित करने के प्रयासों का वर्णन करना, विभिन्न क्षेत्रों के उद्योगों की संरचना में परिवर्तनों का परीक्षण करना, एवं भारत के विभिन्न क्षेत्रों में औद्योगिकरण के प्रभावों का मूल्यांकन करना है । इसका उद्देश्य

औद्योगीकरण की नीति महत्वपूर्ण परिवर्तनों और विभिन्न क्षेत्रों में इस उद्देश्य की प्रवृतियों की रूपरेखा देना भी है।

22.1 प्रस्तावना :

यह एक संस्थापित तथ्य है कि तीव्र औद्योगिकरण एक देश के आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करता है । औद्योगिक क्षेत्रों का विकास श्रमिकों का कृषि से जहाँ प्रति व्यक्ति उत्पादन निम्न होता है, उन औद्योगिक व सेवा क्षेत्रों में स्थानान्तरण सुविधाजनक बनाता है, जहाँ प्रति व्यक्ति उत्पादन अधिक होता है । तीव्र प्रावैधिक प्रगति औद्योगिक क्षेत्र में उत्पन्न विधियों में सुधार को जन्म देती है और इस प्रकार उत्पादन का उच्च स्तर व आय वृद्धि की उच्च दर प्राप्त होती है । औद्योगिक विकास के द्वारा क्षेत्रों की आय व प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि देश के क्षेत्रों के बीच असंतुलन व विषमताओं को दूर करती है ।

क्षेत्रीय असंतुलन व विषमताएँ भारत जैसे विकासशील देश के सर्वागीण विकास में प्रमुख बाधाएँ है। विभिन्न क्षेत्रों की विषमजातीय विशेषताएँ कृषि विकास में बाधाएँ होती है । इसके साथ ही विभिन्न क्षेत्रों में प्राकृतिक साधनों की उपलब्धि उनके औद्योगीकरण को आवश्यक बनाती है तािक क्षेत्रीय आय में वृद्धि हो सके । उद्योगों का स्थानीयकरण व इसके साथ स्थानीय साधनों व योग्यताओं का उपयोगीकरण क्षेत्रीय विकास का मार्ग प्रशस्त कर क्षेत्रीय असंतुलनों को कम करता है । यह संतुलित क्षेत्रीय विकास की माँग करता है, और औद्योगिक विकास नियोजित अर्थव्यवस्था के संतुलित क्षेत्रीय विकास का साधन है ।

औद्योगिक विकास का उद्देश्य आय संवर्द्धन क्रियाओं का विस्तार करना है, जिससे क्षेत्रीय कुल व प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है । यद्यपि क्षेत्रीय हितों व सभी क्षेत्रों की व्यापक विकास संभावनाओं के बीच सामंजस्य बनाये रखना भी आवश्यक होता है । अन्तर — उद्योग सम्बद्धताएँ व उद्योगों का विविधीकरण क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की संरचना को परिवर्तित करने के साधन है । इसके साथ ही संभाव्य क्षेत्रों में उद्योगों के क्षेत्रीयकरण की आवश्यकता पर भी महत्व दिया जाना चाहिए ।

देश की औद्योगिक नीति क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की संरचना दर्शाती है और इस नीति में परिवर्तन भी औद्योगिक विकास की संरचना में होने वाले परिवर्तनों का संकेत देते है । अधिक विशिष्ट रूप में कहा जाये तो पिछले अनुभवों के आधार पर कहा जा सकता है कि औद्योगिक विकास की संरचना में परिवर्तन लाने के लिये औद्योगिक नीति में परिवर्तन लाये जाने होते है । औद्योगिक विकास की ब्यूहरचना, औद्योगिक विकास व औद्योगिक प्रगति की प्रवृतियों का निर्धारण करती हैं । इस सन्दर्भ में यह इकाई संतुलित क्षेत्रीय विकास के साधन के रूप में क्षेत्रीय प्रगति, क्षेत्रीय विषमताओं व औद्योगिक विकास की विशेषताओं, उद्योगों का क्षेत्रीयकरण जो औद्योगिक विकास की संरचना निर्धारित करता है, और क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की संरचना के परिवर्तन प्रस्तुत करता है ।

22.2 औद्योगिक विकास एवं क्षेत्रीय संरचना :

भारत में क्षेत्रीय असमानताएँ है और इसी कारण विभिन्न क्षेत्रों की संरचना एक दूसरे से भिन्न पायी जाती है। कुछ विकसित क्षेत्र है जिनमें कुछ पिछड़े व छिपे हुए लघु क्षेत्र पाये जाते है । उनमें क्षेत्रीय औद्योगिक प्रगति का निम्न स्तर पाया जाता है । दूसरी और कुछ पिछड़े हुए राज्य जैसे बिहार व उत्तर प्रदेश है, जिनमें कुछ क्षेत्रों (मंडलों) को छोड़ कर शेष समर्थता क्षेत्र आर्थिक दृष्टिकोण से पिछड़े हुए है । यह अनुभव किया जाता है कि आर्थिक पिछड़ापन साधनों की कमी या विकास के निम्न स्तर के कारण नहीं बल्कि मुख्य रूप से क्षेत्रों के औद्योगीकरण के लिये साधनों के अदक्षतापूर्ण आवंटन के कारण है । इन क्षेत्रों में आर्थिक पिछड़ेपन का दूसरा कारण जनसंख्या के अधिकांश भाग की कृषि पर निरन्तर निर्भरता है, जहां व्यवहारिक प्रविधि व साथ ही उत्पादकता का स्तर भी निम्न है । कुछ पिछड़े हुए क्षेत्रों में अर्थ विकास मुख्यतया जनसंख्या की वृद्धि और अशिक्षा के कारण लाभप्रद आर्थिक क्रियाओं का न अपनाना है ।

22.2.1 क्षेत्रीय विशेषताएँ व औद्योगिक विकास :

किसी भी क्षेत्र की प्राकृतिक व भूत्थलीय विशेषताएँ उस क्षेत्र के आर्थिक विकास विशिष्टतया औद्यौगिक विकास को प्रभावित करती है । एक क्षेत्र का भौतिक परिदृश्य (वातावरण) प्राकृतिक पहलु से जुड़ा होता है जिसके अंतर्गत स्थिति, स्थान की विशेषताएँ, धरातलीय आकार का रुप, जलवायु अवस्थाएँ, कच्चा माल, ऊर्जा के स्त्रोत आतें है । क्षेत्रीय वातावरण का सम्बन्ध सांस्कृतिक तत्वों से होता है, जो मानवीय क्रियाओं जैसे विपणन, श्रम पूर्ति, यातायात आदि से उत्पन्न होता है । विभिन्न क्षेत्रों के बीच, भौतिक वातावरण व क्षेत्रीय वातावरण के बीच सम्बन्ध उदयोगों की स्थिति, स्थापना व विकास के लिये महत्वपूर्ण होता है।

यह अच्छी तरह स्वीकार किया जाता है कि भारत में सभी क्षेत्र औद्योगिक दृष्टिकोण से समान रूप से विकसित नहीं है । देश के विभिन्न क्षेत्रों के बीच विधमान आर्थिक विषमता के कुछ महत्वपूर्ण तत्व निम्न प्रकार है :—

- (1) राज्यों की प्रति व्यक्ति / आयों में अन्तर, अन्तर्राज्यीय कृषि व औद्योगिक विकास के स्तरों में अन्तरों के कारण उत्पन्न होतें है । पंजाब व हरियाणा ने प्रति व्यक्ति आय की उच्च दर प्राप्त की है, जबकि बिहार में इसकी दर निम्नतम रही है ।
- (2) निर्धनता रेखा से नीचे की जनसंख्या भी क्षेत्रों के विकास में असंतुलन उत्पन्न करती है।
- (3) आधारभूत संरचनात्मक सुविधाएँ जैसे, सड़कें, यातायात व संदेशवाहन, ऊर्जा पूर्ति इत्यादि भी विभिन्न क्षेत्रों के विकास के स्तरों के बीच महत्वपूर्ण अन्तर उत्पन्न करती है । परिणाम— स्वरूप, विभिन्न राज्यों के द्वारा प्राप्त औद्योगीकरण के स्तर भी राज्यों में भिन्न—भिन्न हाते है । महाराष्ट्र, गुजरात, व पश्चिमी बंगाल औद्योगिक दृष्टिकोण से विकसित है, जबिक मध्य प्रदेश व उड़ीसा औद्योगिक पिछड़ेपन से ग्रसित है ।

22.2.2 संतुलित क्षेत्रीय विकास की आवश्यकता :

एक देश में क्षेत्रीय असंतुलनों से तात्पर्य औद्योगिक दृष्टिकोण से विकसित व पिछड़े हुए क्षेत्रों से है । ये असंतुलन अन्तर्राज्यीय और राज्यभ्यन्तर (राज्यों के अन्दर) भी हो सकते हैं, और पूर्ण व क्षेत्रीय सहित दोनों प्रकार के हो सकते है । औद्योगिक पिछड़ापन एवं क्षेत्र को अपना अतिरिक्त श्रम कृषि से उद्योग में स्थानान्तरित नहीं होने देता । यह एक क्षेत्र की अतिरिक्त रोजगार प्रदान करने की क्षमता को भी सीमित करता है, और इस प्रकार उत्पादकता स्तर के सुधार में बाधक होता है। इस कारण क्षेत्रीय संतुलित विकास क्षेत्रों के अनुरूप विकास के लिये आवश्यक है। इसका अर्थ देश के क्षेत्रों में समान विकास करना नहीं, बल्कि एक क्षेत्र की इसकी योग्यताओं के अनुसार संभाव्यताओं का पूर्णतया विकास करना है। इसका तात्पर्य, प्रत्येक क्षेत्र का समान—स्तरीय अथवा समान स्वरूप का औद्योगिकरण करना नहीं बल्कि पिछड़े हुए क्षेत्रों में उद्योगों का व्यापक प्रसार करना है।

क्षेत्रीय औद्योगिक विकास का उद्देश्य पिछड़े हुए क्षेत्रों में लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाना है और, यह देश के अनुरूप विकास की एक प्रयोजनीय आवश्यकता है । संतुलित औद्योगिक विकास बड़े शहरों व कस्बों में उद्योगों के संकेन्द्रीकरण की समस्याओं से छुटकारा दिलाने में सहायक होता है, जैसे अति भीड़—भाड़, घुटन व प्रदूषण आदि । संतुलित क्षेत्रीय औद्योगीकरण आय व सम्पत्ति में वृहत—स्तरीय विषमताओं को कम करता है, और क्षेत्रों के बीच राजनैतिक संघर्ष के खतरों को दूर करता है । यह अधिकतम दक्षता की प्राप्ति के लिये उपलब्ध साधनों के दक्षतापूर्ण उपयोग में सहायक होता है । क्षेत्रीय औद्योगिक विकास उद्योगों के फैलाव के साथ वृहत स्तर पर रोजगार के अवसर प्रदान करता है, जो फिर एक क्षेत्र की प्रति व्यक्ति आय व संपत्ति में वृद्धि करता है । यह क्षेत्रों के बीच आय व संपत्ति की असमानताओं को दूर करने के आधार (उत्तोलन दंड) की तरह कार्य करता है और, क्षेत्रों को एक साथ विकास करने के योग्य बनाता है ।

22.3 क्षेत्रीय विकास के लिये औद्योगीकरण :

औद्योगीकरण की आर्थिक गतिहीनता (स्थिरता) की अवस्था को दूर करने और असमान व असंत् लित अर्थव्यवस्था के विविधीकरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होती है । किसी भी क्षेत्र की संभावनाएँ व संपन्नता उन तीव्र आर्थिक परिवर्तनों पर निर्भर करती है, जिनके प्रयास औदयोगीकरण के द्वारा किये जाते है । ये अग्रगामी व द्रुतगामी सबद्धताएँ प्रयासों को आगे लाती है । औद्योगीकरण व्यापार, यातायात, खनन, ऊर्जा व अन्य आधारभूत संरचनात्मक स्विधाओं के विकास का मार्ग प्रशस्त करता है । तीव औद्योगीकरण के क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम (बेरोजगार श्रम) को लाभप्रद रोजगार प्रदान करता है । उद्योगों का श्रेष्ठ संगठन व प्राविधि का विकास कृषि क्षेत्र में अप्रत्यक्ष रूप से कृषि उपकरण, साधन व आधार भूत उपभोग वस्त्ओं का उत्पादन व पूर्ति करके उत्पादकता में वृद्धि करता है । दूसरे शब्दों में औदयोगिक विकास कृषि क्षेत्र में उत्पति की वृद्धि के लिये विज्ञान व प्राविधि के उपयोग को प्रेरित करता है । औदयोगिक प्रगति निर्यात ग्णवता की वस्तुओं का निर्माण करके विदेशी व्यापार की प्रकृति भी परिवर्तित करती है और इस प्रकार विदेशी विनिमय आय में भी वृद्धि होती है । औदयोगिकरण श्रम के विशिष्टीकरण की मांग करता है, और इस प्रकार यह कार्य व व्यापार के विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञों के दवारा श्रमिकों को विशेष प्रशिक्षण देकर योग्यताओं के स्धार व विकास में योगदान देता है । इससे अर्थव्यवस्था को वृहत स्तर पर वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन के योग्य बनाता है, जिससे राष्ट्रीय उत्पति व राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है ।

22.3.1 क्षेत्रीय औद्योगिक विकास के उद्देश्य :

औद्योगिक विकास का उद्देश्य क्षेत्रों के विशाल अनुपयुक्त व अर्थ—उपयुक्त साधनों का शोषण करना, लोगों की समाजार्थिक दशाओं में सुधार करना, और क्षेत्रीय निकास या राष्ट्रीय स्तर पर उत्पादन आधार का निर्माण करना है । एक विशेष उद्योग इन सभी उद्देश्यों के लिये क्षेत्र प्रदान कर सकता है, मगर क्षेत्रीय विकास में इसका योगदान भारी पूंजी विनियोग के अनुरूप नहीं भी हो सकता है । इन परिस्थितियों में औद्योगिक विकास का लाभ साधारण व्यक्ति तक नहीं पहुँचता और, क्षेत्रीय विकास पर इसका प्रभाव महत्वहीन हो जाता है । इसलिये सभी क्षेत्रों में एक साथ विनियोग में अनुकूलता कायम रखना आवश्यक हो जाता है ।

सभी क्षेत्रों में उद्योगों का विकास किस तरह किया जाये? क्या यह महत्वपूर्ण है कि प्रत्येक क्षेत्र में प्रत्येक प्रकार के उद्योग का विकास होना चाहिए? कुछ उद्योग ऐसे होते हैं जिनकी स्थापना तकनीकी दृष्टिकोण से पिरभाषित क्षेत्रों में होनी चाहिए जो सभी दृष्टिकोणों से इृष्टम हों / अक्सर ये उद्योग ऐसे होते हैं, जिन्हें उस समय तक आर्थिक आधार पर नहीं चलाया जा सकता जब तक कि विनियोग बहुत अधिक मात्रा में न हो । विकास हित में यह कभी–2 लाभप्रद हो सकता है कि, केवल विकसित क्षेत्रों में ही और तीव्र विकास हो, क्योंकि इन क्षेत्रों में विकास की तीव्र संभावनाएँ होती है । इन परिस्थितियों में हो सकता है कि, विकसित क्षेत्रों की विकास संभावनाओं को बनाये रखने के लिए अर्धविकसित क्षेत्र और भी निर्धन हो जायें।

भारत में औद्योगिकरण का उद्देश्य बाजार पर नियन्त्रण प्राप्त करना था । औद्योगीकरण की आयात विरोधी प्रवृत्ति में भी भारी उद्योगों का प्राथमिकता से विकास निहित था । यह माना गया था कि विकास के साथ यंत्र व मानवीय श्रम पर आधारित उद्योगों का भी समानान्तर विकास होना चाहिए ।

हालांकि विभिन्न क्षेत्रों में उद्योगों के विकास की प्रत्याशित दर प्राप्त करने में बहुत सी किठनाइयां है । अक्सर औद्योगिक प्रगित के लक्ष्यों व प्राप्तियों के बीच अन्तर हो सकते है । उद्योगों की क्षमता का अर्धउपयोग और उद्योगों में रुग्णता औद्योगिक विकास की उच्च दर में बाधक होती है । कुछ क्षेत्रों के कुछ उद्योगों में बड़ी मात्रा में विनियोग बड़े औद्योगिक व व्यापारिक गृहों(घरानों) को जन्म देता है, जो सर्वोच्च वर्गोमुखी उपयोग वस्तुओं का उत्पादन करते है, और आय की असमानताओं में वृद्धि करके क्षेत्रीय असमानताओं व असंतुलनों को बढ़ाती है । बड़े उद्योगों का विकास लघु स्तरीय उद्योगों व रोजगार अवसरों में कमी लाता है । इसलिये अब समस्या यह है कि, किस प्रकार क्षेत्रीय हितों व सामान्य विकास समस्याओं के बीच सामंजस्य बिठाया जाये, उार्थात किस प्रकार विकेन्द्रित क्षेत्रों को अधिक उन्नत विकास बिन्दुओं से जोड़ा जाये।

क्षेत्रीय विकास के लिये औद्योगीकरण विनियोग में बाधाओं (Botlenecks) को दूर करने और उद्योगों के स्थानीयकरण के लिये अनुकूल वातावरण प्रदान करने की आवश्यकता पर महत्व नहीं देता । साधनों के ईष्टतम उपयोग एवं औद्योगिक रूग्णता की समस्या को दूर करने के उद्देश्य के लिये क्षेत्रीय संतुलित विकास का नियोजन, क्षेत्रीय औद्योगिक विकास के लिये अति आवश्यक है। स्थायी राजकोषीय नीति व औद्योगिक रुग्णता को नियन्त्रित करने के प्रयास महत्वपुर्ण है । पिछड़े हुए क्षेत्रों के विकास को तीवता प्रदान करने के लिये तािक वे देश के अधिक विकसित क्षेत्रों के साथ हो सकें, राज्य स्तरीय ऐजेन्सियाँ औद्योगिक विकास व स्थानीयकरण नियंत्रण की ऐसी प्रणाली के लिये प्रेरणाएं दें सकती है, जो पिछड़े हुए क्षेत्रों में उपयुक्त प्रकार के उद्योगों की स्थापना कर सके । इसके अतिरिक्त आधारभूत संरचनात्मक सुविधाओं का प्रावधान भी संतुलित क्षेत्रीय विकास प्राप्त करने में सहायक हो सकता है । इस प्रकार आर्थिक विकास की प्रक्रिया व अवस्थाओं में प्रत्येक क्षेत्र को अपना ध्यान कृषि विकास से हटाकर औद्योगिक् विकास की ओर लगाना होगा।

22.4 क्षेत्रीय औद्योगिक विकास का स्वरूप:

औद्योगिक विकास का आधार, क्षेत्र के उपलब्ध खनिज साधनों व अन्य भौतिक, आर्थिक न सामाजिक पहलुओं से उपलब्ध होता है । विपिन व्यापक प्रकार के कच्चे माल, वन, कृषि व पशु संपदा, उत्पतियां प्राप्त करने की प्राकृतिक उपलब्धियां भी औद्योगिक विकास की संरचना को प्रभावित करती है । औदयोगिक संरचना के मुख्य पहलू ये है

- (1) संस्था का आकार वितरण।
- (2) प्रमुख समूहों के मूल्य वृद्धि अंश में परिवर्तन।
- (3) अर्न्तउद्योगीय सम्बन्ध ।
- (4) प्रमुख निर्माण क्षेत्र की रोजगार रचना में परिवर्तन ।
- (5) औदयोगिक संरचना में विविधीकरण ।

कुछ विशेष प्रकार की वस्तुओं की बढ़ती हु ई मांग भी बहुत से नवीन उद्योगों में जान डालती है जिनकी स्थापना कच्चे माल, अर्ध—निर्मित उसितयों या सहायक वस्तुओं के विचार को उचित ध्यान में रखकर नहीं की गयी थी। नये उद्योग केवल व्यापक श्रम विभाजन व विदेशी फर्मों के साथ घनिष्ट सम्बन्धों के आधार पर ही सफलता पूर्वक कार्य कर सकते है। दूसरे शब्दों में नये उद्यमकर्ता स्थापित स्वरूप के साथ ताल मेल बिठाने में कठिनाई अनुभव करते है और इसके साथ ही उन्होंने क्षेत्र में पुर्नउत्पादन की सामान्य प्रक्रिया के विकास पर शायद ही कोई प्रभाव डाला हो।

22.4.1 उद्योगों का क्षेत्रीयकरण:

अधिकांश औद्योगिक क्रियाएं औद्योगिक विकास वाले लघु क्षेत्रों (Pockets) तक ही सीमित रहती है । इन केन्द्रों पर बड़े औद्योगिक संस्थानों का आधिपत्य रहता है जो केन्द्र बिन्दु बना लेते है, और जिनके इर्द गिर्द बहुत सी बड़ी मध्यम व लघु सहायक इकाईयां विकसित हो जाती है । वास्तव में इन इकाईयों ने सहअस्तित्व के सिद्धान्त के आधार पर सम्बन्ध स्थापित कर लिये है, हालांकि इन उद्योगों की स्थापना कुछ वैज्ञानिक माप दण्डों के आधार पर होती है ।

भारतीय नियोजन प्रणाली में क्षेत्रीय विकास के सन्दर्भ में नये उद्योगों की स्थापना दो कारणों से हुई है अर्थात् :—

- (1) कुछ चुने हुए स्वरूप या विकास बिन्दु केन्द्र जिनमें अधिकतम विकास की सम्भावनाएं पायी जाती है, और
- (2) कुछ विकास क्षेत्र या केन्द्र बिन्दुओं के चयन करने की अनिवार्यता जो सम्बन्द्व क्षेत्र को संतुष्ट करने या कहीं अधिक राजनैतिक दबाव के कारण है ।

एक क्षेत्र में, उद्योगों की स्थापना विभिन्न मात्राओं में तकनीकी आर्थिक व अन्य संस्थागत तत्वों से प्रभावित होती है । महत्वपूर्ण तकनीकी तत्वों में भूमि व कच्चे माल जैसे वन आधारित . उत्पतियाँ, खिनज व विद्यमान उद्योगों से अर्थ — निर्मित उत्पतियाँ, यातायात सुविधाओं के सम्बन्ध में बाजार की निकटता, मानवीय साधनों की उपलब्ध मात्रा, ऊर्जा स्त्रोत व जलवायु आदि शामिल है । आधारभूत संरचना में कुछ महत्वपूर्ण आर्थिक तत्व और स्थानीय बाजार की प्रकृति, विदेशी बाजारों की संभावना, संरचनात्मक सुविधाओं की लागत, मजदूरी की दर, कर रचना, विद्यमान उद्योगों की रचना, आवास व जल पूर्ति की सुविधा आदि है । संस्थागत तत्वों में (1) नये उद्योगों की स्थापना के प्रति सरकारी नीति, (2) और व्यक्तिगत तत्व शामिल है । सभी सरकारें तीव्र औद्योगीकरण की नीति अपनानी है, और उद्योगपित एक क्षेत्र में उद्योग की स्थापना के लिये सरकार द्वारा उपलब्ध करायी गयी सुविधाओं का मूल्याँकन करते है । सभी तत्व मिलकर एक क्षेत्र में उद्योग की इष्टतम स्थापना के लिये स्थान सम्बन्धी आकार व रूप (Spatial configuration) प्रदान करते है । यद्यिप एक क्षेत्र में उद्योग की स्थापना का निर्णय उत्पादन के पैमाने व उसमें उपयोग में आने वाली विधि से स्वतंत्र नहीं होगा । इन सभी तत्वों के बीच अन्तर्सम्बन्ध की मात्रा उद्योगों के क्षेत्रीयकरण की मात्रा निर्धारित करती है ।

22.4.2 क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की व्यूहरचना :

किसी भी क्षेत्र में औद्योगिक विकास के लिये कई प्रकार के कारणों से एक उपयुक्त व्यूहरचना अपनाने की आवश्यकता होती है । औद्योगिक विकास में क्षेत्रीय विविधता विकासशील देशों की सामान्य विशेषता है । एक क्षेत्र का पिछड़ापन, सामान्यतया औद्योगिक विकल्प की दौड़ में देरी मै शुरूआत, सामाजिक आर्थिक ऊपरी व्यय (Overheads)का अभाव व प्रतिकूल स्थिति आदि है । यदि औद्योगिक विकास के स्तर को ऊपर उठाने के लिये विशेष प्रयास नहीं किये जाते तो, कुछ दीर्घ कालीन असाम्य शक्तियों के कार्यशील होने से उनका सापेक्ष पिछड़ापन और भी बढ़ता जायेगा ।

पिछड़े हुए क्षेत्रों में विकास प्रवृतक (Stimuli) तीव्र करने के लिये मुख्य व्यूहरचना केवल सामाजिक आर्थिक आधारभूत संरचना का निर्माण ही नहीं, जो तीव्र गित के विकास के लिये आवश्यक बाहा मितव्यियताओं कौ प्राप्त कराये, बल्कि सुस्त औद्योगिक क्षेत्र के आधार को तीव्र गित प्रदान करे, जो संचयी विकास के लिये आवश्यक विकास प्रवृति को उत्पन्न करेगा। इन तत्वों की तुलना में औद्योगिक क्षेत्र, औद्योगिक विकास में क्षेत्रीय असंतुलन को दूर करने में अधिक प्रभावशाली भूमिका निभा सकता है।

क्षेत्रों के औद्योगिक विकास की व्यूहरचना में निमितिखित को शामिल किया जा सकता है: (1) क्षेत्रीय औद्योगिक मिश्रण (Mix) व निर्यात—आधार में सुधार के लिये अर्थव्यवस्था के गहनीकरण व विविधीकरण के लिये व्यूहरचना । (2) औद्योगिक स्थापना के फैलाव के द्वारा शहरीकरण के विकेन्द्रीकरण के लिये व्यूहरचना । (3) ग्रामीण क्षेत्रों के लिए विकेन्द्रित आधारभूत संरचना व सामाजिक सेवाओं के लिये व्यूहरचना । क्योंकि, ग्रामीण क्षेत्रों के औद्योगिक विकास के निम्न आधार स्तर के कारण स्थानीय स्तरीय नियोजन के अधीन साथ—2 विस्तार व्यूहरचनाएँ भी अपनानी होंगी । लेकिन इन प्रयासों का प्रभाव धीमा होता है, क्योंकि बहुत सी बाधाओं को दूर करना पड़ता है, जैसे स्थानीय ऊर्जा संरचना, निर्भरता के लक्षणों का समावेश व नौकरशाही बाधाएँ आदि ।

क्षेत्रीय औद्योगिक व्यूहरचना को विभिन्न प्रकार से अपनाया जा सकता है । इसके लिए आवश्यक है कि—

- (1) क्षेत्रीय स्तर पर क्षेत्रीय विकास की व्यूहरचना जिसमें वृहत स्तरीय प्रीरियोजनाओ जैसे बांध, जलाशय, सड़को जल जाल आदि का निर्माण करना।
- (2) स्दूर क्षेत्रों में अर्न्त-उत्प्रवासी कार्यक्रमों के द्वारा अर्धविकसित साधनो, का विकास करना ।
- (3) स्थानीय सरकार को सब्सिडी देकर बजट आवंटन व्यूहरचना ।
- (4) कृषि का विकास एवं कृषि—आधारित व वन—आधारित उद्योगों, की' स्थापना और उन्हें बहु— आयामी क्रियाओं के रूप में स्थापित करना ।

क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की व्यूहरचनाओं के उद्देश्य के लिये बहु त प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष प्रयास है। इनमें शामिल है : (1) उद्योगों की स्थापना के लिये केन्द्रीय सहायता के वितरण के लिये एक अन्तर्क्षेत्रीय आवंटन नीति (2) औद्योगिक दृष्टिकोंण से पिछड़े हुए क्षेत्रों में विनियोग दिशा मोडने के लिये प्रेरणात्मक नीतियां,

- (3) समान समस्या क्षेत्रों जैसे जन जाति क्षेत्र, पहाड़ी क्षेत्र, अकाल व सूखे के संभाव्य क्षेत्र, मरु क्षेत्र व समस्या–मूलक क्षेत्र जैसे उत्तरी–पूर्वी क्षेत्रों के समाधान के लिये क्षेत्र/क्षेत्रीय विकास दृष्टिकोण पर आधारित कार्य (Action) नियोजन ।
- (4) क्षेत्र में उद्योगों के स्थानीय स्तर पर विकास के लिये एक समन्वित दृष्टिकोंण ।
- (5) निम्नतम आवश्यकताओं के प्रावधान के लिये एक आधारभूत व्यूहरचना, ताकि हानि की स्थिति में रहे क्षेत्र सामाजिक उपभोक्ता के रूप में अन्य क्षेत्रों के साथ समानता प्राप्त कर सकें।

"सामाजिक न्याय सिहत क्षेत्रों के औद्योगिक विकास के लिये, नियोजन के हाल के अनुभव विद्यमान दुषनिर्देशित विनियोग के दुष्परिणामों की और संकेत करते हैं । क्षेत्रीय संतुलन के नाम पर बड़े सार्वजनिक क्षेत्र की परियोजनाओं को जिन्हें प्रतिष्ठा के चिन्ह माना जाता है, उन्हें अन्य क्षेत्रों की तुलना में किसी एक क्षेत्र में स्थापना के लिये शिक्तशाली राजनैतिक दबाव डाला जाता ते । परिणामस्वरूप भारत में विकास की प्रारंभिक व्यूहरचना में उद्योगों के केन्द्रभिमुखता की प्रवृत्ति पायी गयी है ।

22.5 क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की संरचना :

19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारतीय उद्योग ग्रामीण हस्तकलाओं के रूप में थे, जो कृषि के साथ सामुदायिक घनिष्टता (सम्बन्धों) की प्रणाली से जुड़े थे । इसी प्रकार शहरों विशेषकर समुद्री बंदरगाहों में हस्तकला, घरेलू व लघु-हस्तकृत संस्थान भी कृषि से जुड़े हुए थे। इसके अतिरिक्त लघु-स्तरीय औद्योगिक संरचना भी आर्थिक व तकनीकी दोनों दृष्टिकोणों से अति दुर्बल थी । इसका अति निम्न स्तरीय उत्पादन था व इसमें निम्न प्रकार की पूँजी की प्रधानता थी ।

भारत में नियोजन के युग के प्रारम्भ मैं औद्योगीकरण का स्वरूप लघु—स्तरीय उद्योगों, हस्तकलाओं, कपड़े की बुनाई के क्षेत्र में था, और वृहतस्तरीय उद्योग जूट व वस्त्र उत्पादन के क्षेत्र में थे। खनिज उद्योग बहुत पिछड़ा हुआ था, जिसमें अति निम्न प्रकार का विकास हुआ था। निर्मित उद्योग में हल्के उद्योगों की प्रधानता की विशेषकर उनकी उन शाखाओं में जो कृषि आधारित कच्चे माल की उन्नति प्रक्रिया (Processing) में लगे हुए थे। हालांकि इंजीनियरिग वस्तु उत्पादन मैं लगे उद्योग राजकीय उपक्रमों के लिये विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन के योग्य थे जैसे, रेलवे व खुले बाजार, मगर ऊर्जा उत्पादन में देश की आवश्यकताओं से काफी पीछे थे।

22.5.1 क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की दिशा:

आर्थिक विकास की प्रक्रिया में सिक्रय सरकारी हस्तक्षेप ने नियोजन प्रक्रिया में गहरी जड़े जमा ली है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में सरकार ने प्रमुख उद्योगों के निर्माण व संचालन में काफी अनुभव प्राप्त कर लिया है, और यह परिवर्तन सन 1956 की औद्योगिक नीति प्रस्ताव में प्रतिबिंबित हुआ था। सामाजिक व आर्थिक ढांचे के निम्न स्तर पर उत्पादन व तकनीकी के आधुनिक साधनों को लागू करनें की प्रक्रिया ने उद्योगों की असजातीय (विषय) संरचना को दूर करने में सहायता की हैं।

सन 1951–65 के दौरान हल्के उद्योग, निर्मित उद्योगों की तुलना में निम्न दर पर विकित हो रहे थे। एकाधिकार जांच आयोग (1965) रिपोर्ट बतलाती है कि, निजी क्षेत्र के उच्चतम 75 व्यापारिक समूह के एक वर्ग के द्वारा औद्योगिक इकाइयों कीं भोगोलिक स्थापना स्थिति निर्धारित की गयी। उनमें से अधिकांश महाराष्ट्र, पश्चिमी बंगाल व तिमलनाडु राज्यों मैं स्थापित की गयी थी।

महालनोविस व्यूहरचना को स्वीकार किये जाने के बाद आधारभूत व पूंजीगत वस्तु उद्योगों जैसे लोह व इस्पात, सीमेन्ट, कोयला, इजीनीयरिग आदि का विस्तार अपेक्षाकृत तीव्र गित से हुआ था । औद्योगिक संरचना जो कुछ उद्योगों व कुछ क्षेत्रों तक ही सीमित थी, परम्परागत उद्योगों जैसे जुट व सूती वस्त्र से पूंजीगत वस्तु उद्योगों में परिवर्तित हो गयी ।

22.5.2 उद्योगों की क्षेत्रीय संरचना में परिवर्तन :

सरकार के सकारात्मक दृष्टिकोण के बावजूद औद्योगिक विकास में क्षेत्रीय असमानताएँ व असंतुलन निरन्तर जारी रहा । विभिन्न क्षेत्रों के औद्योगिक विकास के असंतुलनों को दूर करने के लिये सरकार ने कई कदम उठाये । प्रथम पंच वर्षीय योजना के दौरान सार्वजनिक क्षेत्र के संगठनों को प्रोत्साहन दिया गया और, सन 1948 व 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव ने उन उद्योगों को निजी क्षेत्र से अलग किया और, राष्ट्रीय महत्व के उद्योगों को सरकार के नियंत्रण में लाया गया। इसके परिणाम—स्वरूप बहुत से आधारभूत व भारी उद्योगों को बिहार, महाराष्ट्र व तमिलनाइ जेंसे क्षेत्रों में स्थापित किया गया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में महालनोवीस योजना व्यूहरचना अपनाते हुए विभिन्न क्षेत्रों के औद्योगिक विकास के लिए ऊर्जा व जल पूर्ति प्रदान कर, नये उद्योगों की स्थापना के अलावा, ग्रामीण व लघु उद्योगों की स्थापना करके कई प्रयास आरम्भ किये । औद्योगिक विकास का विविधीकरण हुआ और छोटे कस्बों के निकट औद्योगिक बस्तियाँ स्थापित की गयी। इससे क्षेत्रीय उद्योगों की संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया । हालांकि औद्योगिक बस्तियों व संबंद्ध संयुक्त क्षेत्रों से उद्योगों के क्षेत्रीय ढांचे में परिवर्तन का आवश्यक उद्देश्य प्राप्त नहीं हों सका ।

विभिन्न राज्यों के कुछ पिछड़े हुए क्षेंत्रों में तृतीय पंचवर्षीय योजना काल में उद्योगों की स्थापना के लियें विशेष ध्यान दिया गया था। कम विकसित क्षेत्रों में ऊर्जा परियोजनाओं के विस्तार व वृहत औद्योगिक परियोजनाओं की स्थापना के लिये गहन प्रयास किये गये थे। हालांकि योजना के कार्यक्रम औद्योगिक विकास में क्षेत्रीय असमानताए कम करने में असफल रहे, मगर उन्न्तशील व पिछड़े हुए राज्यों के बीच अन्तर समान आकार का बना रहा। नये उद्योग विशेषकर लघु उद्योगों को प्रारंभ करने के कारण पंजाब उच्चतम व बिहार निम्नतम स्थान पर रहा।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना काल में भी पिछड़े हुए क्षेत्रों में औद्योगिक संरचना में सुधार के प्रयास जारी रखे गये थे । पिछड़े हुए क्षेत्रों में केन्द्रीय परियोजनाओं की स्थापना पर महत्व दिया गया और इन क्षेत्रों में लघु व मध्यम उद्योगों को रियायतें देने के लिये वितीय संरथाओं की कार्य प्रणाली व नीतियों में भी समायोजन किया गया । केन्द्रीय व राज्य सरकारों ने उप-शहरी व अर्थ शहरी क्षेत्रों में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास के लिये औद्यौगिक बस्तियों की स्थापना की और इस प्रकार औद्योगिक विकास का क्षेत्रीय संरचना को बड़े कस्बों से गांवों की और विविधीकरण करने का प्रयास किया गया ।

पांचवी पंचवर्षीय योजना काल में, औद्योगिक विकास की क्षेत्रीय संरचना को परिवर्तित करने की नीतियाँ व कार्यक्रम जारी रखें गये । एक भिन्न दृष्टिकोण से पिछड़े हुए क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना के लिये रियायतों के विशेष पैकेज दिये गये । पिछड़े हुए क्षेत्रों में औद्योगिक इकाइयों को कर मुक्तता व अन्य स्थानीय चुंगी व करों में भी रियायतें दी गयी थी। औद्योगिक विकास की क्षेत्रीय संरचना को परिवर्तित करने के लिये क्षेत्रीय विकास दृष्टिकोण पर अधिक महत्व दिया गया। इसमें साधन आधारित या समरूपता आधारित विकास दृष्टिकोण,

लक्ष्य समूह दृष्टिकोण, प्रेरणा दृष्टिकोण व व्यापक सर्वागीण क्षेत्र दृष्टिकोण निहित है । परिणाम—स्वरूप लघु व ग्रामीण उद्योगों को प्रेरणा प्राप्त हुई और ग्रामीण क्षेत्रों में परम्परागत कृषि ढांचे को औद्योगिक क्षेत्रों में रूपान्तरित करके आय जनित रोजगार के अवसर प्रदान किये गये । बीस सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत उठाये गये कदम जैसे, ऊर्जा—जनन की वृद्धि व हेन्डलूम क्षेत्र के विकास के लिये कार्यक्रमों ने भी क्षेत्रीय औद्योगीकरण के ढांचें के परिवर्तन में सहयोग दिया ।

छठी पंच-वर्षीय योजना काल में उद्योगों की क्षेत्रीय संरचना को रूपान्तरित करने के लिये आई. आर.डी.पी. व एन.आर.ई.पी आदि कार्यक्रम भी क्रियान्वित किये गये । इन कार्यक्रमों की ग्रामीण क्षेत्रों में काफी रोजगार संभावनाएं थी, और उन्होंने क्षेत्रीय औद्योगीकरण की संरचना व आयामों मे परिवर्तन में सहयोग दिया । क्षेत्रों के कमजोर साधन—आधार को सुदृढ़ बनाया गया, और निजी उद्योगपतियों से सम्बन्धित केन्द्रीय व राज्य सरकारों की निवेश व प्रेरणा योजनाओं को परिवर्तन किया गया ।

अगली पंचवर्षीय योजना काल में औद्योगिक दृष्टिकोण से पिछड़े हुए क्षेत्रों में विकास को प्रोत्साहन देने के लिये अधिक यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया गया । सन 1990 की औद्योगिक नीति के अन्तर्गत लघु स्तरीय व कृषि आधारित उद्योगों के प्रोत्साहन के लिए कई उपाय लागू किये गये जैसे, रोजगार वृद्धि व उद्योगों के फैलाव के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये औद्योगिक विकास को परिवर्तित करने की नीति, देश के ग्रामीण व पिछड़े हुए क्षेत्रों में पूर्णतया लघु उदयोग क्षेत्र के लिये केन्द्रीय सब्सिडी की योजना आदि ।

नवीन आर्थिक नीति से प्रेरित वर्तमान औद्योगिक नीति क्षेत्रीय औद्योगिकरण के लाभ के लिये नवीनीकृत आदि कार्यों का प्रतिनिधित्व करती है । सातवी व आठवीं पंचवर्षीय योजनाओं में लघु स्तरीय बहुत छोटे व घरेलू उद्योगों के विकास पर दिये गये महत्व से औद्योगिक विकास के लिये वातावरण बना हैं । बहुत से क्षेत्रों में एक व्यापक आधारित आधारभूत संरचना का निर्माण हुआ है । आधारभूत उद्योगों को प्रोत्साहित करते हुए लघुस्तरीय इकाइयों पर विनियोग की उच्चतम सीमा घटा दी गयी हैं । इस उदार कदम ने कई क्षेत्रों में लघु स्तरीय व ग्रामीण क्षेत्रों के औद्योगिक आधार के विस्तार में सहायता की है । दूसरी ओर भारतीय उद्योगों में विदेशी विनियोग के अंश में वृद्धि नें, मुख्य शहरों व देश के उन्नतशील क्षेत्रों के निकट, कृषि आधारित व उपभोग वस्तु उद्योगों की स्थापना के लिये द्वार खोल दिये है । साथ ही निजी निवेश कर्ताओं को दिये गये प्रोत्साहन ने भी क्षेत्रीय औद्योगिक विकास में सहायता की है ।

22.6 सारांश:

यह अच्छी तरह स्वीकार किया जाता है कि, भारत में सभी क्षेत्र औद्योगिक दृष्टिकोण से समान रूप में विकसित नहीं हुए है । विकसित क्षेत्रों में भी पिछड़ेपन के कुछ क्षेत्र है और कुछ क्षेत्र पूर्णतया पिछड़े हुए है । क्षेत्रों की संरचना में मौलिक परिवर्तनों का प्रयास औद्योगीकरण के द्वारा किया जाता है । औद्योगिक विकास का उद्देश्य क्षेत्रों के विशाल अप्रयुक्त व अदोहित साधनों का दोहन कर क्षेत्र के लौगों की समाजार्थिक दशाओं में सुधार करना है।

औद्यौगिक विकास की क्षेत्रीय संरचना को रूपान्ति त करने में कुछ समस्याएँ है । कुछ ऐसे उद्योग है जिनकी स्थापना तकनीकी पिरभाषित क्षेत्रों में की जाती है । क्षेत्रीय औद्योगिक विकास नियोजन का उद्देश्य साधनों का इष्टतम उपयोग एवं औद्योगिक रुग्णता की समस्या को दूर करना है । क्षेत्रीय औद्योगीकरण की संरचना का निर्धारण भौतिक, आर्थिक व सामाजिक पहलुओं के सम्बन्ध में उपलब्ध साधना से होता है । क्षेत्रीय औद्योगिक संरचना का निर्धारण औद्योगिक इकाईयों के आकार—वितरण मूल्य वृद्धि (Value—added) अंशों में परिवर्तन व रोजगार अवसरों की रचना से होता है । किसी भी स्थान पर उद्योगों की स्थापना कुछ चुने हुए विकास बिन्दुओं और विकास बिन्दु या क्षेत्र के चयन की अनिवार्यताओं से होता है । औद्योगिक विकास में क्षेत्रीय विविधता विकासशील देशों की सामान्य विशेषता है ।

क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की व्यूहरचना का उद्देश्य औद्योगिक स्थानीयता व संरचनात्मक (Infrastructural— आधार ढांचागत) सुविधाओं का गहनीकरण व फैलाव होता है। इसके लिये स्थानीय स्तर पर उद्योगों कें विकास के लिये एक समन्वित दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। सन 1951 के पश्चात औद्योगिक विकास की क्षेत्रीय संरचना में परिवर्तन आया है। औद्योगिक संरचना जो कुछ क्षेत्रों व कुछ राज्यों क ही सीमित थी, परम्परागत जूट व सूती वस्त्र उद्योंगों से पूंजीगत उद्योगों में परिवर्तित हुई है।

केन्द्रीय कार्यक्रमों व परियोजनाओं को पिछड़े हुए क्षेत्रों में स्थापित करने पर जोर दिया गया, और बहुत से क्षेत्रों में औद्योगिक बस्तियों की स्थापना की गयी थी । क्षेत्रीय औद्योगिक विकास को आइ.आर.डी.पी., एन.आर.ई.पी. जैसै कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से आवश्यक शक्ति प्राप्त हुई है । औद्योगिक नीति व निर्यात आयात सहित आर्थिक नीति ने भारत में क्षेत्रीय औद्योगीकरण की संरचना के परिवर्तन को स्विधाजनक बनाया है ।

22.7 निबन्धात्मक प्रश्न

- (1) "एक देश के आर्थिक विकास के लिये क्षेत्रों का तीव्र औद्योगीकरण आवश्यक है ।" परीक्षण कीजिये ।
- (2) भारत में क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की संरचना की व्याख्या कीजिये।
- (3) सरकारों के द्वारा औद्योगिक विकास की क्षेत्रीय संरचना में परिवर्नन के लिए किये गये प्रयासों का विवेचन कीजिये।
- (4) औद्योगीकरण की क्षेत्रीय संरचना में परिवर्तन के लिये अपनायी गयी व्यूहरचना की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिये ।
- (5) क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की व्यूहरचना के क्रियान्वयन में किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है ।

22.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

 G.k Shirokov, Industrialisation in India, Peoples Publishing house New Delhi 1973.

- 2. Rane Pratap , Growth and Regional Pattern of Industrial Computers. Concept Publishing Co. New Delhi, 1993.
- 3. R.R Barthwal, Indian Economic Structure, Wiley Eastern India Ltd., New Delhi, 1984.
- 4. Kulwinder Kaur, Structure of Industries in India, Deep and Deep Publication, New , 1982.
- 5. Kuznets. S. Economic Growth and Structure, Selected Essays, Nortons & Co. Inc. Massachureter,
- 6. Majumdar, A. Structural Transformation and Economic Development. BISRER, Bombay, 1979.
- 7. Vakil C.N. Edt. Industrial Development of India. Policy & Problems, Orient Longman New Delhi. 1979.
- 8. Gersherenkran A; Economic Backwardness in Historial Perspective, Harivard University, 1962.
- Planning Commission, Govt. of India, Second Five Year Plan, 1956.
 New Delhi.
- 10. Mr. A Bhattacharya, Evaluation of Resource Political of a Less Developed Regions in India Gokhale Institute, Pune, 1969.

इकाई 23

सामाजिक आर्थिक आधार भूत ढाँचे के विकास मे क्षेत्रीय असंतुलन

इकाई की रूपरेखा

- 23.0 उद्देश्य
- 23.1 प्रस्तावना
- 23.2 आधार ढाँचा
 - 23.2.1 अर्थ
 - 23.2.2 भू मिका
 - 23.2.3 माप
- 23.3 क्षेत्रीय असंत्लन
 - 23.3.1 आर्थिक आधार ढाँचा
 - 23.3.2 सामाजिक आधार ढाँचा
 - 23.3.3 मिलाजुला (Composite) सूचकांक
- 23.4 स्वयं के दवारा सीखने के अभ्यास प्रश्न
- 23.5 सारांश
- 23.6 शब्दावली
- 23.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 23.8 स्वय के द्वारा सीखने के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

23.0 उद्देश्य

आधार ढाँचे का अर्थ समझने के लिये सामाजिक व आर्थिक आधार ढांचे के बीच अन्तर करना, विकास में आधार ढांचे की भूमिका को बतलाना, आधार ढांचे के विकास में विभिन्न क्षेत्रों के बीच विषमता की मात्रा का ज्ञान करना, और समय के साथ अंतर्क्षेत्रीय विषमताओं में परिवर्तन के स्वरूप का परीक्षण करना है।

23.1 प्रस्तावना

क्योंकि यहां क्षेंत्रों के बारे में वर्णन है, इसिलये पहले यह आवश्यक है। कि विचार किये जाने वाले क्षेत्र की परिभाषा की जाये । चूंकि क्षण्ड IV केवल भारतीय अर्थव्यवस्था का वर्णन करता है, इसिलये हमें अपना ध्यान केवल उप—राष्ट्रीय क्षेत्रों तक ही सीमित रखना है । इस स्तर पर कोई भी सजातीय, सहमित पूर्ण, और राजनैतिक प्रशासनिक क्षेत्रों पर विचार कर सकते है । सजातीयता व सहमित की अवधारणा क्षेत्रीय स्तर पर अर्थपूर्ण विश्लेषण सुविधाजनक बनाती है, लेकिन सजातीय व सहमित पूर्ण क्षेत्रों के उपयोग करने में सु—लेख्यात्मक प्रमाणित सैद्धान्तिक कठिनाइयाँ है । दूसरी और यद्यपि राजनैतिक—प्रशासकीय क्षेत्र अक्सर तथ्य

एकत्रीकरण व उपलब्धता के रूप मैं सजातीय होते है, मगर न तो वे अन्य अधिकांश दृष्टिकोण से सजातीय होते और न ही कार्यात्मक दृष्टिकोण सें सहमतिपूर्ण होते है, और इसीलिये विश्लेषण में समस्याएँ उत्पन्न करते है । इसिलये यह कोई आश्चर्य नहीं हैं कि इसार्द (Isard) सिहत बहुत से विद्वानों के अनुसार क्षेत्रीय विश्लेषण के सभी उद्देश्यों के लिये कोई आदर्श क्षेत्र नहीं होते है ।²

भारत के सम्बन्ध में यह भी कठिनाई हें कि अन्त-समय सम्बन्धी तुलनाएँ इस तथ्य से नष्ट (दूषित) हो जानी है कि इन राजनैतिक-प्रशासकीय क्षेत्रों का क्षेत्रफल व संख्या कभी-कभी समय के साथ परिवर्तित हो जानी हैं । इसके साथ ही राजनैतिक-प्रशासकीय स्तर पर भी, यह प्रश्न उठना हैं कि हमें क्या राज्यों या उप-राज्य इकाइयां जैसे जिला या इससे भी निम्न स्तर की इकाइयों को क्षेत्रों के रूप में लेना चाहिए । भारतीय राज्य जिन्हें भाषायी आधार पर प्नगर्ठन और बाद में सत्तर के दशक में किये गये परिवर्तनों मे भाषा व संस्कृति के रूप मैं काफी सजातीय बनाया गया है, और जो भारतीय संघ की घटक इकाइयाँ है, उन्हें ही इस अध्ययन के उद्देश्य से क्षेत्र मान लिया गया है । यहां इस अध्ययन से निष्कर्ष निकालते समय यह स्मरण रखना चाहिए कि उत्तर प्रवेश, बिहार व उड़ीसा जेंसे कुछ राज्यों की भीतरी विषमताएँ कहीं अधिक निर्णय रूप में अन्तर्राज्यीय विषमताएँ है । अपने वर्तमान रूप में भारतीय राज्य मुख्यतया पचासवें के दशक में भाषायी आधार पर राज्यों के पूर्नगठन के परिणामस्वरूप आये । तब से लेकर सतरवें के दशक के आरम्भिक वर्षो तक इनकी सीमाओं में कई परिवर्तन किये गये थे । इससे भी आगे भारत में क्षेत्रीय नियोजन के आलोचनात्मक र्स्वेकाण स्पष्टतया इस तथ्य की ओर सकेत करते है कि, विकास में क्षेत्रीय असंतुलनों को दूर करने के व्यवस्थित प्रयास सत्तरवें के दशक में किये जाने श्रूरू हूए थे ।³ इन सबके विचार के अन्तर्गत इस अध्ययन में क्षेत्रीय असंतुलनों का विश्लेषण सत्तरवें दशक के बाद की अवधि तक ही सीमित है।

23.3 आधार ढाँचा (Infrastructure)

23.2.1 अर्थ:

आर्थिक साहित्य में हर्षमेन (Hirschman) सहित बहुत से अर्थशास्त्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं जैसे कृषि, विनिर्माण आदि क्रियाओं व सामाजिक ऊपरी व्यय (Overhead) पूंजी के बीच अन्तर किया जाता है, जिसे आर्थिक आधार ढांचा के रूप में भी व्यक्त किया जाता है। जैसा कि नामकरण से स्पष्ट है आर्थिक आधार ढांचा उन सेवाओं की ओर संकेत करता है जो अर्थव्यवस्था के शेष भागों में उत्पादन संभव (योग्य) बनानी हैं। ये उस अर्थ में "आधार", "ऊपरी व्यय" या "आधारभूत" है कि इन आधार ढांचागत सुविधाओं की आवश्यकता सभी वस्तुओं के उत्पादन में होती है। कड़े शब्दों में हम आधार ढांचागत पूंजी व उन सेवाओं के बीच अन्तर कर सकते है जो इनसे प्राप्त होती है। आधार ढांचे को व्यक्त करते समय कुछ लेखक उन सेवाओं की ओर संकेत करते है जो इनसे प्राप्त होती है, जबिक कुछ अन्य इन्हें इनके प्रावधान में विनियोजित पूँजी के अर्थ में लेते है। वै हालांकि यह अन्तर

बहुत कम किया जाता है और आधार ढांचे के दोनों पहलुओं का परस्पर रूप में उपयोग किया जाता है । अक्सर संदर्भ पूंजी या उन सुविधाओं की ओर— होता है जो आधार ढांचागत सेवाओं के प्रावधान के लिये उपलब्ध होती है ।

सभी समान्यतया आधार ढांचे की आधारभूत विशेषताओं पर सहमत है। प्रवेश वे वाद्य बचतों की स्त्रोत है और इस प्रकार वे अन्य उद्योगों में उउत्पादन की लागतों में कमी लाने में अग्रणी रहती है। द्वितीय, वे अक्सर नवीन विचारों में सहायक होती है, जिससे उत्पादन के साधनों के नये संयोग बनते है। तृतीय, इस बात पर सामान्यतया सहमित है कि जो इकाइयाँ आधार ढांचागत सेवाएं उपलब्ध कराती है, वह वृहत आधार की उद्देश्य या दीर्घ निर्माण काल की होती है। चतुर्थ, यह भी स्वीकार जाता है कि ये सेवाएं इस प्रकार की है कि इन्हें राष्ट्रीय सीमापार से प्राप्त नहीं किया जा सकता। इन सभी बातों के परिणामस्वरूप, एड्म स्मिथ के समय से ही यह विचार है कि आधार ढांचे को प्रदान करने का प्राथमिक उत्तरदायित्व सरकार पर है।

इस प्रकर संकुचित अर्थ में आधार ढांचे के अन्तर्गत यातायात, संदेशवाहन, ऊर्जा, सिंचाई व बैंकिंग सुविधाओं को लिया जा सकता है। व्यापक अर्थ में आधार ढांचे में शिक्षा, स्वास्थ्य, नालियां आदि भी शमिल होंगी। आर्थिक क्रियाओं व शेष क्षेत्रों पर इनका शीघ्र प्रभाव इतना दृश्य नहीं होता, इसलिये उन्हें साधारणतया सामाजिक आधार ढांचे के रूप में लिया जाता है। आधार ढांचे के किसी भी अर्थपूर्ण विवरण में आर्थिक व सामाजिक आधार ढांचे दोनों को शामिल करना होगा इसके अलावा क्षेत्रोत्तर व समष्टि दृष्टिकोण के अनुसार आर्थिक व सामाजिक आधार ढांचे के बीच अन्तर करने के साथ—साथ एक व्यष्टिगत दृष्टिकोण के अन्तर्गत एक विशेष आर्थिक क्षेत्रों तक सीमित रहा जा सकता है, और कृषिगत आधार ढांचा, यातायात आधार ढांचा व शिक्षण आधार ढांचा पर विचार किया जा सकता है।

23.2.2 भू मिका:

यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त प्रमाण है कि आर्थिक विकास और आधार ढांचागत विकास साथ-साथ चलते है। तालिका 23.1 में दिये गये तथ्य इसके लिये प्रयाप्त प्रमाण है।

- 1. अन्य के साथ विभिन्न प्रकार के क्षेत्रों पर एक विस्तृत वर्णन के लिये देखिये Mahesh Chand and Puri (1983)
- 2. इस प्रकार के निष्कर्ष के लिए देखिये: Isard, W & T. Victoring (1959), Industrics Complex and Regional Development, John Viley, New York.
- 3. अन्य के अलावा देखिये: Nair (1982), Regional Experience in a Developing Economy, Wiley–Eastern, Delhi.
- 4. यद्यपि Penguin Economic Dictonary (1977) सुविधाओं के पहलू पर जोर देती है, मगर बटर वर्थ (1977) की Dictonery of Economic Terms आधार ढांचे को इनके द्वारा प्रदान की जाने वाली सुविधाओं के रूप मे देखती है।

तालिका 23.1 : आधार ढांचा एवं आर्थिक विकास

| क्रमांक | मद | मूल्य निम्न | मूल्य उच्च मूल्य |
|---------|--|-----------------|------------------|
| | | आय के देशों में | उच्च में |
| 1. | जन्म पर जीवन की सम्भावना (वर्ष) | 65 | 76 |
| 2. | प्रति व्यक्ति ऊर्जा का उपभोग (कि.वा.) | 330 | 4867 |
| 3. | माध्यमिक शिक्षा में भरती होने वाले आयु | 37 | 93 |
| | वर्ग का प्रतिशत | | |
| 4. | प्रतिशत शहरी जनसंख्या | 36 | 77 |

स्रोत : World Bank(1991), World Development Report, 1991. The Challenges of Development, Oxford University Press, Washington.

अर्थशास्त्री इस बात पर एकमत है कि दीर्घकाल में प्रत्यक्ष आर्थिक क्रियाओं के स्तर के संचालन की सहायता के लिये प्रयाप्त आधार ढांचा उपलब्ध होना चाहिए । यहां विचार इस बात को निश्चित करना है कि आधार ढांचे की अन्पलब्धि के कारण न तो कोई बाधाएँ (Bottlenecks) है और न ही आधार ढांचे में अप्रयुक्त क्षमता है । अल्पकाल में यदि संसाधन न्यून है तो प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं व सामाजिक उपरि व्यय पूंजी में विनियोग के बीच चयन की समस्या उत्पन्न हो सकती है । इस प्रकार की स्थिति में कोई सर्वसम्मत राय नहीं है कि सामाजिक आधार ढांचे (ऊपरी व्यय) पर विनियोग, प्रत्यक्ष आर्थिक क्रियाओं के पूर्व हो या बाद में हो ।⁵ इस सम्बन्ध में अन्य के साथ हर्षमेन इस मत के है कि यदि हम पहले प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं में विनियोग करके जानबुझकर असंतुलित विकास लाते है, तो अपर्याप्त आधार ढांचे के कारण सरकार पर पर्याप्त दबाव होगा कि वह पर्याप्त आधार ढांचे की व्यवस्था करें । दसरी और नर्वस आधार ढांचे के दवारा जानबूझकर असंत्लन पैदा करने की विनियोग नीति को पसंद करते है । उनका विचार है कि इस प्रकार की परिस्थितियों में आधार ढांचे की सरल उपलब्धि के कारण प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं की स्थापना के लिये पर्याप्त प्रोत्साहन (प्रलोभन) रहेगा। हर्षमेन जो आधार ढांचे को आर्थिक विकास की दासी (साथी) मानते है और नर्वस जो आधार ढांचे को आर्थिक विकास का मुख्य चालक मानते है, दोनों ही अल्पकाल में जानबूझ कर असंतुलन लाने के समर्थक है, ताकि दीर्धकाल में आधार ढांचे व प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं के बीच संतुलित विकास किया जा सके ।

23.2.3 माप (Measurement) :

आधार ढांचे के कई अंग (भाग) होते है, और ढांचागत विकास का मूल्यांकन करने के लिये इसके प्रत्येक भाग का परीक्षण करना आवश्यक होता है । आधार ढांचे का काफी वर्णनात्मक विचार इसके प्रत्येक भाग के विकास के विस्तृत दृश्य से प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन इस सम्बन्ध से सांख्यिकी की भूल-भूलैया से भ्रम होने की संभावना है, क्योंकि विभिन्न अंग समय के साथ एक ही गित या एक ही दिशा में परिवर्तित नहीं होते । विश्लेषणात्मक

उद्देश्य से इससे भी अधिक अक्सर आवश्यकता सर्वांगीण आधार ढांचे के विचार का एक स्पष्ट एवं सारांशीय दृश्य (विवरण) आवश्यक होता है ।

समस्या और भी विकट (विषय) इस तथ्य के कारण हो जाती है, क्योंकि आधार ढांचे में निहित किसी भी क्षेत्र के विकास स्तर के नापने के लिये सर्वसम्मत विचार नहीं है । इसका उदाहरण उचित रूप में दो क्षेत्रों—यातायात व शिक्षा, के परीक्षण से दिया जा सकता है । यातायात के क्षेत्र में प्रश्न यह है कि यातायात के सभी रूपों में से किस पर विचार किया जाये? यदि हम केवल सड़क यातायात तक ही सीमित रहने का निर्णय लेते है तो भी कई प्रश्न फिर भी बने रहते है । प्रथम, क्या हम सभी सड़कों या केवल धरातलीय (सतही) सड़कों पर ही विचार करें, इससे भी आगे, क्या हम प्रति व्यक्ति सड़क लम्बाई या प्रति 100 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र की सड़क लम्बाई पर विचार करें ।

इसी प्रकार यह भी विवादास्पद है, कि क्या हम शिक्षा के विकास के विश्लेषण में केवल साक्षरता पर ही विचार करें? यदि हमें शिक्षा के अन्य पहलुओं पर भी विचार करना है तो क्या हम भरती एवं स्कूल छोड़ने वाले विद्यार्थियों की दरों पर भी विचार करें? इससे भी अधिक केवल विद्यार्थियों की संख्या पर विचार करने के अलावा, क्या हमें अध्यापक— विद्यार्थी अनुपात, ब्लेक बोर्ड आदि आधारभूत सुविधाओं के स्कूलों की संख्या आदि के रूप में, शिक्षा की गुणवत्ता का भी परीक्षण नहीं करना चाहिए।

आधार ढांचे की स्पष्ट स्थिति प्राप्त करने के लिये इन समस्याओं के समाधान का एक सामान्यतया स्वीकार्य उपाय यह है कि, आधार ढांचागत विकास का एक संयुक्त (मिलाजुला) सूचकांक तैयार किया जाये। ऐसा करने में आधारभूत प्रश्न यह है कि इसके प्रत्येक भाग के विकास का माप करने के लिये उपयोग में लानेवाले विभिन्न अवयवों को किस प्रकार सापेक्ष महत्व दिया जाये। इसी प्रकार की एक समस्या प्रत्येक अंग (भाग) के सूचकों को आधार ढांचागत के सामान्य सूचकांक में मिलान की है। इस प्रकार के सूचकांक तैयार करने के कई पूर्व प्रयास भी किये जा चुके है। किम समय अविध के लिये है।

ऐसे कुछ ही प्रयास है जो कई राज्यों के कई वर्षों के लिये किये गये है। इनमें से सबसे अधिक पूर्णता का प्रयासों में एक Centre for Monitoring Indian Economy—CMIE के द्वारा, और दूसरा पूनम कपूर के द्वारा है। इनमें से पहला 16 सूचकों पर विचार करता है, मगर यह आत्म चेतना सम्बन्धी (Subjective) भारो का उपयोग करता है। दूसरा 23 सूचकों पर विचार करता है और प्रधान अंगीय विश्लेषण (Principal Component) का उपयोग करता है, जो विभिन्न सूचकों को सापेक्षिक महत्व देने का और आधार ढांचागत विकास के सूचकांकों को बनाने की साकार (पदांश विषयक) विधि है। हम भारत में आधार ढांचागत अन्तर्राज्यीय असमानताओं के विश्लेषण के लिये पूनम कपूर के द्वारा तैयार किये गये आधार ढांचागत विकास के मिले जुले सूचकों को प्रस्तुत करेंगे।

5. इसके विस्तृत वर्णन के लिये देखिये हर्षमेन : Hirschman

6. पूर्व के प्रयासो के लिये देखिये, महेश चन्द व पूरी ओर पूनम कपूर (1992)

23.3 क्षेत्रीय असमानताएँ

23.3.1 आर्थिक आधार ढांचा :

आर्थिक आधार ढांचे के सूचकांक को तैयार करने में जिन अवयवों पर विचार किया जाता है वे है:

- 1. विदय्त शक्ति का प्रति व्यक्ति उपभोग ।
- 2. प्रति लाख जनसंख्या पर शक्ति चालित किये गये पम्प-सेट्स की संख्या ।
- 3. विद्युतीकृत गांवों का प्रतिशत ।
- 4. प्रति लाख जनसंख्या पर जनित ऊर्जा शक्ति ।
- 5. कुल सकल फसल क्षेत्र की तुलना में शुद्ध सिंचित क्षेत्र का प्रतिशत ।
- 6. प्रति 100 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में किलोमीटर सड़क की लम्बाई ।
- 7. क्षेत्र के प्रति 100 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में धरातलीय सड्कों की लम्बाई ।
- 8. प्रति लाख जनसंख्या पर मोटर वाहनों की संख्या ।
- 9. प्रति 100 किलोमीटर के क्षेत्र में रेल मार्ग की लम्बाई ।
- 10. प्रति लाख जनसंख्या पर डाक घरों की संख्या ।
- 11. प्रति लाख जनसंख्या पर बैक की शाखाओं की संख्या ।
- 12. साख–जमा अनुपात ।

तालिका 23.2 : भारत में राज्यों के आर्थिक आधार ढांचे के सूचकांक

| क्रमांक | राज्य | सूचकांक | |
|---------|-------------|-----------|-----------|
| | | 1971–72 | 1984–85 |
| 1. | आध्र प्रदेश | 2.55 (7) | 4.47(7) |
| 2. | आसाम | 2.55 (8) | 4.03(12) |
| 3. | बिहार | 2.53 (9) | 4.38(10) |
| 4. | गुजरात | 2.53 (10) | 4.96 (3) |
| 5. | हरियाणा | 2.11 (14) | 5.14 (2) |
| 6. | हरियाणा | 2.85 (4) | 4.30 (11) |
| 7. | केरल | 2.92 (3) | 4.43 (9) |
| 8. | मध्य प्रदेश | 2.00 (15) | 3.62 (15) |
| 9. | महाराष्ट्र | 2.60 (6) | 4.49(5) |
| 10. | उड़ीसा | 2.29 (13) | 3.92 (13) |
| 11. | पंजाब | 3.40 (1) | 5.35 (1) |
| 12. | राजस्थान | 2.33 (12) | 3.91 (14) |
| 13. | तमिलनाइ् | 3.03 (2) | 3.91 (14) |

| 14. | उत्तर प्रदेश | 2.46 (11) | 4.48 (6) |
|-----|---------------|-----------|----------|
| 15. | पश्चिमी बंगाल | 2.77 (5) | 4.53 (4) |

स्रोत : पूनम कपूर (1992) पर आधारित। बेंकट के अंग (संख्याएं) क्रम है।

तालिका 23.2 भारत के विभिन्न राज्यों के लिये वर्ष 1971–72 व वर्ष 1984–857 के लिये उपरोक्त वर्णित अवयवों के आधार पर/प्रधान अंगीय विश्लेषण (Principal Component Analysis) विधि के द्वारा तैयार किये हुए आर्थिक आधार ढांचे के सूचक को प्रस्तुत करता है। यह तालिका आर्थिक ढांचे के आधार पर राज्यों को क्रम देती है। इस तालिका का अध्ययन स्पष्टतया बतलाता है कि, भारत के निम्न आय वाले राज्यों जैसे मध्य प्रदेश, उड़ीसा व राजस्थान दोनों ही समय बिन्दुओं में अति निम्न क्रम पर स्थितं है। एक अन्य निम्न आय वाला राज्य बिहार इस क्रम में कुछ बेहतर स्थिति में है, यद्यपि समय के साथ यह भी अपनी सापेक्षिक स्थिति खोता जा रहा है। उच्च आय वाले राज्य जैसे पंजाब व महाराष्ट्र दोनों समय अविधयों में आधार ढांचे के रूप में भी उच्च क्रम पर बने रहे है। दो अन्य उच्च आय वाले राज्य गुजरात व हरियाणा में सत्तरवें के दशक में सुविकसित आधार ढांचा नहीं पाया जाता प्रतीत होता है। लेकिन इन्होंने इस अविध में बहुत अधिक प्रगति की है, और अंतिम वर्षा में व काफी उच्च क्रम पर स्थित है। इन व अन्य परिवर्तनों के कारण आधार ढांचे के सम्बन्ध में राज्यों के क्रमों के बीच सहसम्बन्ध गुणांक प्रारम्भिक व अन्तिम वर्ष में +0.35 तक निम्न रहा है।

23.3.2 सामाजिक आधार ढांचा :

सामाजिक आधार ढांचे के सूचकांक को बनाने में जिन अवयवों पर विचार किया गया है वे निम्न है :

- 1) शिक्षक के प्राथमिक स्तर पर भरती अनुपात।
- 2) उच्च प्राथमिक स्तर पर भरती अनुपात।
- 3) प्राथमिक स्तर पर शिक्षक— शिक्षार्थी अनुपात।
- 4) उच्च प्राथमिक (मिडिल) स्तर पर शिक्षक शिक्षार्थी अनुपात।
- 5) उच्च माध्यमिक स्तर पर शिक्षक— शिक्षार्थी अनुपात।
- 6) प्रति लाख जनसंख्या पर प्राथमिक स्कूलों की संख्या।
- 7) प्रति लाख जनसंख्या पर मिडिल स्कूलों की संख्या।
- 8) प्रति लाख जनसंख्या पर माध्यमिक विद्यालयों की संख्या।
- 9) प्रति लाख जनसंख्या पर अस्पताल में बिस्तरों की संख्या।
- 10) प्रति लाख जनसंख्या पर नर्सों व दाइयों (मिड वादब्स) की संख्या।
- 11) चिकित्सक (डाक्टर) जनसंख्या अनुपात।
- सन 1984–85 वह अंतिम वर्ष है जिसके लिये ये तथ्य उपलब्ध है । इन्हें यहाँ पर विचार किये गये 15 राज्यों के लिये प्रकाशित किया गया है।

तालिका 23.3 भारत में राज्यों के सामाजिक आधार ढांचे के सूचकांक

| क्रमांक | राज्य | सूचकांक | |
|---------|----------------|-----------|----------|
| | | 1971–72 | 1984–85 |
| 1. | आध्र प्रदेश | 3.08(9) | 3.41(10) |
| 2. | आसाम | 3.00 (11) | 3.13(15) |
| 3. | बिहार | 2.76(12) | 3.26(13) |
| 4. | गुजरात | 3.27(5) | 3.98(4) |
| 5. | हरियाणा | 3.08(8) | 3.66(8) |
| 6. | हरियाणा | 3.20(6) | 3.72(7) |
| 7. | केरल | 3.59(2) | 4.32(1) |
| 8. | मध्य प्रदेश | 2.66(15) | 3.39(11) |
| 9. | महाराष्ट्र | 3.64(1) | 4.21(2) |
| 10. | उड़ीसा | 2.70(14) | 3.44(9) |
| 11. | पंजाब पंजाब | 3.18(7) | 3.80(6) |
| 12. | राजस्थान | 2.72(13) | 3.15(14) |
| 13. | तमिलनाड् | 3.32(4) | 4.00(3) |
| 14. | उत्तर प्रदेश | 3.01(10) | 3.31(12) |
| 15. | पश्चिमी बंगाल | 3.48(3) | 3.92(5) |

स्रोतः पूनम कपूर (1992) पर आधारित । ब्रेकट के अंग (संख्याएं) क्रम है ।

सामाजिक आधार ढांचे के सूचकों के मूल्य जिनकी गणना प्रधान अंगीय (भाग) विश्लेषण (Principal Component Analysis) और उपरोक्त वर्णित अवयवों के आधार पर की गयी है तालिका 23.3 में सन 1971–72 व 1984–85 वर्षों के लिये भारत के विभिन्न राज्यों के लिये दिये गये है, जो इस गणना के विभिन्न राज्यों को क्रम भी देती है । तालिका स्पष्ट संकेत देती है किं भारत के निम्न आय वाले राज्य –िबहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान व उत्तर प्रदेश सामाजिक आधार ढांचे के रूप में निम्न क्रम पर स्थित है, यद्यपि इस समय अविध में उड़ीसा ने अपनी स्थित में काफी विचारणीय सुधार किया है ।

उच्च आय वाले राज्यों में केवल महाराष्ट्र ने ही सामाजिक आधार ढांचे में पर्याप्त विकास कर लिया हुआ प्रतीत होता है। मध्य आय वर्ग वाले राज्य जैसे केरल, तिमलनाइ व पश्चिमी बंगाल ने सुविकसित सामाजिक आधार ढांचा प्राप्त कर लिया प्रतीत होता है। सामाजिक आधार ढांचे के रूप में भारतीय राज्यों के क्रम में प्रारम्भिक व अंतिम वर्षों के बीच अधिक परिवर्तन हुआ प्रतीत नहीं होता। वास्तव में 14 में से 9 राज्यों में जिनके क्रमों में परिवर्तन हुए, वह परिवर्तन एक तक निम्न था। इसलिये यह कोई आश्चर्य नहीं है कि दो समय

बिन्दुओं के बीच राज्यों के श्रेणी सहसंबन्ध गुणांक (Rank Correlation Coefficent) + 0.87 तक उच्च पाया गया ।

23.3.3 मिला जुला सूचकांक (Composite Index)

मिला बुला सूचकांक आधार ढांचे के सूचक सभी 22 अवयवों पर विचार (शामिल) करता है । इसे आर्थिक व सामाजिक आधार ढांचे के. सूचकों के प्रथम प्रधान अंगों (अवयवों) को लेकर प्राप्त किया गया है ।8

तालिका 23.4 : भारत में राज्यों के आधार ढांचेगत स्विधाओं का मिलाज्ला सूचकांक

| क्रमांक | राज्य | सूचकांक | 3 3 |
|---------|---------------|-------------|----------|
| | | 1971–72 | 1984–85 |
| 1. | आध्र प्रदेश | 1.28(10) | 1.53(9) |
| 2. | आसाम | 1.28(12) | 1.46(12) |
| 3. | बिहार | 1.29(9) | 1.49(10) |
| 4. | गुजरात | 1.38(7) | 1.71(5) |
| 5. | हरियाणा | 1.41(5) | 1.92(2) |
| 6. | हरियाणा | 1.28(11) | 1.47(11) |
| 7. | केरल | 1.45(4) | 1.73(4) |
| 8. | मध्य प्रदेश | 0.97(15) | 1.39(15) |
| 9. | महाराष्ट्र | 1.38(6) | 1.65(7) |
| 10. | उड़ीसा | 1.24(13) | 1.45(13) |
| 11. | पंजाब | 1.87(1) | 2.11(1) |
| 12. | राजस्थान | 1.16(14) | 1.44(14) |
| 13. | तमिलनाडू | 1.53(3) | 1.91(3) |
| 14. | उत्तर प्रदेश | 1.32(8) | 1.54(8) |
| 15. | पश्चिमी बंगाल | 1.64(2) | 1.70(6) |

स्रोत : पूनम कपूर (1992) पर आधारित । बेकट के अंग (संख्याएं) क्रम है ।

आधार ढांचागत सुविधाओं का भारत का सर 1971–72 व 1984–85 वर्षों के लिये मिलाजुला सूचकांक तालिका 23.4 में दिया गया है, जो इनके आधार पर राज्यों का क्रम भी देना है। तालिका में यह स्पष्ट है कि निम आय वाले राज्यों में मध्य प्रदेश राजस्थान व उड़ीसा आधार ढांचागत विकास के रूप में भी निम्न क्रम पर स्थित है। उच्च आय वाले राज्यों में केवल पंजाब इसके आधार पर भी दोनों समय बिन्दुओं पर सापेक्षित रूप में अपने उच्च स्थान पर कायम है। दो अन्य उच्च आय वाले राज्य हरियाणा व गुजरात के प्रारम्भिक वर्ग 8. अन्य के साथ कुंडु (kundu) 1980 ने मिले जुले सूचकांक की गणना के लिए इस प्रकार की विधि को अपनाने के कारण दिये है देखिये Kundu, A (1980): Measerment of

Urban Processes : A Study of Regionalisation, Popular Prakashan (Bombay)

में समानुपाती क्रम पर. नहीं है, लेकिन समय के साथ अपनी सापेक्ष स्थित में काफी सुधार करते है, और अंतिम वर्ष में काफी उच्च क्रम पर स्थित है। कुछ मध्यम आय वर्गी राज्य जैसे केरल व तिमलनाइ इस गणना के आधार पर काफी उच्च क्रम पर स्थित है, जबिक आसाम मध्यम वर्गी राज्यों में एक ऐसा ज्वलंत उदाहरण है जो आधार ढांचागत विकास के रूप में काफी निम्न क्रम पर है। आधार ढांचागत विकास के रूप में राज्यों के क्रम में प्रारम्भिक व अंतिम वर्षों के बीच बहुत अधिक परिवर्तन नहीं हुआ प्रतीत होता है। विचार किये गये 15 राज्यों में से 9 राज्यों के क्रम में वास्तव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। 6 राज्यों में जिनके क्रम में परिवर्तन अनुभव किया गया, उनमें से 3 राज्यों में परिवर्तन मात्रा केवल एक थी। इन: सभी के परिणामस्वरूप, आधार ढांचे के रूप में प्रारम्भिक व अंतिम वर्षों के बीच राज्य का श्रेणी (Rank) सहसंबन्ध उच्च + 0.94 तक है।

23.4 स्वयं के दवारा सीखने के अभ्यास के प्रश्न

सही उत्तर पर टिक का निशान लगाइये।

- 1. आर्थिक आधार ढांचा किसका माप है?
 - (क) सड़के
 - (ख) संदेशवाहन
 - (ग) ऊर्जा स्विधाएँ
 - (घ) बैक
 - (ङ) उपरोक्त सभी।
- 2. सामाजिक आधार ढांचा।
 - (क) सर्च समाज को प्रभावित करता है।
 - (ख) अर्थव्यवस्था पर अल्प-कालीन व शीघ्र प्रभाव डालता है।
 - (ग) केवल दीर्घ कालीन प्रभाव डालता है जो अल काल में उतरने प्रभावी नहीं होते।
- 3. आधार ढांचे का परिणाम होता है-
 - (क) उत्पादन के साधनों का नवीन संयोग।
 - (ख) उत्पादन की लागतों की कमी में सहायक।
 - (ग) आयात नहीं किया जा सकता। ।
 - (घ) दीर्घ कालीन निर्माण अवधि। ।
 - (ङ) सभी गुणों से समान है।
- 4. असंतुलित विकास का अर्थ हो सकता है-
 - (क) आधार ढांचे, में अतिरिक्त क्षमता।
 - (ख) आधार ढांचे की कमी ।
 - (ग) या तो (क) या (ख)

- 5. प्रधान अंगीय विश्लेषण (Principal Component Analysis) एक विधि है जो-
 - (क) आधार ढांचे को अवयवों (भागों) में विभाजित करती है।
 - (ख) आधार ढांचे में सर्वाधिक महत्व के क्षेत्र को स्पष्ट करती है।
 - (ग) विभिन्न सूचकों को एक मिले जुले सूचकांक में मिलाती है।
- 6. भारतीय राज्यों की क्रम स्थिति में काफी परिवर्तन निम्न में से किसके सम्बन्ध में हुआ है?
 - (क) आर्थिक आधार ढांचा ।
 - (ख) सामाजिक, आधार ढांचा ।
 - (ग) संपूर्ण आधार ढांचा ।
- 7. आधार ढांचागत उच्च विकास किस राज्य में हुआ है?
 - (क) राजस्थान
 - (ख) हरियाणा
 - (ग) केरल ।

23.5 सारांश

आधार ढांचा जिसे सामाजिक ऊपरी व्यय (Social Overheads) के रूप में भी किया जाता है, आधारभूत स्विधाओं का होता है, जिनकी आवश्यकता अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में क्रियाओं को करने के लिये आवश्यक होती है । यह सामान्य हें कि आर्थिक आधार ढांचे जैसे सडकें, रेल मार्ग, संदेशवाहन, बैक आदि, और सामाजिक आधार ढांचे जैसे स्वास्थ्य व शिक्षा स्विधाओं के बीच अन्तर किया जाये । आर्थिक विकास आधार ढांचे के विकास के साथ-साथ होता है । यदयपि सभी अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों और आधार ढांचे के बीच संत्लित विकास पर जोर देते है, मगर इस बात पर विवाद है कि क्या आधार ढांचे को आर्थिक विकास का मुख्य चालक (कार्य करने का प्रेरक) माना जाये अथवा, इसे आर्थिक विकास का साथी (दासी) माना जाये? इस तथ्य के कारण उठने वाली कठिनाइयों के कारण कि आधार ढांचे के भागों (अंगो) को एक बड़ी संख्या के सूचकों के दवारा मापा जा सकता है, और आधार ढांचे के विकास का एक संक्षिप्त व सारगर्भित माप निकालने के लिये उन विभिन्न अंगों को भार (Weight) दिया जाना आवश्यक है । प्रधान अंगीय विश्लेषण का उपयोग आधार ढांचागत विकास के मिलेजुले सूचकांक की गणना के लिये किया जाता है इस विचार की जानकारी के अधीन कि सभी प्रकार के विश्लेषणों के लिये कोई भी आदर्श क्षेत्र नहीं है । और यह तथ्य कि राज्य कुल सीमा तक भाषा, संस्कृति, तथ्य (आकड़ों) एकत्रीकरण व नियोजन के रूप में सजातीय है । और कि राज्य राजनैतिक प्रशासकीय क्षेत्र है, राज्यों को क्षेत्रों के रूप में लिया गया है ।

प्रधान अंगीय विश्लेषण की सहायता से तैयार किये गये मिले जुले सूचकांक के आधार पर आधार ढांचागत विकास के अभी हाल के अध्ययन के परिणामों को सन 1971–72 व सन 1984–85 के वर्षों के लिये प्रस्तुत किया गया है । ये सूचकांक आधार ढांचागत विकास में अन्तर्राज्यीय विषमताओं के पाये जाने को सूचित करते है । निम्न आय वाले राज्य जैसे मध्य

प्रदेश, उड़ीसा व राजस्थान दोनों समय बिन्दुओं पर आधार ढांचे के सम्बन्ध में निम्न क्रम पर स्थित है। इसी प्रकार, पंजाब जो एक उच्च आय वाला राज्य है, वह आर्थिक व संपूर्ण आधार ढांचे के सम्बन्ध में काफी उच्च क्रम पर है, यद्यपि हम अगर सामाजिक आधार ढांचे पर विचार करें नो यह स्थिति सही नहीं पायी जाती। केरल और तमिलनाडू मध्य आय वर्ग के राज्य है, जिनका सामाजिक व संपूर्ण आधार ढांचागत विकास के रूप में उच्च क्रम है। हिरियाणा व गुजरात उच्च आय वर्ग वाले राज्यों के ऐसे उदाहरण प्रतीत होते है, जो आधार ढांचागत विकास के सम्बन्ध में अपनी सापेक्ष स्थितियों (क्रमों) में तीव्र छलांगें लगा रहे है। आर्थिक ढांचे के सम्बन्ध में कुछ राज्यों की सापेक्ष स्थिति में कुछ विचारणीय परिवर्तन है मगर यह बात सामाजिक व सम्पूर्ण आधार ढांचे के सम्बन्ध में सही प्रतीत नहीं होती।

23.6 शब्दावली (Key Words)

क्षेत्र – (Region) आधार ढाँचा – (Infrastructure) सामाजिक ऊपरी–व्यय ली – (Social Overhead Capital) प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाएँ – (Directly Productive Activities) असंतुलित विकास – (Unbalanced Development) आर्थिक आधार ढाँचा या संरचना – (Economic Infrastructure) प्रधान अंग या अंगीय विश्लेषण – (Principal Component Analysis)

23.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Hirschman, A.O.(1961), The Strategy of Economic Development, Yale University Press, New Haven.

Mahesh Chand and V.K. Puri(1983), Regional Planning in India, Allied, Delhi.

Poonam Kapur(1992) Mimeographed, Inter-State Disperities in Infrastructural Facilities in India, Department of Business Economics, University of Delhi.

23.8 स्वयं के द्वारा सीखने के अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर

| (1) अ | (2) ग | (3) 31 | (4) ভ |
|-------|-------|--------|-------|
| (5) ग | (6) ख | (7) ग | |

इकाई 24

राज्यों के अन्तर्गत अंतः क्षेत्रीय विषमतायें, राजस्थान के विशेष संदर्भ में

विषय सूची

- 24.0 उद्देश्य
- 24.1 प्रस्तावना
- 24.2 भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में राजस्थान की स्थिति
- 24.3 राजस्थान में अन्तः क्षेत्रीय विषमता के सूचक
 - 24.3.1 जनसंख्या घनत्व व वितरण
 - 24.3.2 लिंग अनुपात
 - 24.3.3 कार्मिक जनसंख्या
 - 24.3.4 साक्षरता के अनुसार जनसंख्या का अनुपात
 - 24.3.5 ग्रामीण तथा नगरीय जनसंख्या
 - 24.3.6 औद्योगिक विकास
 - 24.3.7 खनिज संसाधन
 - 24.3.8 शक्ति संसाधन
 - 24.3.9 सडकों विकास
 - 24.3.10 कृषि
- 24.4 क्षेत्रीय असमानताओं के कारण
- 24.5 क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने के सुझाव
- 24.6 सारांश
- 24.7 निबन्धात्मक प्रश्न
- 24.8 शब्दावली
- 24.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

24.0 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य राजस्थान के विशेष संदर्भ में अन्तः क्षेत्रीय विषमताओं का अध्ययन करना है । इसमें यह बताया गया है कि विषमताओं के सूचक क्या है? विभिन्न क्षेत्रों में विषमताओं के कारण क्या है, तथा इनको दूर करने के क्या उपाय अपनाये जा सकते है ।

24.1 प्रस्तावना

भारत जैसे संघीय राज्य के समुचित विकास के लिये संतुलित वृद्धि आवश्यक है, किन्तु यहां अत्यधिक क्षेत्रीय विषमतायें देखने को मिलती है। कुछ राज्य आर्थिक रूप से विकसित है,

जबिक कुछ सापेक्षतया पिछड़े हैं । यहां तक कि प्रत्येक राज्य में कुछ क्षेत्र ज्यादा विकसित है, जबिक कुछ प्राथमिक अवस्था में है ।

सापेक्षतया विकसित तथा आर्थिक रूप से कमजोर राज्यों तथा राज्यों में विकसित तथा कमजोर क्षेत्रों की उपस्थिति को अन्तःक्षेत्रीय विषमता कहते है। अन्तः क्षेत्रीय विषमतायें प्राकृतिक संपदा की विषमता अथवा मनुष्यकृत अर्थात कुछ क्षेत्रों की उपेक्षा तथा निवेश तथा विकास प्रयासों के लिये कुछ की प्राथमिकता के कारण हो सकती है।

प्रादेशिक असमानताओं का अध्ययन विभिन्न राज्यों के बीच किया जा सकता है जिसे अन्तर्राज्यीय असमानता (Inter–State Inequality) कहते हैं। यह एक राज्य के अन्दर या विभिन्न जिलों के बीच या खण्डों के बीच किया जा सकता है जिसे राज्य के अन्दर की असमानता (Intra - State Inequality) कहते हैं।

इस अध्याय में हम राजस्थान के विशेष संदर्भ में क्षेत्रीय विषमता का अध्ययन करेंगे।

राजस्थान अपने वर्तमान रूप में 1 नवम्बर, 1956 में 19 देशी रियासतों तथा 3 सामन्ती राज्यों के एकीकरण से गठित हुआ था। वर्तमान में राज्य 32 जिलों में विभक्त है। राजस्थान का क्षेत्रफल 3.42 लाख वर्ग किलोमीटर है और मध्य प्रदेश के बाद यह भारत का दूसरा सबसे बड़ा राज्य है।

24.2 भारतीय अर्थव्यवस्था में राजस्थान की स्थिति

भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में राजस्थान की अर्थव्यवस्था के कुछ प्रमुख सूचक निम्न तालिका में प्रस्तुत किये गये हैं —

तालिका 24.1 भारतीय अर्थव्यवस्था में राजस्थान की स्थिति

| | 911(() | 17 51747 | 4(4) 0 (0) | 4101 471 17 4171 | |
|-----|---------------------|----------|------------|------------------|--------------------|
| सं. | मद | वर्ष | राजस्थान | भारत | राजस्थान का |
| | | | | | समस्त भारत में |
| | | | | | अंश या अन्य |
| | | | | | टिप्पणी |
| 1. | जनसंख्या | 1991 | 4.40 करोड़ | 84.63 करोड़ | 5.2 प्रतिशत |
| 2. | क्षेत्रफल | 1991 | 3.42 करोड़ | 32.76 करोड़ | 10.45 प्रतिशत (देश |
| | | | वर्ग किमी. | वर्ग किमी. | में दूसरा स्थान) |
| | | | | (संघीय प्रदेश | |
| | | | | छोड्कर) | |
| 3. | जनसंख्या की वाषिक | 1981– | 2.50 | 2.14 प्रतिशत | भारत से ज्यादा |
| | चक्रवृद्धि दर | 91 | प्रतिशत | | |
| 4. | कुल साक्षरता–दर (7 | 1991 | 38.55 | 52.21 | भारत से नीची |
| | वर्ष व अधिक आयु | | प्रतिशत | प्रतिशत | |
| | वर्ग में) | | | | |
| 5. | घनत्व (प्रति वर्ग | 1991 | 129 | 274 | भारत से कम |
| | किमी. में जनसंख्या) | | | | |

| 6. | अनुस्चित जाति का जनसंख्या में अनुपात | 1991 | 17.29 प्रतिशत | 16.33 प्रतिशत | भारत से थोड़ा ज्यादा |
|-----|---|-------------|-----------------------------|-----------------------------|---|
| 7. | अनुसूचित जनजाति का जनसंख्या में अनुपात | 1991 | 12.64 प्रतिशत | 8.01 प्रतिशत | भारत से काफी ज्यादा |
| 8. | आद्यानों में क्षेत्रफल | 1995 | 11.88 मिलियन हेक्टेयर | 123.5 मिलियन हेक्टेयर | 9.6 प्रतिशत (लगभग1/10) |
| 9. | रिर्पोटिंग फैक्ट्रियों प्रतिशत की संख्या | 1992– 93 | 3958 | 119494 | 3.3 प्रतिशत |
| 10. | प्रति हैक्टेयर उर्वरकों का उपयोग | 1995– 96 | 31.86 किलोग्राम | 74.81 किलोग्राम | भारतीय स्तर का 43 प्रतिशत |
| 11. | जोतों का औसत आकार | 1990– 91 | 4.11 हैक्टेयर | 1.68 हैक्टेयर | भारत का 2.5 गुना |
| 12. | इन्फ्रास्ट्रक्चर के सापेक्ष विकास का सूचकांक | | 80 | 100 | राष्ट्रीय स्तर का 4/5 |
| 13. | विद्युत का प्रति उपभोग | | 254कि.वाट घंटे | 299कि. वाट घंटे | राष्ट्रीय स्तर का व्यक्ति 85 प्रतिशत |
| 14. | सड्कों की लम्बाई (प्रति 1०० वर्ग किमी. क्षेत्र में) | | 39.3 किलोमी. | 62.1 किलोमी. | राष्ट्रीय औसत के आधे से कुछ अधिक |
| 15. | ग्रामीण विहु तीकरण | 1995– 96 | 82.3 प्रतिशत | 85 प्रतिशत से अधिक | राष्ट्रीय स्तर से कुछ कम |
| 16. | प्रति व्यक्ति आय (1980–81 के मूल्यों पर | 1995– 96 | 2051 रुपये | 2573 रुपये | राष्ट्रीय स्तर से कुछ कम |

स्रोत : Report on Currency and Finance, Vol.1, 1995–96 Economic Survey 1996–97 (GOI) and Economic Review 1996–97(GOR)

24.3 राजस्थान में अन्तःक्षेत्रीय विषमता के सूचक

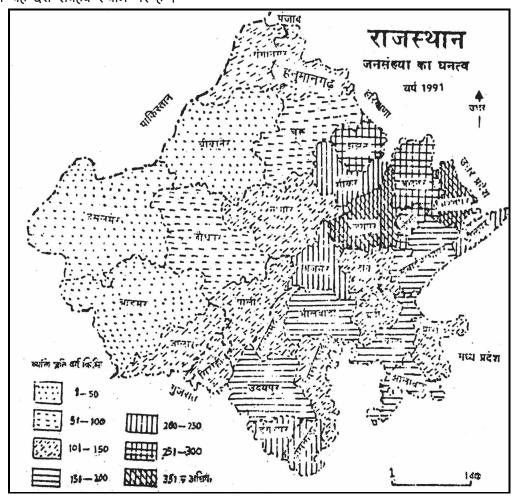
राजस्थानके अन्दर विभिन्न जिले लंबे क्षेत्रों के मध्य विषमताओं का अध्ययन हम निम्नलिखित सूचकों के आधार पर करेगें —

- (1) जनसंख्या
- (2) लिंग अनुपात
- (3) कार्मिक जनसंख्या

- (4) ग्रामीण व नगरीय जनसंख्या
- (5) ग्रामीण तथा नगरीय केन्द्रों का विकास
- (6) औद्योगिक विकास
- (7) खनिज उत्पादन
- (8) शक्ति संसाधन
- (9) सड़को विकास
- (10) कृषि फसलों का वितरण

24.3.1 जनसंख्या

वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार राजस्थान की कुल जनसंख्या 440.05 लाख थी जो 3.42 लाख वर्ग किमी क्षेत्र पर विस्तृत है। समग्र राज्य में जनसंख्य का वितरण एक सा नहीं है। राज्य में जनसंख्या के औसत घनत्व 129 व्यक्ति (1991) प्रति वर्ग किमी. के संदर्भ में यह देश सत्रहवे स्थान पर है।



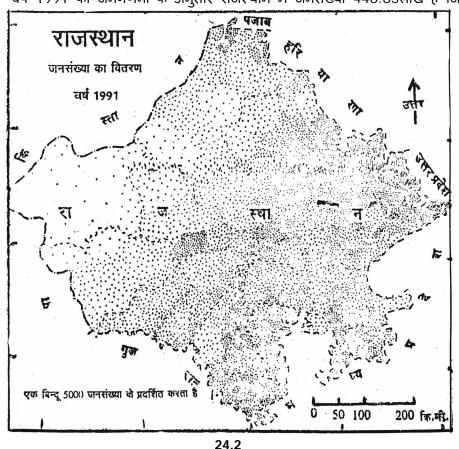
जनसंख्या घनत्व के मानचित्र देखने से स्पष्ट होता है कि अरावली के पूर्व में स्थित जिलों में जनसंख्या का औसत घनत्व 130 से 335 व्यक्ति प्रति वर्ग कि. मी. के बीच है । ट्रांस-यम्ना भू-भाग में राज्य के उत्तर पूर्व में स्थित झुञ्झुन्, सीकर, जयप्र, अलवर आदि जिलों में तथा दक्षिण में स्थित इंगरप्र व बांसवाड़ा जिलों में भी जनसंख्या का घनत्व अधिक जाता है । इन जिलों में औसत घनत्व 229 से 335 व्यक्ति प्रति वर्ग कि. मी. है । बीकानेर, बाड़मेर और जैसलमेर जिलो में जनंसख्या का घनत्व 50 व्यक्ति प्रति वर्ग कि. मी. से भी कम हें । जयप्र में जनंसख्या का घनत्व अधिकतम (335) है तथा जैसलमेर में न्यूनतम (9) है ।

जनसंख्या घनत्व कई कारणों का परिणाम है । इनमें प्राकृतिक, सामाजिक, कृषि व ऐतिहासिक आदि कारकों को गिनाया जा सकता है । राज्य में जनसंख्या के केन्द्र की अवस्थिति प्राय : उपजाऊ भूमियों के चारों ओर दिखाई देती है । कृषि उपयुक्त क्षेत्रों मैं जहां जल आपूर्ति निश्चित व धरातल समतल है, जनसंख्या का घनत्व अधिक देखने को मिलता है ।

राजस्थान में जनसंख्या के औसत घनत्व की प्रकृति को देखते हू ये यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जनंसख्या पूर्व से पश्चिम की ओर कम होती जाती है तथा पश्चिमी शुष्क प्रदेश में दक्षिण से उत्तर की तरफ बीकानेर तक कम होती जाती है।

जनसंख्या का सामान्य वितरण -

वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार राजस्थान में जनसंख्या 440.85लाख है जिसका



वितरण राज्य के विभिन्न भागों तथा जिलों में एक सा नहीं है। जनसंख्या के वितरण मानचित्र से स्पष्ट होता है कि जनसंख्या के वितरण को कई प्रकार के कारक प्रभावित करते हैं। राज्य की भूगर्भीय संरचना, उच्चावचन, जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति तथा विभिन्न क्षेत्रों की कृषि क्षमताओं के संदर्भ में जनंसख्या के प्रतिरूपों तथा वितरण की व्याख्या की जा सकती है। सामान्यतया अरावली सृखला के पश्चिम ओर उत्तर पश्चिम की तरफ जनसंख्या का घनत्व कम होता जाता है जबकि इसके पूर्व और उत्तर पूर्व में बढ़ता जाता है।

जल की सुविधा व उत्तम खेतीहर भूमि तथा घनी जनसंख्या के बीच घनिष्ट संबंध पाया जाता है।

राज्य में सबसे अधिक जनंसख्या जयपुर जिले (47.19लाख) में और सबसे कम जनसंख्या जैसलमेर (3.43लाख) जिले में मिलती है। इस प्रकार राजस्थान की जनसंख्या का लगभग 1075 प्रतिशत जयपुर जिले में तथा 0.78 प्रतिशत जैसलमेर में निवास करता है। राजस्थान में घनी जनसंख्या वाले जिलो में भरतपुर, जयपुर, अलवर, झुन्झुनू, धौलपुर आदि मुख्य है। जनसंख्या के वितरण पर भागों का प्रभाव स्पष्ट देखा जाता है। घनी जनसंख्या राज्य के उन्हीं भागों में पायी जाती हैं जहा उपजाऊ कच्छारी मैदान है, जहां सिंचाई की सुविधायें उपलब्ध है, अथवा जहां अच्छी वर्षा होती है। इसके विपरीत न्यूनतम जनसंख्या शुष्क अथवा पहाड़ी भागों में पाई जाती है। जनसंख्या के वितरण से संबंधित तथ्य तालिका में दर्शाये गये है।

राजस्थान के समस्त जिलों में बीकानेर जिले में सबसे अधिक वृद्धि दर लगभग 42.40 प्रतिशत रिकार्ड की है। राज्य में न्यूनतम वृद्धि दर पाली जिले मे (16.49) पाई गई है।

24.3.2 लिंग अनुपात

राजस्थान की कुल जनसंख्या में 229.36 लाख पुरूष तथा 209.45 लाख स्त्रियां है इस प्रकार राज्य में एक हजार पुरूषों के पीछे 913 स्त्रियां है। यह अनुपात राष्ट्रीय अनुपात 929 से कम हैं। भारत के संदर्भ में स्त्री-पुरूष अनुपात में राज्य सोलहवें स्थान से अठारहवें स्थान पर आ गया है। 1991 में राज्य के पन्द्रह जिलों में स्त्री-पुरूष अनुपात राज्य के औसत अनुपात से अधिक पाया गया है। ये जिले है –

डूंगरपुर (997), बांसवाड़ा (969), उदयपुर (966), पाली (957), सीकर (952), सिरोही (950) चित्तोडगढ (950), झून्झुन् (949), भीलवाड़ा (946), जालौर (942), पुरू (940), टोंक (925), अजमेर (924), एवं झालावाड़ (918), । राजस्थान के लिंग अनुपात में एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में विषमता दृष्टिगत होती है। जिला स्तर पर इस अनुपात में 796 (धोलपुर) से 997 (डूंगरप्र) के बीच विषमता परिलक्षित होती है।

राज्य स्तर पर ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्रों के लिये लिंगतपात क्रमशः 934 और 885 है। जिला स्तर पर नगरीय क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में लिंगानुपात सामान्यतया अधिक है।

अन्त में राजस्थान में वर्ष 1981 में इ्ंगरपुर (1045) के अलावा बाकी सभी जिलों में पुरूषों से स्त्रियों की संख्या कम है। लेकिन वर्ष 1991 में इ्ंगरपुर जिले में भी पुरूषों से स्त्रियों की संख्या (997) कम रिकार्ड की गई है। मुख्यतः गंगानगर, बीकानेर, अलवर, भरतपुर, धौलपुर, सवाई माधोपुर, जयपुर, जैसलमेर, बाइमेर, बूदी तथा कोटा जिलों में तो 1000 पुरूषों के पीछे 900 से भी कम स्त्रियां है। इस तथ्य की पुष्टि राजस्थान के सांख्यिकीय विवरण से हो जाती है।

तालिका 24.2 राजयस्थान की जनसंख्या से सबंन्धित तथ्यों का संखियकीय विवरण 1991 संखियकीय विवरण 1991

| 1. राज्य/जिला | | क्षेत्रफल वर्ग | जनसंख्या | | | य वृद्धि दर | <u> </u> | द्वेदर | _ | रुष/स्त्री प्रयापन |
|---------------|-----------|-------------------|----------|-----|--------|-------------|----------|----------|------|-----------------------|
| | | वग किमी. | | | | | | | 3 | भनुपात |
| | | | | | 1981– | 1971–81 | 1901–81 | 1901–91 | 1981 | 1991 |
| | | | | | 91 | | | | | |
| | राजस्थान | 34223 | 44005990 | 129 | +28.44 | +32.97 | +232.83 | +327.18 | 919 | 913 |
| | | 9 | | | | | | | | |
| 1. | गगांनगर | 11934 | 1402444 | 117 | +29.01 | +45.62 | +1315.60 | +1725.77 | 874 | 878 |
| 2. | बीकानेर | 27244 | 1211140 | 44 | +42.06 | +48.08 | +446.70 | +534.85 | 891 | 887 |
| 3. | चूरू | 16830 | 1543211 | 92 | +30.52 | +34.88 | +453.64 | +491.68 | 954 | 940 |
| 4. | झुझुनू | 5928 | 1582421 | 265 | +29.21 | +30.39 | +354.90 | +358.32 | 956 | 949 |
| 5. | अलवर | 8380 | 2296580 | 274 | +30.25 | +27.32 | +207.60 | +168.55 | 892 | 889 |
| 6. | भरतपुर | 5066 | 1651584 | 326 | +26.74 | +36.43 | +210.03 | +175.28 | 848 | 835 |
| 7. | सवाई | 10527 | 1803471 | 171 | +27.21 | +28.68 | +149.75 | +217.65 | 867 | 857 |
| | माधोपुर | | | | | | | | | |
| 8. | जयपुर | 10801 | 3887895 | 360 | +37.24 | +37.79 | +282.50 | +289.12 | 895 | 892 |
| 9. | सीकर | 7732 | 1842914 | 239 | +33.35 | +32.09 | +186.29 | +293.59 | 963 | 952 |
| 10. | अजमेर | 8481 | 1729207 | 204 | +19.63 | +25.50 | +172.72 | +226.46 | 922 | 924 |
| 11. | टोंक | 7194 | 975006 | 137 | +24.18 | +25.21 | +200.24 | +273.13 | 928 | 925 |
| 12. | जैसलमेर | 38401 | 344517 | 9 | +44.37 | +45.77 | +222.66 | +354.86 | 811 | 810 |
| 13. | जोधपुर | 22850 | 2153483 | 94 | +27.57 | +44.68 | +292.47 | +401.24 | 909 | 904 |
| 14. | नागौर | 17718 | 2144810 | 121 | +31.23 | +29.04 | +210.87 | +307.70 | 958 | 949 |
| 15. | पाली | 12387 | 1486432 | 120 | +16.49 | +31.39 | +223.60 | +227.98 | 947 | 949 |
| 16. | बाडमेर | 28387 | 1435222 | 51 | +28.10 | +44.41 | +257.50 | +357.79 | 904 | 891 |
| 17. | जालौर | 10640 | 1142563 | 107 | +26.41 | +35.20 | +233.31 | +320.69 | 942 | 942 |
| 18. | सिरोही | 5136 | 654029 | 128 | +20.53 | +27.90 | +332.50 | +300.90 | 963 | 950 |
| 19. | भीलवाड़ा | 10455 | 1593128 | 152 | +21.43 | +24.22 | +371.10 | +351.10 | 942 | 946 |
| 20. | उदयपुर | 11651 | 2066380 | 177 | +22.41 | +30.68 | +326.99 | +422.56 | 977 | 966 |
| 21. | चितौड़गढ़ | 10856 | 1484190 | 137 | +20.27 | +30.32 | +423.40 | +385.96 | 951 | 950 |
| 22. | डूंगरपुर | 3770 | 874549 | 232 | +28.04 | +28.78 | +583.00 | +773.43 | 1045 | 997 |
| 23. | बांसवाड़ा | 5037 | 1155600 | 229 | +30.27 | +35.44 | +443.17 | +598.50 | 984 | 969 |
| 24. | बूंदी | 5550 | 770248 | 138 | +25.51 | +30.72 | +242.69 | +328.52 | 887 | 891 |
| 25. | कोटा | 5111 | 1220505 | 239 | +32.10 | +36.36 | +337.70 | +347.00 | 888 | 888 |
| 26. | झालावाड़ | 6219 | 956971 | 154 | +21.72 | +26.21 | +310.30 | +276.70 | 926 | 918 |
| 27. | धौलपुर | 3034 | 749479 | 247 | +27.91 | | | +150.66 | 796 | 796 |
| 28. | दौसा | 3466 | 994431 | 287 | | | | | | 898 |
| 29. | बारा | 7195 | 810326 | 113 | | | | | | 892 |

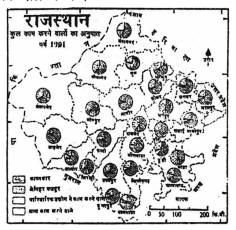
| 30. | राजसमन्द | 4734 | 822721 | 174 | 961 |
|-----|----------|------|---------|-----|-----|
| 31. | हनमानगढ | 9965 | 1220333 | 123 | 902 |

स्रोत : जनगणना समंक 1991

24.3.3 कार्यिक जनसंख्या

राजस्थान में मुख्य श्रमिक (Main worker) सीमान्त श्रमिक (Marginal workers) तथा अकार्यरत श्रमिक (Non workers) आदि के आकड़ों का तुलनात्मक अध्यन्न करने पर यह स्पष्ट होता है कि राज्य की कुल जनसंख्या का लगभग 63 प्रतिशत भाग अकार्यरत श्रमिकों का है । मुख्य कार्मिक जनसंख्या लगभग 30 प्रतिशत से कुछ अधिक है । जबिक सीमान्त कार्मिक जनसंख्या कुल जनसंख्या की केवल 6 प्रतिशत है । जिला स्तर पर भीलवाड़ा में सबसे अधिक अनुपात लगभग 38.41 प्रतिशत मुख्य कार्मिक जनसंख्या का है जबिक निमतम 24.45 प्रतिशत झुन्झुन् जिले में है । इस प्रकार सीमान्त श्रमिकों का अधिकतम प्रतिशत 17.21 इंगरपुर जिले में मिलता है और सबसे कम 3.18 प्रतिशत अजमेर जिले में है। कुल जनसंख्या के अकार्यरत श्रमिकों का अधिकतम अनुपात सीकर जिले में पाया जाता है जबिक चितौडगढ में यह सबसे कम है ।

राज्य की कुल पुरूष जनसंख्या का 49.65 प्रतिशत पुरुष कार्मिक जनसंख्या है । पुरूष कार्मिक जनसंख्या में से विभिन्न वर्गों में जैसे कृषि कार्यों में 61.4 प्रतिशत, खेतीहर श्रमिक के रूप में 5. 97 प्रतिशत, पारिवारिक उद्योगों मे 3.7 प्रतिशत और अन्य आर्थिक क्रियाओं में 28.9 प्रतिशत कार्मिक श्रमिक संलग्न थे ।



राजस्थान में कायिक जनसंख्या का अनुपात

24.3

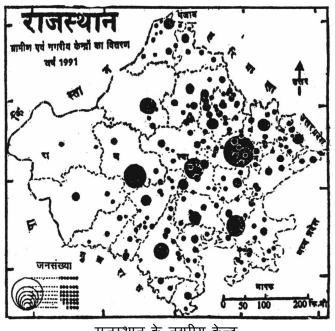
कुल स्त्रियों की जनसंख्या में से लगभग 9.4 प्रतिशत मुख्य श्रमिक 11.7 प्रतिशत सीमान्त श्रमिक तथा शेष 78.85 अकार्यरत श्रमिकों के रूप में है । मुख्य स्त्री श्रमिकों का सबसे अधिक केन्द्रीकरण अजमेर जिले में (18.95) मिलता है । और सबसे कम भरतपुर जिले (2.75) है सीमान्त स्त्री श्रमिकों में इ्ंगरपुर में 30.98 प्रतिशत अधिकतम केन्द्रीकरण दृष्टिगत

होता है । जहां आदिवासी साधारणतया वनों की उपज तथा स्थानांतरित कृषि अथवा मजदूरी पर निर्भर है । अजमेर जिले में सीमान्त स्त्री, श्रमिकों का सबसे कम प्रतिशत (5.71) मिलता है ।

24.3.4 साक्षरता के अनुसार जनसंख्या का अनुपात

देश के अन्य राज्यों की त्लाना में राजस्थान में साक्षरता बहुत कम है । भारत में साक्षरता का औसत 52.11 प्रतिशत है जबिक राजस्थान में यह 38.81 प्रतिशत ही है । 1991 की जनगणना के अन्सार जनसंख्या में प्रूषों की साक्षरता दर 55.07 एवं स्त्रियों में 20.84 प्रतिशत है।

राज्य में ग्रामीण क्षेत्रों की औसत साक्षरता दर 19.73 प्रतिशत है । जिला स्तर पर बाइमेर जिले में यह 10.35 प्रतिशत है । जो ग्रामीण क्षेत्रों की दृष्टि से सबसे कम है । झून्झूनू जिले में साक्षरता दर अधिकतम 24.81 प्रतिशत मिलती है । राज्य में नगरीय क्षेत्रों की



राजस्थान के नगरीय केन्द्र

24.4

साक्षरता दर लगभग 48 प्रतिशत है । बांसवाड़ा जिला जो कि आदिवासी जिला है, राज्य में नगरीय क्षेत्रों की दृष्टि से सबसे अधिकतम 59.28 प्रतिशत साक्षरता दर दिखाता है जबकि सबसे कम 36.12 प्रतिशत साक्षरता दर नागौर जिले में मिलती है।

समग्र राज्य में जिला स्तर पर अजमेर जिले में सबसे अधिक साक्षरता दर 42.83 प्रतिशत तथा सबसे निम्नतम बाइमेर जिले में 18.35 प्रतिशत पाई जाती है । इसी प्रकार बिल्कुल एक जैसा प्रतिरूप पुरूषों और स्त्रियों की साक्षरता दर में पाया जाता है ।

24.3.5 ग्रामीण तथा नगरीय जनसंख्या

1991 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या में ग्रामीण जनसंख्या 338.4 लाख है। राज्य की जनसंख्या का लगभग 100. 4 लाख है। राज्य की जनसंख्या का लगभग 77. 12 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में तथा 2288 प्रतिशत नगरीय क्षेत्रों में निवास करता है।

राजस्थान मौलिक रूप से कृषि और ग्रामीण राज्य है । ग्रामीण जनसंख्या लगभग 37124 गांवों में रहती है । उक्त गांवों में से लगभग 60 प्रतिशत गांव छोटे आकार के है । जिनकी जनसंख्या 500 से भी कम है जो ग्रामीण का 29.5 प्रतिशत बनाते है । लगभग 22.80 प्रतिशत गांव ऐसे है जिनकी आबादी 500 – 999 के बीच है । जहां जनसंख्या का 28 प्रतिशत निवास करता है । इस प्रकार 83 प्रतिशत गांव 1000 या इससे कम आबादी वाले गांव है । जिनमें राज्य की लगभग 52 प्रतिशत जनसंख्या रहती है । ये आकड़े स्पष्ट करते है कि राजस्थान छोटे आकार के कृषि गांव रखता है ।

इन गांवों का प्रादेशिक वितरण बताता है कि ये अधिकांशत : पश्चिमी रेतीले मैदानी क्षेत्र और अरावली पहाड़ी प्रदेश में छितरे हुये स्थित है । इन प्रदेशों में शुष्कता व उच्चावचन की दशायें बड़े आकार के गांवों के विकास के लिये अनुकूल नहीं है ।

देश के अन्य राज्यों की भांति राजस्थान में भी नगरीय जनसंख्या बड़ी तेजी सें बढ़ रही है । राज्य में नगरीय जनसंख्या जो 1991 में 22.88 प्रतिशत थी । राज्य के मुख्य बड़े शहरों कें दवारा गत तीन दशकों में रिकार्ड की गई वृद्धि दरों को निम्न तालिका में दिखाया गया है—

तालिका 24.3 राजस्थान के प्रमुख शहरों की वृद्धि दर 1961-91

| शहर | 61–71 | स्थान | 71–81 | स्थान | 81–91 | स्थान |
|----------|-------|-------|-------|-------|-------|-------|
| कोटा | 77.0 | 1 | 62.9 | 1 | 49.8 | 4 |
| जयपुर | 52.5 | 2 | 57.1 | 2 | 48.9 | 6 |
| उदयपुर | 45.1 | 3 | 42.5 | 7 | 32.3 | 9 |
| जोधपुर | 4.3 | 4 | 55.4 | 3 | 28.1 | 12 |
| अलवर | 38.1 | 5 | 39.5 | 9 | 44.8 | 7 |
| बीकानेर | 25.3 | 6 | 30.4 | 11 | 64.1 | 1 |
| अजमेर | 14.3 | 7 | 41.6 | 8 | 7.0 | 14 |
| भरतपुर | _ | _ | 54.7 | 4 | 48.9 | 5 |
| भीलवाड़ा | _ | _ | 48.9 | 5 | 49.9 | 3 |
| गंगानगर | _ | _ | 37.4 | 10 | 30.5 | 10 |
| सीकर | _ | _ | 45.1 | 6 | 44.0 | 8 |
| पाली | _ | _ | _ | _ | 50.8 | 2 |
| व्यावर | _ | _ | _ | _ | 18.6 | 13 |
| टोंक | _ | | _ | _ | 29.0 | 11 |

तालिका 24.3 राजस्थान के प्रमुख शहरों की जनसंख्या

| शहर | 1961 | 1971 | 1981 | 1991 |
|----------|-------|-------|-------|--------|
| जयपुर | 403.5 | 615.3 | 977.2 | 1454.7 |
| अजमेर | 281.2 | 264.6 | 375.6 | 401.9 |
| जोधपुर | 224.8 | 317.7 | 506.3 | 648.7 |
| बीकानेर | 150.7 | 188.5 | 253.2 | 415.4 |
| कोटा | 120.3 | 213.0 | 358.2 | 536.5 |
| उदयपुर | 111.1 | 161.3 | 232.6 | 307.7 |
| अलवर | 72.7 | 100.4 | 145.8 | 211.2 |
| भरतपुर | _ | 68.0 | 105.3 | 156.9 |
| भीलवाड़ा | _ | 82.2 | 122.6 | 183.8 |
| गंगानगर | _ | 90.0 | 123.7 | 161.3 |
| सीकर | _ | 71.0 | 103.0 | 148.2 |
| पाली | _ | _ | 90.7 | 136.8 |
| व्यावर | _ | _ | 90.0 | 106.7 |
| टोंक | _ | _ | 77.7 | 100.2 |

24.5 औद्योगिक विकास

राजस्थान को औद्योगिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ राज्य माना जाता है । 1992 – 93 में भारत में पंजीकृत फैक्ट्रीयों का 3.3 प्रतिशत राजस्थान में था । फैक्ट्री में रोजगार की दृष्टि से राजस्थान का समस्त भारत में अंश 3 प्रतिशत, जबिक महाराष्ट्र का 14.7 प्रतिशत था । विनिर्माण द्वारा जोड़े गये शुद्ध मूल्य में भी राजस्थान का अंश 3.3 प्रतिशत ही था जो समस्त भारत का 1/33 वां भाग था । इस प्रकार फैक्ट्री क्षेत्र में विभिन्न सूचकों जैसे की संख्या, विनियोजित पूंजी रोजगार, उत्पति के मूल्य व विनिर्माण द्वारा वर्जित मूल्य में राजस्थान का अंश समस्त भारत की तुलना में 3.0 प्रतिशत ही आता है । इस प्रकार राजस्थान का फैक्ट्री क्षेत्र में अपेक्षाकृत नीचा स्थान है ।

राजस्थान में 27 जिलों में फैक्ट्रियों का वितरण काफी असमान पाया जाता है । निम्नांकित तालिका में 1970 तथा 1992 – 93 के लिये विभिन्न जिलों के अनुसार फैक्ट्रीयों की संख्या व उनमें संलग्न कर्मचारियों की संख्या दी गई है, जिससे जिलेवार तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है ।

अग्र तालिका से स्पष्ट है कि 1970 से 1992 – 93 के बीच रिपोर्टिंग फैक्ट्रीयों की संख्या 1022 से बढ़कर 3839 हो गई । इसमें संलग्न कर्मचारियों की संख्या 1.1 लाख से बढ़कर 2.63 लाख हो गई है ।

तालिका 24.5 राजस्थान मे उद्योगों कार प्रादेशिक अथवा जिलेवार फैलाव

| क्र. | जिले का नाम | फैक्ट्रीय | फैक्ट्रीयो की संख्या | | रेयों की संख्या |
|------|--------------|-----------|----------------------|--------|-----------------|
| | | 1970 | 1992–93 | 1970 | 1992–93 |
| 1. | अजमेर | 149 | 277 | 17118 | 20421 |
| 2. | अलवर | 14 | 237 | 470 | 18785 |
| 3. | बांसवाड़ा | 5 | 26 | 227 | 1843 |
| 4. | बाडमेर | 2 | 102 | 147 | 1679 |
| 5. | भरतपुर | 21 | 69 | 318 | 6368 |
| 6. | भीलवाड़ा | 45 | 279 | 5043 | 22174 |
| 7. | बीकानेर | 46 | 164 | 3099 | 5786 |
| 8. | बूंदी | 12 | 30 | 2370 | 2571 |
| 9. | चित्तौडगढ | 35 | 68 | 1637 | 6347 |
| 10. | चूरू | 5 | 22 | 113 | 681 |
| 11. | ड्रंगरपुर | _ | 2 | _ | 1697 |
| 12. | धौलपुर | _ | 5 | _ | 660 |
| 13. | गंगानगर | 114 | 328 | 7292 | 12172 |
| 14. | जयपुर | 234 | उच्चतम ८६३ | 36891 | उच्चतम 83002 |
| 15. | जैसलमेर | 1 | 3 | 15 | 70 |
| 16. | जालौर | 2 | निम्नतम १ | 21 | निम्नतम 20 |
| 17. | झालावाड | 12 | 22 | 1377 | 3150 |
| 18. | झुझुन् | 3 | 10 | 36 | 3587 |
| 19. | जोधपुर | 76 | 338 | 6240 | 14359 |
| 20. | कोटा | 75 | 97 | 11835 | 16748 |
| 21. | नागौर | 41 | 63 | 1206 | 1604 |
| 22. | पाली | 47 | 389 | 5431 | 10803 |
| 23. | सवाई माधोपुर | 10 | 18 | 2724 | 1583 |
| 24. | सीकर | 5 | 34 | 153 | 2362 |
| 25. | सिरोही | 9 | 69 | 208 | 4344 |
| 26. | टोंक | 3 | 25 | 96 | 1770 |
| 27. | उदयपुर | 56 | 298 | 4764 | 18372 |
| | कुल | 1022 | 3839 | 111693 | 262958 |

स्रोत : ASI Reports for 1970 and 1992–93, DES, jaipur (1992–93 Report published in July 1996) P. 114.

(1990-91 व 1991-92 जिलेवार के आकड़े तैयार नहीं किये गये है)

1992 – 93 में 200 से अधिक फैक्ट्रियों की संख्या निम्न 8 जिलों में पायी गयी थी। इसे क्रमवार निम्न तालिका में दर्शाया गया है-

तालिका 24.6 200 से अधिक कारखाने वाले जिले

| क्र. संख्या | जिले का नाम | फैक्ट्रियों की संख्या | कर्मचारियो की संख्या |
|-------------|---------------|-------------------------------|----------------------|
| 1. | जयपुर | 863 | 88002 |
| 2. | पाली | 389 | 10803 |
| 3. | जोधपुर | 338 | 14359 |
| 4. | श्रीगंगानगर | 328 | 12172 |
| 5. | उदयपुर | 298 | 18372 |
| 6. | भीलवाड़ा | 279 | 22174 |
| 7. | अजमेर | 277 | 20421 |
| 8. | अलवर | 237 | 18785 |
| | कुल | 3009 | 205088 |
| | 8 जिलों में | ं कुल फैक्ट्रियों का अंश = 78 | 3.4% |
| | इ नमें | कुल रोजगार का अंश = 78% | , o |

इस प्रकार राज्य में उपर्युक्त 8 जिलों में कुल फैक्ट्रियों का लगभग 78% अंश पाया गया तथा शेष 19 जिलों में 22% अंश ही पाया गया। इन्हीं आठ जिलों में कुल फैक्ट्री-रोजगार का 78% अंश पाया गया। इस प्रकार अधिकांश फैक्ट्रियाँ व फैक्ट्री-रोजगार इन आठ जिलों में पाया गया है। वैसे रोजगार की दृष्टि से आठ जिलों का क्रम भिन्न रहा है, जो इस प्रकार है। जैसे– जयपुर, भीलवाड़ा, अजमेर, अलवर, उदयपुर, जोधपुर, गंगानगर व पाली।

यह ध्यान देने की बात है कि 1992-93 में भी निम्न जिलों में फैक्ट्रियाँ की संख्या 10 से भी कम रही-

तालिका 24.7 10 से कम कारखाने वाले जिले

| क्र. सं. | जिले | फैक्ट्रियों की संख्या |
|----------|---------------------|-----------------------|
| 1. | धोलपुर | 5 |
| 2. | डूंगरपुर जैसलमेर | 2 |
| 3. | जैसलमेर | 3 |
| 4. | जालौर | 1 |
| | कुल | 11 |

स्थलाकृति, जल, शक्ति साधनों, परिवहन व संचार साधनों व कच्चे माल की उपलब्धता उद्योगों के क्षेत्रीय वितरण को प्रभावित करते हैं, जैसे कोटा में औद्योगिक विकास शक्ति के साधनों को उपलब्धता के कारण अधिक हो रहा है। राज्य के जैसलमेर, बाइमेर,

जोधपुर आदि जिलों में प्राकृतिक व स्थलाकृति संबंधी बाधाओं के कारण औद्योगिक विकास की गति कम है।

| ASE | श्री क्षण्या क्षणं श्रीक वि. अन्यव | वि. अन्

राजस्थान के प्रमुख उद्योग निम्नाकित मानचित्र में दिखाये गये है।

24.5

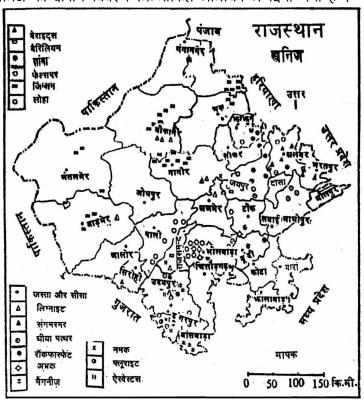
24.3.7 खनिज संसाधन

राजस्थान को खनिजों का अजायबघर कहा जाता है । यहां लगभग 46 प्रकार के खनिज उपलब्ध है । उनमें से लगभग 39 प्रकार के खनिजों का निरंतर खनन हो रहा है ।

राजस्थान में खिनजों का क्षेत्रीय विवरण किसी एक प्राकृतिक विभाग में संकेन्द्रित न होकर छितरा हुआ मिलता है तथा साथ ही खिनजों की मात्रा भी असमान है । राज्य के अधिकांश उत्पादित खिनज भीलवाड़ा, कोटा, अजमेर, जोधपुर, जयपुर, सवाई माधोपुर और टोंक आदि जिलों से खनन किये जाते है । इन जिलों में राज्य के खिनज कार्य में लगे कुल व्यक्तियों का लगभग 72 प्रतिशत संलग्न है और कुल खिनज मूल्य का 70 प्रतिशत प्राप्त होता है ।

भीलवाड़ा मुख्य रूप से अभ्रक स्टेटाइट, घीया पत्थर तथा तामडा के उत्पादन में राजस्थान में प्रथम है । कोटा चूने के पत्थर तथा अन्य इमारती पत्थरों में धनी है । अजमेर का स्थान अभ्रक, संगमरमर, एस्वेस्टास, तामडा व इमारती पत्थर में प्रमुख है । जोधपुर जिला बलुआ पत्थर, संगमरमर, इमारती पत्थर, मुलतानी मिट्टी, वालफ्राम और जिप्सम का उत्पादन करता है । उदयपुर जिला सीसा, जस्ता, गया, लोह अयस्क, अभ्रक, रॉक फाँस्फेट, संगमरमर, चूना पत्थर, स्टेटाइट और एस्वेस्टास के उत्पादन में प्रथम है । जयपुर जिले में नमक, घीया

पत्थर, अभ्रक, लोह अयस्क और चूना पत्थर तथा सवाई माधोपुर जिले में इमारती पत्थर आदि का उत्पादन किया जाता है । जबकि टोंक जिले में अभ्रक व तामडा निकाला जाता है । राजस्थान में खनिज का क्षेत्रीय विवरण निम्नांकित मानचित्र में दिया गया है ।



राजस्थान में खनिजों का वितरण

24.6

24.3.8 शक्ति संसाधन

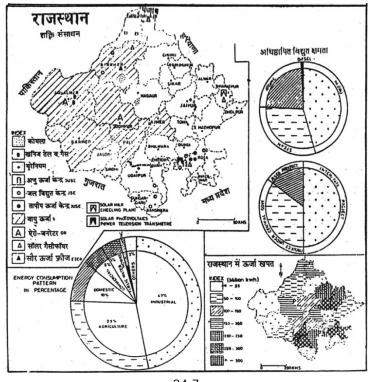
आधुनिक शक्ति के साधनों कोयला, पेट्रोल एवं जल विघुत संसाधनों में राजस्थान अभाव वाला राज्य माना जाता रहा है । प्रति व्यक्ति विद्युत की खपत में राजस्थान का स्थान भारत मे आठवां है ।

यहां कोयला बीकानेर, जोधपुर व जैसलमेर क्षेत्रों में पाया जाता है । बीकानेर, नागौर व बाइमेर जिलो में अनुमानित 10 करोड़ मीट्रिक टन लिग्नाइट के नये भण्डारों का पता चला है ।

खिनज तेल की प्राप्ति केवल अवसादी क्षेत्रों में संभव है । राजस्थान के बीकानेर व जैसलमेर जिले में तथा पश्चिमी जोधपुर में अवसादी चट्टाने पाई जाती है । इसिलये खिनज तेज की संभावनाओं से इंकार नहीं किया जा सकता है । जैसलमेर में भारती ढालपुर तेल तथा कमली ताल, घोटास व मिनहारी टिब्बा नामक स्थान पर प्राकृतिक गैस के भण्डार मिले है ।

जैसलमेर जिले का ही घोटारू क्षेत्र हीलियम मिश्रित गैस की खोज की दृष्टि से भारत का एक महत्वपूर्ण बिन्दु बन गया है । सितम्बर 1992 में राज्य में विदयुत उत्पादन की संस्थापित क्षमता 2775 मेगावाट है जबकि 1949 में राज्य निर्माण के समय यह क्षमता मात्र 13.27 मेगावाट थी।

राजस्थान में शक्ति संसाधनों का विवरण तथा ऊर्जा खपत को निमांकित मानचित्र में दिखाया, गया है ।



24.7

24.3.9 सड़कों का विकास

आर्थिक विकास में सड़को की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । कृषि, उद्योग, परिवहन, व्यापार, लोगों का आवागमन आदि की प्रगति बहुत कुछ सड़को के विकास पर ही निर्भर करती है ।

31 मार्च 1951 में राजस्थान में सड़को की लंबाई केवल 17,339 किलोमीटर थी, जो बढ़कर 31 मार्च 1995–96 में 70,229 किलोमीटर हो गई । इसका वर्गीकरण निम्न तालिका में दिया गया है–

तालिका 24.8 31 मार्च 1996 को राज्य में सड़कों की लम्बाई

| क्र. स. लम्बाई (किलोमीटर में) | | लम्बाई (किलोमीटर में) |
|-------------------------------|--------------------|-----------------------|
| 1. | राष्ट्रीय राजमार्ग | 2,846 |
| 2. | राष्ट्रीय राजमार्ग | 10,006 |
| 3. | बड़ी जिला सड़कें | 5,707 |

| 4. | अन्य जिला सड़कें | 12,615 |
|----|----------------------------|--------|
| 5. | ग्रामीण व सीमावर्ती सड़कें | 39,055 |
| | कुल | 70,229 |

आजकल सड़को को किस्मों के अनुसार निम्न श्रेणियों में रखा जाता है -

- (1) B.T.(Bitumen Treated) या डामर की सड़कें
- (2) WBM (Wster Bounde Macadam) या पक्की सड़कें (Metalled Roads)
- (3) Gravel Roads या मिही व छोटे गोले पत्थरों को मिलाकर बनी सड़कें तथा
- (4) Fair Weather Road या साधारण मौसमी सड़कें ।

तालिका 24. 9 विभिन्न प्रकार की सड़कों की लम्बाई

| | (किलोमीटर में) |
|-------------------------------------|----------------|
| 1. बी टी. या डामर की सड़कें | 49,138 |
| 2. डब्ल्यू बी. एम (पक्की सड़कें) | 3,395 |
| 3. ग्रेवल की सड़कें | 10,256 |
| 4. साधारण सड़कें (एफ. डब्ल्यू. आर.) | 289 |
| कुल | 67,078 |

राज्य में 31 मार्च 1993 को निम्न पाँच जिलो में सभी प्रकार की सड़कों की लंबाई(राष्ट्रीय राज मार्गों सहित) कुल राज्य का लगभग 1/3 अंश पायी गयी थी –

तालिका 24.10

| क्रम | जिला | (किलोमीटर में) |
|------|----------|----------------|
| 1. | जोधपुर | 4,812 |
| 2. | पाली | 3,786 |
| 3. | नागौर | 3,508 |
| 4. | बाड़मेर | 3,502 |
| 5. | भीलवाड़ा | 3,458 |
| | कुल | 19,066 |

31मार्च1993 को सभी जिलों में सड़कों की लम्बाई 61,520 किलोमीटर आंकी गयी थी, उपरोक्त पांच जिलों में राज्य की सड़को की कुल लम्बाई का लगभग 31 प्रतिशत अथवा 1/3 अंश पाया गया था । इस प्रकार जिलेवार सड़कों की लम्बाई में काफी असमानता पायी जाती है ।

मार्च 1994 के अन्त तक राज्य में ग्रामीण सड़को की प्रगति निम्न तालिका में दर्शायी गयी है –

तालिका 24.11

1971 की जनगणना के अन्सार

| | | | 3 | |
|----|-------------|----------|---------------------------------|----------------------|
| | जनसंख्या | गावों की | मार्च 1994 के अंत तक अर्थात् | सड़को से जुड़े गांव |
| | | संख्या | 1993–94 तक सड्कों से जुड़े गांव | (प्रतिशत के रूप में) |
| 1. | 1,5000 | 3,300 | 3,263 | 98.9 |
| | व अधिक | | | |
| 2. | 1,000-1,500 | 2,407 | 1,837 | 76.3 |
| 3. | 1,000 से कम | 27,598 | 9,025 | 32.7 |
| | योग | 33,305 | 14,125 | 42.4 |

इस प्रकार 1971 की जनगणना के अनुसार 1993–94 के अंत तक लगभग 42 प्रतिशत गांव ही सड़कों से जुड़े पाये है और आधे से अधिक गांव सड़कों से बिना जुड़े रह गये है। इनकी संख्या 19180 आकी गयी है।

1981 की जनगणना के आधार पर सड़को से जुड़े गांवों की स्थिति अग्र तालिका में दर्शायी गयी है।

इस प्रकार 1981 की जनगणना के अनुसार सड़को से बिना जुड़े गावों की संख्या 20,306 थी, जो कुल गांवों का लगभग 72 प्रतिशत थी। अतः आज भी राजस्थान में काफी गांव सड़को से नहीं जुड़ पाये है राज्य में सड़को के संबंध में कई प्रकार के काम करने बाकी है। जैसे सड़क की परत को मोटा करना, सड़को को चौड़ा करना तथा मार्ग में पड़ने वाले बिना पुल के नदी नालों पर पुल बनाना आदि।

तालिका 24.12

| | जनसंख्या | कुल गांव | सड़को से जुड़े गांव | सड़को से जुड़े गांवों का |
|----|-------------|----------|---------------------|--------------------------|
| | | | | कुल गावों से प्रतिशत |
| 1. | 1,500 व ऊपर | 4,455 | 4,089 | 91.8 |
| 2. | 1,000-1,500 | 3,691 | 2,542 | 68.9 |
| 3. | 1000 से कम | 26,822 | 8,031 | 29.9 |
| | कुल | 34,968 | 14,662 | 28.0 |

राज्य में 31 जिले (नये करोली जिले सिहत 32) है जो 207 उप खण्डों, 237 तहसीलों व 9,174 पंचायत मुख्यालयों में विभाजित है ये प्रशासनिक, आर्थिक व सामाजिक क्रियाओं के मेरूदण्ड है । इनको सड़को से जोड़ना अत्यावश्यक है ।

पंचायत मुख्यालयों में 31 मार्च 1994 तक 7,376 ही किसी तरह की सड़को से जुड़ है । शेष 1798 पी. एच क्यू. आज भी सड़को से नहीं जुड़ पाये है । भविष्य में इनकी सड़को से जोड़ने की व्यवस्था करनी होगी । यह काम आठवीं योजना के अन्तिम वर्ष 1996–97 तक काफी सीमा तक पूरा करने का लक्ष्य था ।

राजस्थान की प्रथम पंचवर्षीय योजना में सड़क विभाग पर कुल सार्वजनिक परिव्यय का 9.2 प्रतिशत आवंटित हुआ था जो घट कर सातवीं योजना में 2.9 प्रतिशत हो गया और आठवीं योजना में यह 6 प्रतिशत रखा गया था।

राजस्थान में 1995–96 के अंत में सड़को का घनत्व बहुत कम था । यह 100 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र के पीछे केवल 39.3 किलोमीटर था, 'जबिक राष्ट्रीय औसत 62.1 किलोमीटर आंका गया था। भविष्य में सड़क विकास के विभिन कार्यक्रमों पर ध्यान देना होगा, जैसे बड़ी गायब कड़ियों का निर्माण करना, अन्तर्राज्यीय सड़को का निर्माण करना तथा बिना पुल के क्रोसिंग के स्थानों पर पुल बनाना आदि । स्वाभाविक है कि इसके लिए काफी पूंजी का विनियोजन करना होगा।

सड़क विकास की नागपुर योजना के अनुसार सड़कों की लम्बाई प्रति 100 वर्ग किलोमीटर 42 किलोमीटर होनी चाहिए, जो 1961 तक प्राप्त करनी थी । लेकिन 31 मार्च 1993 के अंत में यह राजस्थान में 31.2 किलोमीटर तक ही आ पायी थी । अत : राज्य आज भी सड़क विकास की दृष्टि से काफी पीछे है ।

24.3.10 कृषि

राजस्थान की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है । राज्य की 75 प्रतिशत जनसंख्या कृषि व पशुपालन से ही अपना जीविकोपार्जन करती है ।

राजस्थान में कृषि तापक्रम, वर्षा के वितरण, उच्चावचन तथा मिट्टी की दशाओं से प्रभावित होती है । उच्चावचन तथा शुष्कता द्वारा निर्धारित सीमाओं के कारण राज्य के अधिकांश भाग का उपयोग कृषि कार्यों के लिये नहीं हो सकता । यहां तक कि कृषि के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र में उत्पादकता भारत के कुछ अन्य भागों की अपेक्षा काफी कम है ।

1994 में भूमि उपयोग के कुल क्षेत्रफल के 7.848 प्रतिशत पर वन थे, गैर कृषि उपयोग में 4.85 प्रतिशत भूमि, 7.84 प्रतिशत बंजर भूमि, कुल फसली क्षेत्रफल 56.25 प्रतिशत था।

50 से. मी. की वर्षा रेखा राज्य को दो भागों में बांटती है -

- (1) पश्चिमी शुष्क व अर्धशुष्क रेतीले मैदान
- (2) पूर्वी अरावली पहाडी प्रदेश, बनास बेसिन और पठारी क्षेत्र

बीकानेर, जैसलमेर, बाइमेर, नागोर व चुरू जिलों में राज्य के कुल फसली क्षेत्र का लगभग 39 प्रतिशत तथा कृषि योग्य खाली भूमि का लगभग 73 प्रतिशत क्या जाता है । इन जिलों में कुल फसली क्षेत्र के अधिकांश भाग में बाजरा उगाया जाता है ।

राज्य में कुल बोये गये क्षेत्रफल का 28.90 भाग ही सिंचित है।

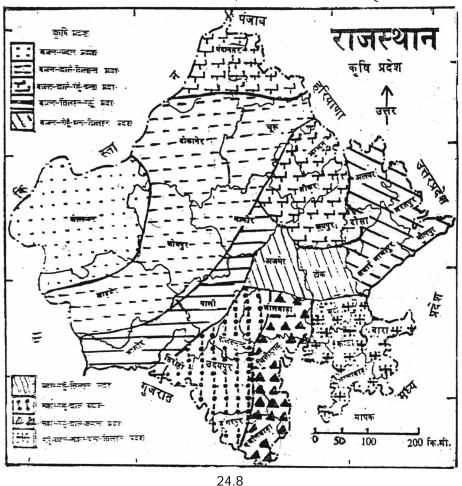
राज्य में फसलों को अध्ययन की दृष्टि से निम्न प्रकार विभाजित किया जाता है -

- 1. खादयान्न गेहूं, जौ, बाजरा, ज्वार, मक्का, 'चावल, दालें, चना
- 2. व्यवसायिक फसलें गन्ना, तिलहन
- 3. पेय पदार्थ तम्बाक्
- 4. रेशेदार पदार्थ कपास

पूर्वी भाग में जहां गेहूं, मक्का, कपास, गन्ना तिलहन व चना अधिक बोया जाता है वहीं पश्चिमी भाग में बाजरा, ज्वार, मोठ, मूंग, आदि प्रमुख फसलें है।, राज्य में खादय फसलों

के अन्तर्गत कुल फसली क्षेत्र का 71 प्रतिशत है जबकि 29 प्रतिशत क्षेत्र में बाजरा उगाया जाता है।

राजस्थान में फसलों का क्षेत्रीय विवरण इस रेखा चित्र 24.7 के द्वारा दिखाया गया है।



24.4 क्षेत्रीय असमानताओं के कारण

(1) प्राकृतिक व आर्थिक साधनों मे अन्तर

जलवायु, वर्षा, मिट्टी, खिनज पदार्थ, वन सम्पदा, शिन्त संसाधन आदि की दृष्टि से प्रदेश के भिन्न भागों में अन्तर पाये जाते हैं । जो विपिन क्षेत्रों के भिन्न—भिन्न विकास के लिये उत्तरदायी है ।

(2) विनियोग की मात्रा में अन्तर

विकास का विनियोग से सीधा संबंध होता है। आज के अपेक्षाकृत विकसित प्रदेशों में भूतकाल में काफी विनियोग हुआ है और अन्य क्षेत्रों या प्रदेशों में संभवतः कम विनियोग किया गया है। जिससे उनके बीच विषमतायें न केवल उत्पन्न हुयी है बल्कि बढ़ती गई

(3) भारत में केन्द्रीकृत विनियोजन

भारत में नियोजन केन्द्रीकृत कहा है जबिक राज्य के अन्दर की क्षेत्रीय असमानताओं को राज्य सरकार ही क्षेत्रीय व स्थानीय नियोजन के द्वारा दूर कर सकती है।

(4) पिछड़े तथा विशेष समस्याग्रस्त क्षेत्रों के लिये विशेष प्रयास न किया जाना ।

(5) विविध कारण

विकास पर जनता के दृष्टिकोण, सहयोग व साझेदारी, लोगों की सांस्कृतिक परंपराओं, ऐतिहासिक परिस्थितियों आदि अनेक तत्वों का प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार विकास में निर्धारक तत्वों के असमान प्रभावों के कारण राज्य के विभिन्न जिलों कें बीच विषमतायें उत्पन्न हुयी है ।

24.5 क्षेत्रीय विषमताओं को कम करने के सुझाव

(1) आधार ढांचे को सुद्दढ़ करने की नीति

आधार ढांचे का विकास जैसे ऊर्जा, परिवहन, जल की पूर्ति आदि का समुचित विकास एक तरफ उत्पादन बढ़ाने के लिये जरूरी होना है । तों दूसरी तरफ सर्वसाधारण के उपभोग को बढ़ाने के लिये भी आवश्यक माना जाता है । ये पूंजी निर्माण में सहायक होते है । इनका विकास न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (एम.एन.पी.) के अन्तर्गत भी किया जाता है, तािक ग्रामीण क्षेत्रों में न्यूनतम सुविधायें बढ़ाई जा सकें । पिछड़े प्रदेशों में आधार भूत ढांचे को सृदृढ करने से प्रादेशिक असमानताओं को कम करने में मदद मिलती है । इससे ग्रामीण व शहरी असमानतायें भी कम होती है । अत : सर्वाधिक बल आधार भूत ढांचे को मजबूत करने पर दिया जाना चाहिये ।

(2) बहु स्तरीय नियोजन प्रणाली

क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने के लिये बहु स्तरीय नियोजन प्रणाली को सफल बनाना होगा । इसके लिये (अ) राज्य, जिला व अन्य' नीचे के स्तरों जैसे खण्ड स्तर पर कार्यकुशल नियोजन प्रणाली को अपनाना होगा। इस प्रकार की विकेन्द्रीत नियोजन प्रणाली क्षेत्रीय असंतुलनों को कम करने के लिये आवश्यक मानी गई है ।

(आ) केन्द्र से राज्यों को एवं राज्यों से जिलों व खण्डों को विलीय साधनों का हस्तान्तरण किया जाना चाहिये और हस्तान्तरण में पिछड़ेपन को मुख्य आधार बनाया जाना चाहिए।

(3) अनेक केन्द्र प्रवर्तित योजनायें (Centrally Sponosored Scheme (CSS) राज्यों को हस्तान्तरित की जा सकती हैं –

आज भी केन्द्र के पास वे बड़ी योजनायें है जिन पर व्यय की जाने वाली धनराशी बहुत ऊँची होती है जैसे एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.आर.डी.पी.), जवाहर रोजगार योजना (जे.आर.वाई.) आदि । एक जैसे उद्देश्यों वाली केन्द्र प्रवर्तित योजनाओं का परस्पर विलयन किया जा सकता है । जिससे कम व्यय से अधिक लाभ प्राप्त किये जा सकें । केन्द्र द्वारा केन्द्र प्रवर्तित बड़ी स्कीमों को राज्यों को हस्तान्तरित करने से उन्हें अपनी जरूरत के मुताबिक केन्द्र

द्वारा प्रदत्त कोषों का उपयोग करने का अवसर मिलेगा । इससे क्षेत्रीय विषमताओं को कम करने का अवसर मिलेगा ।

इसके अलावा सामाजिक सेवाओं के विभिन्न कार्यक्रमों जैसे महिला विकास कार्यक्रम, बच्चों के कल्याण कार्यक्रम, परिवार नियोजन, प्राइमरी स्वास्थ्य सेवायें, साक्षरता आदि को एक ही एजेंसी द्वारा उपलब्ध किये जाने से व्यय में किफायत होती है तथा अधिक लोगों को लाभान्वित किया जा सकता है।

- (4) केन्द्र को चाहिये कि वह राज्यों की विविध स्कीमों (जैसे ताप बिजली की परियोजना आदि) की स्वीकृति अधिक शीघ्रता से प्रदान करें तािक उनका समयबद्ध तरीके से क्रियान्वयन प्रारंभ हो सके । स्वीकृति में विलम्ब होने से परियोजनाओं की लागत काफी बढ़ जाती है ओर इनको पूरा करने में भी विलम्ब होता है।
- (5) क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय एजेंसियों व गैर सरकारी संगठनों (एन. जी. ओ.) से वित्तीय व तकनीकी सहयोग लिया जाना अत्यावश्यक है । राजस्थान ने व्यापक कृषिगत विकास फसलों के उत्पादन, पशुपालन, भू—संरक्षण, क्षारीय मिट्टी की समस्या के हल तथा सहकारिता के विकास आदि के लिये विश्व बैक से कर्ज तथा जापान, कनाडा, स्वीडन आदि से आर्थिक मदद ली है । इससे विकास प्रक्रिया को तेज करने में मदद मिलती है ।

इस प्रकार क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने में केन्द्र व राज्य के मिले जुले प्रयासों की आवश्यकता है । लेकिन प्रमुख जिम्मेदारी स्वयं पिछड़े प्रदेशों को वहन करनी होगी और इसके लिये कठिन परिश्रम करना होगा ।

24.6 सारांश

अंतः क्षेत्रीय विषमताएं कुछ तो प्रकृति की देन होती है और कुछ मानव की देन होती है। प्रकृति द्वारा कुछ क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक —संसाधन प्रदान किये जाते है और कुछ क्षेत्रों को इस मामले में एकदम कंगाल रख दिया जाता है। मानव अपने नियोजन द्वारा कुछ क्षेत्रों को विकसित कर देता है और कुछ क्षेत्रों को अविकसित छोड़ देता है। इस प्रकार क्षेत्रीय विषमताएं बनी रहती है। बल्कि मानव उन क्षेत्रों को भी प्राकृतिक संपदा का विदोहन नहीं करके गरीब ही रहने पर विवश कर देता है जिनको प्रकृति ने भरपूर प्राकृतिक संपदाएं प्रदान की है।

राजस्थान भूमि के संबंध में देश का दूसरा सबसे बड़ा राज्य है । और पूरे देश की जनसंख्या का 5.2 प्रतिशत भाग इस राज्य में निवास करता है यह देश में 17वां स्थान रखता है । और लिंग—अनुपात में देश में 18वाँ स्थान रखता है । शिक्षा के क्षेत्र में राजस्थान का स्थान बहुत नीचे है । और राज्य की 77.2 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है ।

औद्योगिक दृष्टि से राजस्थान पिछड़ा हुआ राज्य है। देश की पंजीकृत फैक्ट्रियों का मात्र 3.3 प्रतिशत राज्य में और देश की फैक्ट्रीयों में मात्र ३ प्रतिशत राजस्थान के मजदूर कार्यरत थे। खनिजों के मामले में राजस्थान समृद्धिशाली प्रान्त है। यहां पर 46 प्रकार के खनिज उपलब्ध है।

क्षेत्रीय विषमताओं को कम करने के लिए आधार ढाँचें को सुदृढ़ करने की नीति बनानी चाहिए, बहु स्तरीय नियोजन प्रणाली लागू की जानी चाहिए केन्द्र प्रवर्तित योजनाओं में राज्य का हिस्सा अधिक होना चाहिए ।

24.7 निबन्धात्मक प्रश्न

- (1) अन्तः क्षेत्रीय विषमताओं के सूचक क्या है? राजस्थान राज्य के अन्दर की क्षेत्रीय विषमताओं की व्याख्या कीजिये।
- (2) राजस्थान के विशेष संदर्भ में अन्तः क्षेत्रीय विषमताओं की व्याख्या कीजिये । अतः क्षेत्रीय विषमताओं के क्या कारण है, तथा इन्हें कैसे दूर किया जा सकता है ?

24.8 शब्दावली

- 1. राजस्थान की अर्थव्यवस्था लक्ष्मीनारायण नाथूरामका, कालेज बुक हाऊस, जयपुर
- 2. राजस्थान की अर्थव्यवस्था बी. एल. ओझा, आदर्श प्रकाशन, जयपुर
- 3. भारतीय अर्थव्यवस्था रूद्रदत्त एव के. पी. एम. सुंदरम,एस.चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा.) लि. नई दिल्ली

24.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

MNP = Minimum Needs Programme

IRDP = Integrated Rural Development Programme

JRY = Jawahar Rojgar Yojna

CSS = Centrally Sponsored Scheme

NGO = Non Government Organisation

इकाई-25

भारत में नियोजन प्रक्रिया के क्षेत्रीय आयाम

इकाई की रूपरेखा

- 25.0 उद्देश्य
- 25.1 प्रस्तावना
 - 25.1.1 ऐतिहासिक कारण
 - 25.1.2 प्राकृतिक कारण
 - 25.1.3 आयोजन में संतुलित विकास का अभाव
- 25.2 क्षेत्रीय असंतुलन के सूचक
 - 25.2.1 राष्ट्रीय आय व राज्य घरेलू उसाद
 - 25.2.2 प्रति व्यक्ति आय
 - 25.2.3 गरीबी रेखा से नीचे जनसंख्या
- 25.3 कृषि क्षेत्र
- 25.4 औद्योगिक क्षेत्र
- 25.5 सेवा क्षेत्र
- 25.6 आयोजन एवं क्षेत्रीय असन्तुलन
- 25.7 प्रादेशिक असमानताएं कम करने के लिए किये गये उपाय
- 25.8 संतुलित विकास के उपाय
- 25.9 सारांश
- 25.10 निबन्धात्मक प्रश्न
- 25.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

25.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान पायेंगे -

- (i) क्षेत्रीय असंतुलन के कारण
- (ii) क्षेत्रीय असंतुलन के सूचक
- (iii) क्षेत्र, औदयोगिक क्षेत्र एवं सेवा क्षेत्र में पाये जाने वाले क्षेत्रीय असंतुलन के बारे में
- (iv) संतुलित विकास एवं प्रादेशिक असमानताओं को कम करने के उपाय

25.1 प्रस्तावना

सन्तुलित विकास भारत जैसे संघीय देश (Federal State) के विकास के लिये आवश्यक है । मगर भारत में अत्यन्त क्षेत्रीय विषमताए पाई जाती है, चाहे आप प्रतिव्यक्ति आय, राज्य घरेलू उत्पाद और गरीबी रेखा से नीचे जनसंख्या की दृष्टि से देंखें या कृषि, उद्योगों व सेवा क्षेत्रों के विकास की दृष्टि से । तुलनात्मक रूप से देखते हुए कुछ प्रदेश अधिक

विकसित व अन्य पिछड़े हुए होते है। विकसित व पिछड़े हुए प्रदेशों या राज्यों, अथवा राज्यों के भीतर पिछड़े या विकसित क्षेत्रों के सहअस्तित्व को हम क्षेत्रीय असन्तुलन कह सकते हैं।

क्षेत्रीय असन्तुलन कई कारणों से पैदा हो सकते हैं— ऐतिहासिक कारण, प्राकृतिक कारण और आयोजन में संतुलित विकास के अभाव का कारण

25.1.1 ऐतिहासिक कारण

पिछली दो शताब्दियों में अनेक देशों के पिछड़ेपन का एक मुख्य कारण उपनिवेशवाद रहा है । भारत में भी न केवल आर्थिक पिछड़ेपन का बल्कि अन्तर्राज्यीय आर्थिक असन्तुलन का कारण भी अंग्रेजी राज में पाया जा सकता है । अंग्रेजों ने केवल उन क्षेत्रों के विकास पर ध्यान दिया जिनमें उदयोगो व वाणिज्यिक विकास के लिये पर्याप्त संसाधन उपलब्ध थे । अँग्रेज़ी उद्योगपतियों को उद्योग लगाने योग्य संसाधन महाराष्ट्र व पश्चिमी बंगाल के क्षेत्रों में दिखाई दिये इसलिये कलकत्ता, बम्बई व मद्रास के शहरों में अधिकतर उद्योगों की स्थापना हुई और इन्हीं क्षेत्रों का माल बन्दरगाहों तक लाने-ले जाने के लिये विभिन्न आवश्यक स्थानों तक परिवहन का विकास किया गया और अन्य प्रदेशों पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया । सो अन्य प्रदेश पिछड़े रह गये । इसके अतिरिक्त ब्रिटिश भूमि प्रणाली के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्र निरन्तर गरीब होता चला गया। प्रभावशाली भूमि सुधार कभी लागू नहीं किये गये इसलिये कृषक वर्ग का शोषण होता रहा। केवल जमींदार व महाजन वर्ग ही ग्रामीण क्षेत्र में सम्पन्न रह पाया । इस प्रकार भारत के ग्रामीण क्षेत्र का विकास नहीं हो पाया । न केवल उदयोग, कृषि व परिवहन की दृष्टि से बल्कि उपरिव्यय की दृष्टि से भी ब्रिटिश काल में विभिन्न क्षेत्रों में असन्तुलित विकास हुआ । इस काल में सिंचाई में विनियोग तो हुआ मगर केवल कुछ गिने-च्ने क्षेत्रों में । इन क्षेत्रों में ही कृषि का विकास हो पाया । क्छ क्षेत्रों में जहां अंग्रेजी सत्ता का ज्यादा जोर नहीं था और राज-रजवाड़े अभी भी चल रहे थे, कुछ राजाओं ने अपने-अपने राज्य में उपरिव्यय बनवाने पर काफी ध्यान दिया । वे राज्य इस कारण ज्यादा विकास कर गये।

25.1.2 प्राकृतिक कारण

किसी क्षेत्र का विकास बहुत सीमा तक इस बात पर निर्भर करता है कि प्रकृति की ओर से उस प्रदेश को कितने संसाधन उपलब्ध हैं। कुछ राज्यों में कृषि योग्य उर्वर भूमि अधिक मात्रा में उपलब्ध होती है तो अन्य क्षेत्रों में धातुओं के भण्डार प्रचुर मात्रा में हो सकते हैं। जिन क्षेत्रों में सभी प्रकार के प्राकृतिक संसाधन अधिक मात्रा में पाये जाते हैं, वहां विकास अधिक व सर्वागीण हो पाता है। और जहां प्राकृतिक संसाधन कम हो, वह प्रदेश पिछड़े रह जाते हैं। एक अन्य प्राकृतिक कारण है किसी क्षेत्र विशेष की भौगोलिक स्थिति व विकसित क्षेत्रों से उसकी निकटता या दूरी। अनेक हिमालय के पहाडियों वाले क्षेत्र जैसे उत्तरी कश्मीर एवं हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, व बिहार के पहाड़ी इलाके इसलिये पिछड़े रह गये है कि वहां तक पहुँच पाना कठिन हो जाता है।

25.1.3 आयोजन में सन्तुलित विकास का अभाव

क्षेत्रीय विकास में असन्तुलन का एक अन्य कारण हो सकता है आयोजन में कुछ क्षेत्रों पर अधिक व अन्य पर कम ध्यान दिया जाना । ऐसा राजनैतिक कारणों से हो सकता है या फिर विकसित क्षेत्रों को और अधिक विकसित करके पूरे देश का विकास करने के उद्देश्य से । इससे पिछड़े क्षेत्रों पर अधिक ध्यान नहीं दिया जा सकता । भारत में आयोजन काल में प्रति व्यक्ति योजना व्यय को देखने से— यह स्पष्ट हो जाता है कि सघन व विकसित प्रदेशों पर सामान्यत: अधिक व पिछड़े प्रदेशों पर कम व्यय किया जाता है । (तालिका— 25.1)

तालिका 25.1 प्रति व्यक्ति योजना व्यय (1951–1990)

| | | AI(1 - 414 | (1 4101011 0 | 744 (1701 | 1770) | | |
|---------------|-------|------------|--------------|-----------|---------|-------|--------|
| राज्य | प्रथम | द्वितीय | तृतीय | चतुर्थ | पांचवी | छठी | सातवीं |
| | योजना | योजना | योजना | योजना | योजना | योजना | योजना |
| | 1951– | 1956– | 1961– | 1969–74 | 1974–78 | 1980– | 1985– |
| | 56 | 61 | 66 | | | 85 | 90 |
| हरियाणा | | | | 358 | 481 | 1385 | 1871 |
| पंजाब | 175 | 146 | 212 | 316 | 591 | 1170 | 1695 |
| गुजरात | 58 | 76 | 108 | 204 | 376 | 1037 | 1485 |
| महाराष्ट्र | 37 | 57 | 103 | 199 | 372 | 983 | 1434 |
| मध्य प्रदेश | 34 | 48 | 84 | 114 | 254 | 687 | 1146 |
| तमिलनाडु | 28 | 57 | 98 | 134 | 201 | 651 | 1063 |
| कर्नाटक | 46 | 62 | 100 | 128 | 276 | 615 | 749 |
| पं. बंगाल | 54 | 48 | 80 | 82 | 200 | 600 | 653 |
| आन्ध्र प्रदेश | 33 | 52 | 91 | 98 | 236 | 584 | 841 |
| केरल | 31 | 49 | 101 | 156 | 224 | 578 | 727 |
| राजस्थान | 39 | 53 | 97 | 120 | 237 | 577 | 718 |
| उड़ीसा | 56 | 54 | 120 | 113 | 207 | 536 | 897 |
| उत्तर प्रदेश | 25 | 32 | 72 | 132 | 237 | 535 | 803 |
| आसाम | 29 | 57 | 103 | 136 | 190 | 526 | 850 |
| बिहार | 25 | 40 | 67 | 85 | 155 | 456 | 626 |
| सम्पूर्ण | 38 | 51 | 92 | 142 | 262 | 687 | 1026 |
| भारत | | | | | | | |
| | | | | | | | |

म्रोतः Centre for Monitoring Indian Economy: Basic Statistics Relating to Indian Economy, Vol.2(States) 1989.

25.2 क्षेत्रीय असन्तुलन के सूचक

भारत में अनेक सामाजिक व आर्थिक कारक क्षेत्रीय असन्तुलन की ओर संकेत करते हैं जैसे कि राज्य घरेलू उत्पाद, प्रतिव्यक्ति आय, गरीबी रेखा से नीचे जनसंख्या, कृषि का विकास, औद्योगिक, परिवहन सुविधाओं व वाणिज्यिक सुविधाओं का विकास इत्यादि।

25.2.1 राष्ट्रीय आय व राज्य घरेलू उत्पाद

आजकल वित्त आयोग व योजना आयोग अर्न्तराज्यीय विषमताओं के अध्ययन के लिये राज्य घरेलू उत्पाद के आकड़ों का प्रयोग कर रहे हैं।

तालिका 25.2 1980–81 के मूल्यों पर विशुद्ध राज्य घरेलू उत्पाद

| | | | <i>γ</i> 3-4 | | , | |
|------------|------------------|-------|------------------|-------|------------|----------------|
| राज्य | 1980–81 के | स्थान | 1980–81 के | स्थान | गरीबी रेखा | प्रतिलाख |
| | मूल्यों पर प्रति | | मूल्यों पर प्रति | | से नीचे | जनसंख्या पर |
| | व्यक्ति विशुद्ध | | व्यक्ति विशुद्ध | | जनसंख्या | रोजाना |
| | राज्य घरेलू | | राज्य घरेलू | | 1987–88 | कारखाने में |
| | उत्पाद 1980– | | उत्पाद 1991– | | | कार्यरत श्रमिक |
| | 81 | | 92 | | | |
| पंजाब | 2674 | 1 | 3864 | 1 | 12.7 | 1400 |
| महाराष्ट्र | 2427 | 2 | 3440 | 3 | 40.1 | 1750 |
| हरियाणा | 2370 | 3 | 3456 | 2 | 16.6 | 1630 |
| गुजरात | 1948 | 4 | 2526 | 4 | 32.3 | 1890 |
| जम्मू– | 1776 | 5 | 1687 | 13 | 23.2 | NA |
| कश्मीर | | | | | | |
| हिमाचल | 1704 | 6 | 2074 | 7 | 15.5 | NA |
| प्रदेश | | | | | | |
| पं. बंगाल | 1611 | 7 | 2084 | 6 | 44.0 | 1510 |
| कर्नाटक | 1528 | 8 | 2171 | 5 | 38.1 | 1340 |
| केरल | 1510 | 9 | 1886 | 10 | 32.1 | 1080 |
| तमिलनाडु | 1498 | 10 | 2056 | 8 | 45.1 | 1400 |
| आन्ध्र | 1380 | 11 | 1839 | 11 | 27.2 | 910 |
| प्रदेश | | | | | | |
| मध्य | 1333 | 12 | 1588 | 16 | 43.4 | 750 |
| प्रदेश | | | | | | |
| उत्तर | 1278 | 13 | 1606 | 15 | 42.0 | 470 |
| प्रदेश | | | | | | |
| उड़ीसा | 1231 | 14 | 1652 | 14 | 55.6 | 400 |
| राजस्थान | 1222 | 15 | 1717 | 12 | 34.6 | 520 |
| | | | | | | |

| आसाम | 1200 | 16 | 1915 | 9 | 36.8 | 400 |
|----------|------|----|------|----|------|------|
| बिहार | 919 | 17 | 1142 | 17 | 53.4 | 600 |
| सम्पूर्ण | 1630 | | 2250 | | 39.3 | 1050 |
| भारत | | | | | | |

स्रोत : CMIE, Basic Statistics Relating to States of India, 1994. Draft Mid– term Appraisal of Viet five year Plan (1992–97); Report of the Expert Group on Estimation of Proportion and Number of Poor (1993)

इन ऑकड़ों से स्पष्ट होता है कि सबसे सम्पन्न राज्य पंजाब व सबसे निर्धन राज्य बिहार के बीच अन्तर का अनुपात 1980–81 में 2.9 से बढ़कर 1991–92 में 3.4, हो गया। इस काल में आसाम, कर्नाटक, तिमलनाडु, आदि राज्यों में स्थिति में सुधार हुआ। जैसे कि आसाम का स्थान 16 वें से बढ़कर 9 वां हो गया। कर्नाटक आठवें स्थान से उठकर पांचवें स्थान पर, राजस्थान पन्द्रहवें स्थान सें बढ़कर बारहवें स्थान पर तथा तिमलनाडु दसवें से आठवें स्थान पर आ गया। दूसरी ओर जम्मू कश्मीर में राजनैतिक अस्थिरता के कारण विकास दर इस काल में ऋणात्मक हो गई और यह राज्य पांचवे से तेरहवें स्थान पर हो गया। इसी प्रकार मध्य प्रदेश 12 वें से गिर कर 16 वे स्थान पर आ गया।

केवल चार राज्यों. पंजाब, हरियाणा, गुजरात व महाराष्ट्र में राष्ट्रीय आय के औसत से राज्य घरेलू उत्पाद अधिक है व अन्य सभी राज्यों में कम है । राज्य घरेलू उत्पाद व कृषिजन्य व उद्योग जन्य आय की वृद्धि दरें भी विभिन्न राज्यों के असमान वितरण की ओर स्पष्ट संकेत करती हैं ।

तालिका 25.3 वृद्धि दरों के सूचकांक (1970–71 के मूल्यों पर)

| राज्य | 1970–71 से 1980–81 | | | 1980-81 से 1985-86 | | | |
|-----------------|--------------------|--------------|--------------|--------------------|--------------|--------------|--|
| | राज्य घरेलू | कृषि में | उद्योगों में | राज्य | कृषि में | उद्योगों में | |
| | उत्पाद | मूल्य वृद्धि | मूल्य वृद्धि | घरेलू | मूल्य वृद्धि | मूल्य वृद्धि | |
| | | | | उत्पाद | | | |
| महाराष्ट्र | 5.4 | 6.0 | 6.4 | 3.1 | 0.1 | 3.8 | |
| पंजाब | 5.2 | 3.8 | 8.8 | 5.1 | 5.7 | 3.7 | |
| हरियाणा | 4.9 | 2.7 | 8.0 | 5.1 | 3.4 | 6.5 | |
| गुजरात | 4.7 | 3.6 | 5.8 | 1.1 | -2.9 | 2.0 | |
| कर्नाटक | 4.0 | 2.3 | 7.7 | 3.1 | 1.8 | 3.3 | |
| आंध्र प्रदेश | 3.3 | 1.5 | 6.0 | 4.1 | 0.5 | 7.0 | |
| बिहार | 3.1 | 1.1 | 2.7 | 4.3 | 3.3 | 6.2 | |
| उत्तर प्रदेश | 3.0 | 1.9 | 6.8 | 5.1 | 3.1 | 12.6 | |

| पं. बंगाल | 3.0 | 2.9 | 1.9 | 4.4 | 5.0 | 0.5 |
|-----------|-----|------|-----|-----|-----|------|
| उड़ीसा | 2.8 | 2.0 | 6.0 | 1.2 | 1.9 | 8.6 |
| तमिलनाडु | 2.8 | -0.2 | 6.3 | 6.9 | 2.1 | 3.3 |
| राजस्थान | 2.6 | 1.1 | 4.9 | 7.8 | 9.4 | 7.8 |
| मध्य | 1.9 | 0.7 | 5.6 | 6.0 | 4.4 | 8.5 |
| प्रदेश | | | | | | |
| केरल | 1.8 | 0.1 | 3.7 | 6.4 | 0.9 | -0.3 |

Source: Ruddandalt and KPM Sundaram Indian Economy who have compilet it from Ishar J Ahuluwalia and Krishna Stinivasan: Income and Growth A Regional Profile: Economic Times, February 25& 26, 1988.

इस तालिका से हम विभिन्न राज्यों के घरेलू उत्पाद की तुलनात्मक वृद्धि दर देख सकते है। कृषि और उद्योग उत्पादन के दो प्रमुख क्षेत्र है। विभिन्न राज्यों में इनकी विकास दर को देख कर हम राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के विकास के विषय मैं जानकारी प्राप्त कर सकते है।

1990–71 – 1980–81 के दौरान महाराष्ट्र, पंजाब, हिरयाणा, गुजरात व कर्नाटक राज्यों में तीव्रतम वृद्धि हुई। इन सभी में 4% से अधिक वृद्धि दर देखी गई। इन सभी राज्यों में औद्योगिकरण की दर लगभग 6% से 9%' रही मगर कृषि की धीमी विकास की गति के कारण कुल विकास दर कम हो गई। 1980–81 और 1985–86 के बीच महाराष्ट्र, गुजरात तथा कर्नाटक में कृषि विकास दर गिर गई जिससे राज्य घरेलू उत्पाद की कुल वृद्धि दर में भी काफी कमी आ गई। इन सभी राज्यों में सिंचाई के साधन पर्याप्त मात्रा में नहीं हैं इसलिये इन प्रदेशों को वर्षा पर निर्भर रहना पड़ता है एवं इनके भाग्य मानसून से जुड़े रहते है। पंजाब व हिरयाणा में क्योंकि कृषि विकास की दर ऊंची रही इसलिए यही राज्य घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर भी अधिक रही। पं. बंगाल, राजस्थान व मध्य प्रदेश में भी कृषि में विकास के कारण राज्य घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर अधिक रहा। दूसरी और केरल व उड़ीसा में कुछ विकास की दर कम होने से सम्पूर्ण वृद्धि दर भी कम रही। एक तो कृषि क्षेत्र का आर्थिक विकास में वैसे ही बहुत महत्व होता है। दूसरे निर्धन राज्यों मे औद्योगिकरण कम होने से कृषि क्षेत्र के परिवर्तनों का राज्य के सकल उत्पाद पर बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

25.2.2 प्रति व्यक्ति आय

न केवल राज्य घरेलु उत्पाद बल्कि प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से भी भारत के विभिन्न राज्यों में बहुत अन्तर है । उपर तालिका न.3 में हमने तीन आर्थिक सूचकांक देखे (1) प्रति व्यक्ति उत्पाद, (2) गरीबी रेखा से नीचे जनसंख्या व (3) कारखानों में कार्यरत श्रमिकों की संख्या

किसी राज्य की प्रति व्यक्ति आय को देख कर उस राज्य की आर्थिक स्थिति का अन्दाजा लगा सकते हैं । उपरोक्त तालिका में 1991–92 के आकड़े देखे तो राष्ट्र की औसत प्रति व्यक्ति आय 1980–81 के मूल्यों पर 2250रु. थी । केवल चार राज्यों की प्रति व्यक्ति आय उससे अधिक थी— पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र व गुजरात। इन राज्यों में कृषि व उद्योग दोनों क्षेत्र तीव्र गित से विकसित हुए हैं । 1971–72 से पहले पं. बंगाल तथा कर्नाटक भी अधिक आय वाले राज्य थे मगर उसके बाद इनकी विकास दर में कमी आ जाने से यह पिछड़ गये । पंजाब और हरियाणा सदैव अग्रणी रहे है । इसका मुख्य कारण है कुल बोये गये क्षेत्र के अनुपात में सिंचित क्षेत्र का अधिक होना । यह अनुपात पंजाब में 93% व हरियाणा में 73% है । इससे कृषि उत्पादन में तीव्र वृद्धि होने के कारण समस्त विकास दर व प्रति व्यक्ति आय ऊंची रही है ।

न्यूनतम आय वाले प्रदेश हैं बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, जम्मू कश्मीर व केरल । यह राज्य आरम्भ से ही सबसे अधिक निर्धन राज्य रहे हैं । एक और ध्यान देने योग्य तथ्य यह हैं कि पिछड़े व सम्पन्न राज्यों में न केवल आय में अन्तर है बिल्क यह अन्तर बढ़ भी रहा हैं । उदाहरणार्थ 1971–72 में पंजाब की प्रति व्यक्ति आय बिहार की तुलना में 2.7 गुणा अधिक थी, 1991–92 में 3.2 गुना हो गई थी । सो क्षेत्रीय अन्तर घटने के बजाय बढ़ गये है ।

25.2.3 गरीबी रेखा से नीचे जनसंख्या

गरीबी रेखा से नीचे जनसंख्या भी क्षेत्रीय असन्तुलन की द्योतक है । 1987–88 में न्यूनतम प्रति व्यक्ति आय वाले चार राज्यों में यह प्रतिशत संख्या अधिकतम थी । यह राज्य थे बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश व उत्तर प्रदेश । मगर कुछ राज्यों में प्रति व्यक्ति आय अधिक होते हुए भी जनसंख्या का काफी बड़ा हिस्सा गरीबी रेखा से नीचे रहता है जैसे महाराष्ट्र, कर्नाटक, पं.बंगाल व तमिलनाडु । इन प्रदेशों में गरीबी रेखा के नीचे अधिक जनसंख्या होने का मुख्य कारण यहां व अनुसूचित जनजातियों व आदिवासियों का होना है । गरीबी की रेखा से नीचे जनसंख्या पंजाब में न्यूनतम (12.7%) व उड़ीसा में अधिकतम (55.6%) है ।

राज्य घरेलू उत्पाद, प्रति व्यक्ति आय व गरीबी की रेखा से नीचे जनसंख्या— इन सभी सूचकांकों को देखने से अनुभव होता है कि देश के विभिन्न भागों में बहुत विषमताएं है व देश की अर्थव्यवस्था का विकास सन्तुलित रूप से नहीं हो रहा । यदि हम गरीबी की रेखा के नीचे की जनसंख्या के कुल जनसंख्या से अनुपात में 1973—74 व 1987—88 के बीच परिवर्तन देखें तो केरल में सबसे अधिक कमी आई है । कुल 27.63% या 2% वार्षिक व बिहार व उड़ीसा में सबसे कम परिवर्तन हु आ है क्रमशः 8.4% व 10. 63% कुल कमी या 0.6 व 0.7 प्रतिशत वार्षिक कमी।

इसी प्रकार प्रति लाख जनसंख्या में से कारखानों में कार्यरत जनसंख्या को भी देखा जाये तो विकसित राज्यों में यह संख्या भारत की औसत 1050 से अधिक व पिछड़े राज्यों में उससे कम है।

25.3 कृषि क्षेत्र

1981–82 के पश्चात अधिकतर राज्यों में कृषि उत्पाद से प्राप्त आय में ज्यादा तेजी से वृद्धि हुई और राज्य घरेलू उत्पाद में कृषि के भाग का बहुत योगदान रहा । पंजाब में यह वृद्धि दर 1968–69 से 1981–82 और 1981–82 से 1991–92 के बीच 2.93% से बढ़कर 4.77% और हरियाणा में 3.44% से बढ़कर 4.77% हो गई । केरल और तमिलनाडु में 1968–69 और 1991–92 के बीच जहां कृषि से प्राप्त आय में नगण्य वृद्धि हुई 1981–82 और 1991–92 के बीच क्रमशः 2.75% व 3.66% वृद्धि हुई । कर्नाटक में यह दर केवल 2.47% से बढ़कर 3.21% हो पाई । आघ्र प्रदेश में तो यह दर 2.48% से गिर कर 1.81% रह गई ।

पश्चिमी राज्यों में कृषि से प्राप्त राज्य घरेलू उत्पाद में इस काल में वृद्धि नहीं बल्कि कमी आ गई । गुजरात में यह दर 3.23% से गिर कर शून्य रह गई और महाराष्ट्र में 4.48% से गिर कर 2.24% हो गई । शेष सभी राज्यों में कृषि से प्राप्त घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर 1970 की अपेक्षा 1980 के दशक में अधिक रही । पश्चिम बंगाल में तो उल्लेखनीय वृद्धि हुई जहां यह दर 2.46% से बढ़ कर 6.88% हो गयी । मध्यप्रदेश में इस काल में यह 0.67% से बढ़ कर 2.51%, राजस्थान में 3.11% से बढ़ कर 4.91%, उत्तर प्रदेश में 2.14% से बढ़ कर 3.34%, आसाम में 1.72% से बढ़ कर 2%, बिहार में 1.39% से बढ़कर 2.34% व उड़ीसा ने 2.57% से बढ़कर 3.4% हो गई ।

कृषि उत्पादन में बहुत प्रादेशिक असन्तुलन दिखाई देता है । कुछ ही राज्य जैसे पंजाब, हिरयाणा, पं. बंगाल, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश व तमिलनाडु जहां सिंचाई की अच्छी सुविधाएँ उपलब्ध थी, नई कृषि तकनीकी का लाभ उठा पाये व कृषि क्षेत्र में उन्नति कर पाये । यही राज्य आज भारत में सर्वाधिक कृषि अतिरेक उत्पन्न करते हैं । यही राज्य देश के सार्वजनिक वितरण प्रणाली के आधार हैं दूसरी ओर पूर्वी व उत्तरी पूर्वी राज्यों में कृषि विकास की दर बहुत धीमी रही है । इन राज्यों के विकास न कर पाने का मुख्य कारण है कि इन राज्यों में आदिवासी जनसंख्या का एक बड़ा अनुपात रहता है जो आमतौर पर अलग—थलग रहना पसन्द करते हैं व झूम खेती करते हैं । इन्होंने कृषि की नई विधियों का अपनाने का कभी प्रयत्न नहीं किया । वैसे भी इन राज्यों में अधिकतर क्षेत्र पहाड़ी इलाकों में हैं जहां उपरिव्यय (Infrastructure) बनाना कठिन व महंगा पड़ता है । राज्य सरकारों ने भी इन क्षेत्रों के विकास दर अधिक ध्यान नहीं दिया । शायद इसलिए कि आदिवासी राजनैतिक सत्ता में कोई आवाज नहीं उठा पाते व अपनी आर्थिक समस्याएं व माँगे सरकार के सामने नहीं रख पाते ।

25.4 औद्योगिक क्षेत्र

भारत में आधुनिक औद्योगिकरण का विकास उन्नीसवीं शताब्दी के द्वितीय अर्ध में आरम्भ हुआ। 1853 में बम्बई में प्रथम सूती कपड़ा मिल, रिश्रा में 1859 में पहली जूट मिल, रानीगंज में 1854 में कोयले का खनन, 1857 में आसनसोल के पास कुलटीं। में लोहा व इस्पात उदयोग व 1852 में पहले चाय के कारखाने की स्थापना के साथ भारत में उदयोगों का

अविर्भाव हुआ । 1853 में रेल यातायात की शुरुआत के साथ वस्तुओं का परिवहन तीव्र, आसान व स्रक्षित हो जाने मे देश में उदयोगों को और बढावा मिला।

यद्यपि कच्चे लोहे का उत्पादन 1857 में कुलटी मे शुरु हो चुका था, बड़े पैमाने पर लोहा—इस्पात का उत्पादन 1911 में टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड से आरम्भ हु आ। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद कुछ उद्योगों को विशेषत : चीनी व सूती कपड़ा उद्योगों को संरक्षण मिलने की वजह से इनके उत्पादन में तीव्र वृद्धि आई । भारत में चाय उद्योग जो मुख्यत: अंग्रेजी पूंजी की सहायता से ही विकसित हु आ, पिछली शताब्दी के अन्त तक संसार का सबसे बड़ा निर्यातक बन गया । सो द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले भारत सूती कपड़ा व चीनी का बड़ा उत्पादक तथा चाय और पटसन वस्तुओं का निर्यातक बन गया था । द्वितीय महायुद्ध के कारण आवश्यक युद्ध वस्तुओं के आयात बन्द हो गये । अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्रों की आवश्यकता की पूर्ति के लिये अनेक प्रकार के इस्पात मिश्रित धातुओं (alloys) व रसायन, मशीन दूल व अन्य मशीनें व साईकिलों का उत्पादन देश में आरम्भ हो गया ।

1947 में देश के विभाजन से हमारे सूती कपड़ा व पटसन उद्योगों को गहरा आघात पहु चा, क्योंकि बढ़िया कपास व पटसन उगाने वाले क्षेत्र पाकिस्तान के पास चले गये जिससे हमारे कारखानों को बढ़िया कपास व पटसन की आपूर्ति बंद हो गई । इन दोनों उद्योगों का उत्पादन आवश्यकता से बहुत कम हो गया ।

1951 में भारत ने आयोजित विकास श्रू किया । प्रथम पंचवर्षीय योजना प्रथम अप्रैल 1951 को शुरू की गई । इस योजना में भारत सरकार नें अधिक ध्यान कृषि विकास की ओर दिया । औद्योगिक विकास कुछ अधिक नहीं हुआ । मगर द्वितीय योजना, जो 1 अप्रैल 1956 से श्रू हुई, में उदयोगों पर ज्यादा जोर दिया गया । 1956 में इस दवितीय योजना के साथ ही साथ औद्यौगिक नीति प्रस्ताव पारित किया गया । इसके अनुसार देश के विभिन्न भागों में उदयोगों का निकास या संकेन्द्रीकरण (या उनका अभाव) कच्चे माल या प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धि पर निर्भर करना है । साथ ही उर्जा, जल व परिवहन स्विधाओं का किसी क्षेत्र में विकास भी वहां के औदयोगिकरण को प्रभावित करता है । इसलिये इस प्रस्ताव के दवारा राष्ट्रीय आयोजन द्वारा प्रयत्न किया गया कि जिन क्षेत्रों में औद्योगिकरण कम हुआ था या जहां अधिक रोजगार उपलब्ध कराने की आवश्यकता थी वहाँ अगर स्थान उपयुक्त हो. तो यह सब स्विधाएँ उपलब्ध कराई जाये। सो सरकार ने उद्योगों कें लिये कच्चा माल व मशीने आयात करने के लिये स्विधाएँ दीं, व नये उद्योगों को संरक्षण प्रदान करके औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन दिया । परिणामस्वरूप औद्योगिक उत्पादन का सूचकांक (आधारवर्ष1960=100), 1951 में 54.8 से बढ़कर 1961 में 109.2, 1966 में 153.2, 1970 में 180.8, 1972 में 199.4 हो गया । 1980-81 को आधारवर्ष (=100) मानने हुए 1989-90 में यह सूचकांक 196 हों गया ।

इस प्रकार योजना काल में भारत में उद्योगों का बहुत विकास हुआ मगर यहां भी फिर वही क्षेत्रीय असंतुलन देखने में आता है। देश के विभिन्न हिस्सों में उद्योगों का विकास बहुत असमान तरीके से हुआ है। इसके कुछ मुख्य कारण इस प्रकार से हैं –

- (1) उद्योगों के लिए कृषिजन्य कच्चा माल व धातुएँ बहु त असमान रूप से उपलब्ध है,
- (2) अधिक गहन जनसंख्या वाले प्रदेशों में बाजार का विस्तृत आकार व सस्ते श्रम की उपलब्धि के कारण वहाँ औद्योगिकरण अधिक होता है व इसलिए पहाड़ी इलाकों में आमतौर पर कम औदयोगिकरण हुआ है।
- (3) कोयला जो कि उर्जा का मुख्य साधन है देश के उत्तरी पूर्वी भाग में उपलब्ध है।
- (4) जल विश्रुत शक्ति का विकास कुछ हिमालय की तलहटी के क्षेत्रों में पश्चिमी घाट व कुछ अन्य क्षेत्रों में हुआ है।

इसलिए भारत मे विभिन्न कारणों से औद्योगिकरण की गति में बहुत अन्तर है। केन्द्रीय सरकार द्वारा विभिन्न परियोजनाओं में बड़ी मात्रा में विनियोग किया गया कि इनका प्रभाव छोटे और सहायक (ancillary) उद्योगों के विकास पर पड़ेगा। मगर अनेक राज्यों, जैसे बिहार, उड़ीसा व मध्य प्रदेश में ऐसा नहीं हुआ। निवेशकर्ता सामान्यतः वहां निवेश करते हैं जहां उन्हें लाभ अधिक हो और इसके लिये आवश्यक है कि उस स्थान पर उपरिव्यय व अन्य सुविधाएं जैसे बैंकिंग, इंश्योरेंस परिवहन, उर्जा, जल इत्यादि उपलब्ध हो व साथ ही बाजार भी पास हो।

हाल के एक अध्ययन से पता चला है कि भारत में औद्योगिकरण की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार है :

- 1) पिछले कुछ वर्षो में अन्तर्राज्यीय विषमताएं बढ़ी है।
- 2) विकसित राज्यों के अन्दर विभिन्न क्षेत्रों के बीच अन्तर कम हुए है; और
- 3) अल्पविकसित राज्यों में राज्यों के विभिन्न भागों के बीच अन्तर बढ गये है।

देश के विभिन्न क्षेत्रों के अधिक या कम औदयोगिकरण होने के अनेक विभिन्न कारण देखने में आते है देश के अनेक भागों में बाक्साईट के अलावा कोई धात् उपलब्ध नहीं है। उत्तरी-पूर्वी पठार धातुओं में सम्पन्न है। लोहा इस्पात, इलम्नियम, सिमेंट, ताम्बा आदि बनाने के लिये कच्चा लोहा, बाक्साईट, चूना, पत्थर, मैगनीज इत्यादि बहुत मात्रा में उपलब्ध है। उत्तरी पूर्वी आसाम व कुछ तटीय स्थानों पर कच्चा तेल उपलब्ध है जो कि बिहार व ग्जरात में साफ किया जाता है। जिन क्षेत्रों में धातुएँ नहीं है वहां कृषिजन्य कच्चा माल प्रचुर मात्रा में प्राप्त है। गुजरात के मैदानी क्षेत्र, कपास व मुँगफली के मुख्य उत्पादक हैं जो यहां सूती कपड़ा उद्योग व तेल उद्योग के लिये अग्रणी प्रदेश है। पश्चिमी बंगाल में बूट कपड़ा उद्योग का विकास हु आ। पंजाब व हरियाणा क्षेत्रों में होजरी व सूती कपड़ा उदयोग तथा चीनी उदयोग व बिहार व उत्तर प्रदेश में चीनी, सूती कपड़ा व चमड़ा उद्योग प्रमुख है। सूती कपड़ा उद्योग तमिलनाडु में भी पाया जाता है। केरल में नारियल के छिलके व कॉयर (coir) के सामान का व काजू उदयोग विशिष्ट, है। बम्बई क्षेत्र का विकास औदयोगिक क्षेत्र के रूप में हुआ क्योंकि उसके पास समुद्री बन्दरगाह की सुविधा थी। और देश के अन्य हिस्सों से यह रेल व सड़क यातायात से जुड़ा हु आ था। सो इस क्षेत्र में सूती कपड़ा, रसायन, फार्मास्यूइटकल, सिन्थेटिक कपड़ा, औद्योगिक मशीने, बिजली के उपकरण, स्वचलित वाहन, प्लास्टिक का कच्चा माल व तैयार सामान व रबड़ की वस्तुएँ व पेट्रोलियम पदार्थों के उद्योगों का सम्चित विकास हु आ।

औद्योगिक विकास में दूसरा स्थान कलकत्ता के आसपास के क्षेत्र का है। पटसन उद्योग वहां प्रमुख उद्योग है। नदी बन्दरगाह, रानीगंज कोयला खानों का सामीप्य व पास के क्षेत्रों में लोहा—व इस्पात उपलब्ध होने के कारण यहां इन्जिनियरिग व विद्यूत उद्योग भी पनपे। उड़ीसा व पहाड़ी इलाकों में बाँस की उपलब्धि के कारण कागज उद्योग का भी विकास हु आ। साथ ही यहां स्वचलित वाहन, रसायन, रबड़ व औद्योगिक मशीनों के उद्योग भी पाये जाते है।

दक्षिण में बंगलौर क्षेत्र में उद्योगों का काफी विकास हुआ। हवाई जहाज, विद्यूत मशीने, रेल के डिब्बे मशीन टूल व घड़ियों का उत्पादन इस क्षेत्र में होता है कोइम्बटूर में सूती कपड़ा, पम्प. स्वचिलत वाहनों के हिस्से पूर्जे, विद्युत का सामान आदि के उद्योग है । मद्रास में रेल के डिब्बे, रबड़ की वस्तुएं, बिजली की मशीनें, स्वचिलत वाहन, मोटर साईकिल, औद्योगिक मशीनों व रसायन के उद्योग पाये जाते हैं । इसके अलावा यहां चमड़े की रंगाई का काम, कच्चे तेल की सफाई, उर्वरकों व बिढ़या किस्म के कपड़े का भी उत्पादन होता है ।

बिहार के पठार व पश्चिमी बंगाल का उड़ीसा में लोहा, कोयला व अन्य धातुएँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है इसलिये वहां लोहा और इस्पात उदयोग अत्यन्त विकसित है ।

1991–92 में प्रति व्यक्ति उद्योगों से प्राप्त मूल्य वृद्धि (Value Added), महाराष्ट्र व गुजरात में अधिकतम थी दुसरे छोर पर बिहार व उत्तर प्रदेश में न्यूनतम मूल्य वृद्धि प्रति व्यक्ति थी और गुजरात व महाराष्ट्र के स्तर से 1/4 या 1/5 हिस्सा था । हरियाणा, कर्नाटक, तिमलनाइ तथा पश्चिमी बंगाल कही मध्य में थे ।

तालिका 25.4 1992–93 के उदयोगों का क्षेत्रीय स्थानीकरण (प्रतिशत)

| राज्य | कारखानों की संख्या | रोजगार | रोजगार | मूल्यवृद्धि |
|-----------------------|--------------------|--------|--------|-------------|
| महाराष्ट्र | 13.8 | 14.7 | 21.2 | 22.9 |
| तमिलनाडु | 14.8 | 12.3 | 10.3 | 10.2 |
| गुजरात | 9.4 | 8.3 | 11.2 | 11.3 |
| पश्चिमी बंगाल | 4.9 | 8.7 | 5.6 | 5.9 |
| आन्ध्र प्रदेश | 14.6 | 10.7 | 6.8 | 6.0 |
| कर्नाटक | 5.2 | 5.0 | 4.8 | 5.8 |
| इन छ : राज्यों का योग | 62.7 | 57.7 | 59.9 | 62.0 |
| समस्त भारत | 100 | 100 | 100 | 100 |

स्रोत : रुद्रदत्त एवं सुन्दरम Indian Economy p.438 New Delhi, 1997 ।

25.5 सेवा क्षेत्र

भारतीय रेलवे यद्यपि काफी विकसित है मगर अभी भी देश के आर्थिक विकास के लिये पर्याप्त रूप से विकसित नहीं है । रेल की पटरियां बिछाने का कार्य मुख्यत : लोगों के यातायात व कृषि व उपभोक्ता वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाने ले जाने के लिये

किया गया । इसिलिये आर्थिक विकास की नई चुनौतियों के लिये पर्याप्त नहीं है । देश के खिनज एवं वन संसाधनों के पूर्ण उपयोग व अनेक दूर दराज के प्रदेशों को देश के अन्य भागों से जोड़ने के लिये अभी रेलों के जाल का और विस्तार करने की आवश्यकता है । अब तक बड़े मैदान व गुजरात और तिमलनाडु में रेलों का पर्याप्त विकास हुआ है मगर देश के पूर्वी भागों में जिसमें नागालैड. मेघालय, मनीपुर, त्रिपुरा, मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम शामिल है, में रेल यातायात का अधिक विकास नहीं हुआ। इसी प्रकार जम्मू कश्मीर व हिमाचल प्रदेश भी रेल के माध्यम से देश के अन्य भागों से अभी तक नहीं जुड़े।

सड़क यातायात आधुनिक समाज का मुख्य एवं आधारभूत यातायात का साधन है। जहां रेल केवल महत्वपूर्ण क्षेत्रों में ही जाती है, सड़के गावों व शहरों, ग्रामीण व नागरिक क्षेत्रों, कारखानों, खेतो, खदानों को जोड़ती है। यद्यपि हमारी योजनाओं के अनुसार मैदान में 2000 जनसंख्या वाली बस्ती, अर्धपर्वतीय क्षेत्रों में 1000 जनसंख्या वाली बस्ती व पर्वतीय क्षेत्रों में 500 जनसंख्या वाली बस्ती को कच्ची सड़कों से जोड़ने का प्रस्ताव है। अभी भी जनसंख्या के अनुपात में सड़क परिवहन व्यवस्था बहुत विकसित नहीं हो सकी। 1960–61 व 1990–91 के बीच केरल, दिल्ली, महाराष्ट्र, उड़ीसा, तमिलनाडु व पांडेचेरी में सड़कों का विस्तार सबसे अधिक हु आ है। गुजरात, बिहार, मध्यप्रदेश, मणीपुर, मिजोरम, राजस्थान, त्रिपुरा, उत्तर प्रदेश व पं. बंगाल में सड़कों की लम्बाई दो से पांच गुणा तक बढ़ी है।

25.6 आयोजन और क्षेत्रीय असन्तुलन

प्रथम पंचवर्षीय योजना में क्षेत्रीय असन्तुलन पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। दूसरी योजना में, जैसा हमने उपर देखा, 1956 में औद्योगिक नीति प्रस्ताव में क्षेत्रीय विकास की आवश्यकता पर जोर दिया गया। द्वितीय और तृतीय योजनाओं में कम विकसित क्षेत्रों में आधारभूत उद्योग लगाने की बात की गई बशर्त्त कि वहां आवश्यक तकनीकी व आर्थिक सुविधाएँ उपलब्ध हो। मंगर शीघ्र ही देखने में आया कि सार्वजनिक क्षेत्र की परियोजनाओं का कोई अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। इस प्रकार प्रथम तीन योजनाओं में तो क्षेत्रीय असन्तुलन को कम करने का कोई विशेष प्रयास नहीं किया गया, और जो किया गया उसमें विशेष सफलता नहीं मिली।

चौथी योजना में औद्योगिक रूप से पिछड़े प्रदेशों को चिन्हित करने का प्रयत्न किया गया। 1968 में राष्ट्रीय विकास समिति (National Development Council) ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये पांच आधार सुझाए :

- 1) कुल प्रति व्यक्ति आय व कृषि व खनन का योगदान
- 2) प्रति एक लाख जनसंख्या में से कारखानों में कार्यरत श्रमिकों की संख्या
- 3) विश्रुत उर्जा का प्रति व्यक्ति वार्षिक उपभोग
- 4) राज्य की जनसंख्या व क्षेत्रफल को देखते हुए पक्की सड्कों की लम्बाई; तथा
- 5) राज्य की जनसंख्या व क्षेत्रफल को देखते हुए रेल पटरियों की लम्बाई।

राष्ट्रीय विकास समिति ने दो कार्यवाही समितियाँ बनाई— एक तो उपरोक्त पांच आधारों पर पिछड़े क्षेत्र चिन्हित करने के लिये व दूसरी इन क्षेत्रों में उद्योगों के विकास के लिये वित्तीय व पूंजीगत प्रोत्साहनों के विषय में सुझाव देने के लिये।

प्रथम समिति ने जिन राज्यों को पिछड़ा हु आ माना वे थे आन्ध्र प्रदेश, आसाम, बिहार, हिमाचल प्रदेश, जम्मू—कश्मीर, मध्य प्रदेश, नागालैंड, उड़ीसा, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश, व चन्डीगढ व दिल्ली के अतिरिक्त अन्य सब संघीय क्षेत्र (Union Territories) इस समिति ने प्रत्येक राज्य में पिछड़े जिलों की पहचान के लिये निम्नलिखित सूचक बताये:

- (1) जो जिले बड़े शहरों से औद्योगिक परियोजनाओं से 50 मील दूर की परिधी से बाहर हो
- (2) जिनकी प्रति व्यक्ति आय राज्य की औसत प्रतिव्यक्ति आय से कम से कम् 25% कम हो;
- (3) जिनमें द्वितीय व तृतीय क्षेत्र में जनसंख्या का राज्य के औसत से 25% से कम भाग लगा हो;
- (4) जिनमें कारखानों में राज्य औसत से 25% से कम जनसंख्या को रोजगार प्राप्त हो;
- (5) जहां प्राकृतिक व आर्थिक संसाधनों का अधूरा उपयोग हो या उपयोग बिल्कुल न हो; तथा
- (6) जहां बिजली पानी, परिवहन, व संचार जैसी सुविधाओं की अपर्याप्त पूर्ति हो।

चौथी योजना में इस कार्यवाही समिति ने देश में 20 से 30 क्षेत्र बताये जहां विकास की सम्भावना थी । उन्होंने इन क्षेत्रों को विशेष प्रोत्साहन दिये जाने का सुझाव दिया । मगर राज्य सरकारें चाहती थी कि उनके कुछ क्षेत्र पिछड़े हुए ही घोषित हों ताकि उनके लिये उन्हें विशेष रियायतें मिले । इसलिये राज्य सरकारों ने इस कार्यवाही समिति द्वारा दिये गये सुझावों को ठुकरा दिया।

तब योजना अयोग ने विभिन्न राज्यों में पिछड़े क्षेत्रों की पहचान के लिये निम्नलिखित आधार बताये :-

- 1) प्रति व्यक्ति खाधान्न व अखाद्यान्न फसलों का उत्पादन;
- 2) कृषि श्रम का कुल जनसंख्या में अनुपात
- 3) प्रति व्यक्ति औद्योगिक उत्पादनः
- 4) प्रति एक लाख जनसंख्या में से कारखानों में कार्यरत जनसंख्या का अनुपात;
- 5) प्रति एक लाख जनसंख्या में से द्वितीय व तृतीय क्षेत्र में लगी जनसंख्या;
- 6) प्रति व्यक्ति विधुत उर्जा उपयोग; तथा
- 7) जनसंख्या को देखते हुए सड्कों या रेल पटरियों की लम्बाई ।

इन आधारों पर एक सूचकांक बनाया गया । इस सूचकांक को देखते हुए योजना अयोग ने 246 क्षेत्रों को पिछड़ा हुआ और वित्तीय सहायता व अन्य सुविधाओं को प्राप्त करने योग्य निर्धारित किया । इनमें से 118 क्षेत्रों में कोई उद्योग नहीं थे। दूसरी कार्यवाही समिति ने पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिकरण के लिये वित्तीय प्रोत्साहन देने के लिये कुछ उपाय सुझाये जैसे कि पिछड़े क्षेत्रों में लगे उद्योगों को अधिक विकास छूट देना, उन्हें पांच वर्षों तक निगम आय कर तथा बिक्री कर से मुक्ति, उनके द्वारा आयातित मशीनों व उपकरणों पर आयात कर पर मुक्ति व उन्हें परिवहन सहायता देना।

सरकार ने इन सुझावों को शीघ्र ही कार्यान्वित कर दिया ।

छठी पंचवर्षीय योजना काल (1980–85) में 1980 में पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिये एक विशेष उच्च स्तरीय राष्ट्रीय समिति (National Committee for Development of Backward Areas, NCDBA) का गठन किया गया। इस समिति को भी पिछड़े क्षेत्रों को चिन्हित करने व उस समय पिछड़े क्षेत्रों के लिये चलाई जा रही परियोजनाओं व प्रोत्साहनों का जायजा लेने का कार्यभार सौंपा गया । इस समिति ने सुझाव दिये कि केन्द्र व राज्य, दोनों में पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिये एक उपयोजना (Sub Plan) होनी चाहिये, स्थानीय आयोजन के लिये विशेष धनराशि दी जाये व विशेष समितियाँ इन योजनाओं को कार्यरूप देने के लिये गठित की जायें व इस बात पर ध्यान दिया जाये कि इस प्रयोजन के लिये दी गई राशि का उपयोग अन्य कार्यो, वस्तुओं या क्षेत्रों के लिये न किया जाये । एक और सुझाव यह था कि क्योंकि विकास विभागों के कार्यकर्ता पिछड़े क्षेत्रों में जाना नही चाहते क्योंकि वहां शिक्षा, स्वास्थ्य, मकान, आदि की सुविधाएं उपलब्ध नहीं होती, उन्हें इन इलाकों में जाकर काम करने के लिये विशेष प्रोत्साहन दिये जायें ।

सातवीं योजना (1985 –90) और आठवीं योजना में प्रादेशिक सन्तुलन पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया सिवाय इसके कि पूर्वी राज्यों, कम वर्षा वाले क्षेत्रों, पहाड़ी इलाकों व आदिवासी क्षेत्रों में कृषि उत्पादन में वृद्धि लाने का प्रयत्न किया गया। इसके अतिरिक्त न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (Minimum Needs Programme) पर जोर देने का व मानव संसाधनों का विकास करने का भी प्रयत्न किया गया ताकि समन्वित विकास हो सके।

25.7 प्रादेशिक असमानताएं कम करने के लिये किये गये उपाय

भारत में प्रादेशिक असमानताओं को दूर करने के लिये अनेक कदम उठाये जा रहे हैं-

- (1) केन्द्र सरकार द्वारा राज्यों को संसाधन देते समय पिछड़े वर्गों के लिये अधिक धनराशि देना।
- (2) ऐसी परियोजनाओं को प्राथमिकता देना जो सबसे कम समय में सबसे अधिक क्षेत्र में लागू हो सकें व विकास ला सके ।
- (3) औद्योगिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य व रोजगार इत्यादि की सुविधाएं उपलब्ध कराना।
- (4) छोटे व ग्रामीण उद्योगों का विस्तार लगभग सभी राज्यों में औद्योगिक केन्द्र स्थापित किये गये हैं जो कि अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों में है ।
- (5) बड़े उद्योग लगाते समय भी यह प्रयत्न किया गया है कि यथासम्भव यह पिछड़े क्षेत्रों में लगाये जायें ।

यद्यपि बड़े, पूंजीगत उद्योग लगाते समय तो शायद कच्चे माल के स्त्रोत का सामीप्य आवश्यक है मगर उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योग तो लगभग सभी जगह लगाये जा सकते हैं। अतः कपड़ा, सिलाई की मशीनें, रेडियो, टी.वी., साईकिलें, प्लास्टिक का सामान, दवाईयाँ जैसे अनेक उद्योग लगा कर पिछड़े प्रदेशों का विकास किया जा सकता है। इसी दिशा की ओर भारत में कदम उठाये गये हैं।

मगर इन उपायों के पूर्ण रूप से कार्यान्वित होने में कुछ समस्याएं सामने आती हैं। पहला तो यह कि यह योजनाएं कहां तक वास्तव में लागू की जा रही है इसके विषय में कुछ सूचना नहीं प्राप्त होती। दूसरे देखने—सुनने में पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिये दी गई राशि बहुत अधिक लगती है मगर प्रति व्यक्ति व्यय के रूप में बहुत कम बैठती है। तीसरे पिछड़े वर्गों को चिन्हित करने के लिये उनके लिये आय कर छूट या निवेश सहायता देने के लिये कोई एक जैसा व नियमित नियम नहीं है।

25.8 संतुलित विकास के उपाय

इसलिये राज्यों के सन्तुलित विकास के लिये कुछ विशेष उपाय आवश्यक हैं : राजकृष्णा ने इसके लिये तीन सुझाव दिये है :

- (1) उपरिव्यय (Infrastructure) सुविधाओं का विस्तार किया जाये जैसे जल, बिजली, परिवहन आदि ।
- (2) नियोजन का विकेन्द्रीकरण करके राज्य स्तर पर आयोजन किया जाये; तथा
- (3) वित्तीय संसाधनों का राज्यों में आवण्टन करने का आधार बदला जाये। यह आवण्टन चार आधारों पर किया जाता है— (अ) जनसंख्या, (व) राज्य द्वारा कर प्राप्ति, (स) पिछड़ेपन का कोई सूचकांक, व (ड) सिंचाई या उर्जा परियोजनाओं पर किया जाने वाला व्यय।

इनमें से दूसरे व चौथे आधार का विपरीत असर होता है। कर प्राप्ति व परियोजना पर व्यय अधिक ज्यादा प्रति व्यक्ति आय वाले क्षेत्रों में होगा इसलिए उन्ही को अधिक वित्तीय संसाधन भी प्राप्त होते हैं । व वास्तव में पिछड़े क्षेत्रों को कम साधन ही प्राप्त हो पाते है। इसलिये इन आधारों में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है।

25.9 सारांश

इस अध्ययन से यही देखने में आता है कि भारत में क्षेत्रीय असमानताएं बहुत है व योजनाकाल में इसमें कोई विशेष कमी नहीं आई। अपितु अनेक क्षेत्रों में इनमें वृद्धि हो गई है। आश्चर्य और खेद की बात यह है कि यद्यपि सरकार ने इस दिशा में छुटपुट उपाय किये है मगर लगन से एकजुट हो कर कोई विशेष प्रयास नहीं किये गये। आठवीं योजना के पश्चात फिर इस ओर सरकार बहुत कम ध्यान दे रही है। समस्या गम्भीर है— उस पर गम्भीरता से गौर होना चाहिये व गम्भीरता से उस समस्या का हल ढूँढना चाहिये। अभी इस दिशा में बहुत कुछ करना बाकी है।

25.10 निबन्धात्मक प्रश्न

- 1) भारत में विभिन्न क्षेत्रों के असन्तुलित विकास के क्या कारण हैं? इस असन्तुलन को दूर करने के लिये किये गये उपायों का विवेचन करें।
- 2) विभिन्न क्षेत्रों के विकास के स्तर का अनुमान लगाने के लिये किन सूचकांकों का प्रयोग किया जा सकता है? इन सूचकांकों के अनुसार भारत के विभिन्न राज्यों में क्या विषमताएं पाई गई है?
- 3) भारत में योजना काल में विभिन्न क्षेत्रों में सन्तुलित विकास लाने के लिये क्या कदम उठाये गये है? यह उपाय किस सीमा तक सफल हुए है, विवेचन करें।
- 4) भारत में योजनाकाल में विभिन्न क्षेत्रों के सन्तुलित विकास पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया क्या आप इस बात से सहमत है? अपने उत्तर के पक्ष में तर्क दें।

25.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- 1) Ruddar Datt and K PM Sundharam: Indian Economy 36th and 37th Edition; s. chand and Co., New Delhi, 1997
- 2) IC Dhingra– The Indian Economy; Sultan Chand and Sons, Delhi 1997
- Sharma T C and C Coutino: Economic and Commercial Geography of India, Vikas Publishing house Delhi, 1996
- 4) Gopal Singh: A Geography of India, Atma Ram & Sons, Delhi 1970
- 5) Planning Commission : तृतीय पंचवर्षीय योजना योजना आयोग छटी पंचवर्षीय योजना सातवी पंचवर्षीय योजना आठवी पंचवर्षीय योजना
- 6) Indian Economic Association—Balanced Regional Development; conference Number 1969 and 1974
- 7) A Vaidya Nathan -Poverty and Economy: The Regional Dimension in Barbara Harrio (etal(eds):Poverty in India; oup Bombay 1992
- 8) Susheela Subrahmanya & MVSrinivasa Gowda (eds)–Regional Econonomic Development in India (Deep, ND,1995)

इकाई-26

भारत में बहु—स्तरीय नियोजन (राज्य स्तर तथा जिला स्तर नियोजन के विशेष संदर्भ में)

इकाई की रूपरेखा

- परिचय
- 26.0 उद्देश्य
- 26.1 प्रस्तावना
- 26.2 विश्व-अर्थव्यवस्थाओं में पायी जाने वाली विभिन्न प्रकार की नियोजन व्यवस्थायें अथवा प्रणालियाँ
 - 26.2.1 साम्यवादी बनाम प्रजातांत्रिक नियोजन
 - 26.2.2 अधिकारात्मक नियोजन बनाम मार्ग निर्देशात्मक या दिशा निर्देशात्मक नियोजन
 - 26.2.3 केन्द्रित बनाम विकेन्द्रित नियोजन
- 26.3 पिछड़े क्षेत्रों और अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए नियोजन तकनीक
- 26.4 भारत में नियोजन की विधियाँ और संगठन
 - 26.4.1 भारत में पंचवर्षीय योजना निर्माण की अवस्थायें
 - 26.4.2 नियोजन के प्रकार या विधियां
- 26.5 सारांश
- 26.6 शब्दावली
- 26.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

26.0 उद्देश्य

भारत जैसी, एक अर्द्ध विकसित अर्थव्यवस्था अनेक क्षेत्रीय असन्तुलनों से ग्रसित होती है । यह क्षेत्रीय असन्तुलन अनेक कारणों, परिस्थितियों, दुराग्रहों व कुत्सित एवं स्थितियों के साम्हिक फल हैं जो कालान्तर में अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन के पर्यायवाची बन जाते है । इन क्षेत्रीय असन्तुलनों के रहते कोई वास्तविक आर्थिक विकास तथा परिवर्तन सम्भव नहीं है । इसलिए इन्हें कम करना तथा शनै :शनै : समाप्त करना, अर्थव्यवस्था की आवश्यकता भी है और अनिवार्यता भी । इन क्षेत्रीय असन्तुलनों के बारे में विशेष बात यह है कि विषमताओं तवा विविधताओं के इस देश में यह असन्तुलन एक प्रकार के, एक स्वरूप के, एक प्रकृति के, एक आकार के और एक समस्या से ही सम्बन्धित नहीं होते बल्कि अलग—अलग और भिन्न—भिन्न होते है । इनसे निपटना भी एक चुनौती है । और इस चुनौती का सामना किये बिना विकास तथा प्रगति सम्भव नहीं । इस प्रक्रिया में राष्ट्रीय सोच, समय व साधन सभी का समन्वित प्रयोग, योगदान व सूझबूझ अनिवार्य हो जाता है । इसके लिए योजनाबद्ध तरीके से काम करना होता है । बस यही से अर्थव्यवस्था के विकास की नियोजित व्यवस्था प्रारम्भ हो जाती है ।

इसी कारण से एक नियोजित आर्थिक प्रक्रिया एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था में स्थायी तथा प्रावैगिक विकास लाने के लिए, एकल महामन्त्र सिद्ध होता है।

संसार की लगभग सभी अर्थव्यवस्थायें अपने विकास के लिए नियोजन का सहारा लेती है और आर्थिक इतिहास इस बात का साक्षी है कि उन्होंने नियोजित अर्थव्यवस्था का सहारा लिया है।

प्रो. रोबिन्स ने कहा है "यदि स्पष्ट व सख्त शब्दों में कहें तो कहना होगा कि समस्त और सम्पूर्ण आर्थिक जीवन में कहीं न कहीं नियोजन अनिवार्य रूप से अन्तर्निहित है । योजना बनाने का अर्थ है कि एक च्ने हूए उद्देश्य के साथ और अनुसार कार्य करना तथा चयन, आर्थिक क्रिया का निचोड़ है, तत्व है, आधार है । इस बात से यह स्पष्ट है, कि प्रत्येक उस आर्थिक क्रिया को, जो एक निश्चित लक्ष्य अथवा उद्देश्य को लेकर की जानी है, किसी न किसी प्रकार के नियोजन की आवश्यकता होती है । यह नियोजन की, मोटी–मोटी परिभाषा भी समझनी चाहिए । वास्तव में, किसी भी आर्थिक क्रिया को सम्पन्न करने या पूरा करने या पूरा करने के समय–बद्ध, साधन–बद्ध तथा लक्ष्य बद्ध कार्यक्रम को योजना कहते है । नियोजन एक प्रक्रिया है, योजना उसका स्वरूप है, इसकी वास्तविक एवं व्यावहारिक क्रियान्त्रिति उसका कार्य व कार्यक्रम है तथा आर्थिक विकास उसका फल। इसके साथ यह बात भी स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि नियोजन कोई निरपेक्ष क्रिया या लक्ष्य और अन्तिम क्रिया नहीं है, यह तो एक सापेक्षिक प्रयास है जिसमें निरन्तर परिवर्तन तथा दृष्टव्य प्रावैगिकता अपना वृद्धिमान रूप स्वरूप दिखाते ही रहते है और अर्थव्यवस्था में वांछित परिवर्तन लाने की प्रक्रिया तथा लक्ष्य को सफल उपलब्धि की सीमा तक ले जाते ही रहते है । अर्थशास्त्र के अधिकतर विदयार्थियों के लिए नियोजन का अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जिसमें सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन लाने और उसे प्रभावी करने तथा कतिपय पूर्व निश्चित या पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेत् प्राकृतिक साधनों के प्रयोग के लिए, एक जागरूक, चेतनशील और साधिकृत केन्द्रीय नियन्त्रण निहित है । मोटे-मोटे अर्थों व शब्दों में नियोजन सत्ता कहलायेगी । इस नियोजन सत्ता का मुख्य कार्य है किसी योजना के लक्ष्यों को प्राप्त करने हेत् अधिकतम मितव्ययी साधनों की खोज करना। इसके लिए, नियोजन सत्ता को यह बात प्राथमिकता के आधार पर ध्यान में रखनी है कि यह इस बात को देखे तथा आश्वस्त हो जाये कि नियोजित अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र, भाग, अंग व खण्ड में, उत्पाद और उत्पादन का लक्षित उद्देश्य और साक्षित–स्तर बहुत ही मितव्ययी तरीके से प्राप्त हो जाये, हो सके या हो ।

नियोजन के समस्त संयन्त्र को हम उस समय भली भांति से समझ जायेंगे और समझने लगेंगे यदि हम यह देखने लगें कि नियोजन कर्ता वह लोग है जो भविष्य की आर्थिक समृद्धि के लिए एक कार्य योजना, कार्य रूप रेखा तथा कार्यक्रम तैयार करते हैं । जो अर्थव्यवस्था सरकार तथा जनता के समुख रखते हैं, और फिर उसकी वास्तविक तथा सम्पूर्ण तथा ठोस उपलब्धि के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं । इस प्रकार की रूप रेखा तैयार करने में प्रयासरत रहते हु ये, इस नियोजन सत्ता को, देश के वर्तमान आर्थिक विकास के स्तर को ध्यान में रखना होगा और उस स्तर पर विचार करते हु ए, एक और तो, विविध तथा विभिन्न

उत्पादन व उत्पादक क्षेत्रों की प्रतिस्पर्द्धात्मक मांगों और दूसरी और, उपलब्ध साधनों के बीच समन्वय तथा सामंजस्य स्थापित करना होगा जिससे कि देश के साधनों का सर्वोत्तम उपयुक्त, सम्भव तथा मितव्ययी तरीके से प्रयोग और विदोहन हो सके ।

इस प्रकार संक्षेप में यह कहना होगा कि, आर्थिक नियोजन एक जागरूक, चेतनापूर्ण तथा सावधानी पूर्ण तरीके से अपनायी गयी प्रक्रिया है जो सतत है । जिसकी पहल, राज्य द्वारा, देश की सम्भावी छिपी हु यी सम्पदा का अनुमान लगाने व आकलन करने तथा साथ ही साथ, देश के उपलब्ध साधनों के कुशलतापूर्वक विदोहन के लिए प्रयुक्त करने, जिससे कुछ स्पष्ट, निश्चित एवं निर्दिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके, की जाती है । दूसरे शब्दों में, आर्थिक नियोजन का उद्देश्य है राष्ट्रीय साधनों तथा क्षमताओं और आर्थिक प्रतिभूतियों को संपूर्ण राष्ट्र के उच्चतम तथा सर्विहतकारी हितों के लिये प्रयुक्त करना। पर यह कैसे किया जाये, यह बात निश्चित ही देश की आर्थिक परिस्थितियों, उसके द्वारा प्राप्त आर्थिक विकास की अवस्था, उसके सामाजिक ढाँचे अथवा संरचना और सरकार तथा शासन के तरीकों पर निर्भर करेगा ।

यह इकाई निम्न उद्देश्यों की पूर्ति करेगी -

- 1. "भारत एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था वाला देश है जो साधनों के अभाव के कारण नहीं बल्कि उनके पूर्ण विदोहन के अभाव के कारण गरीब है। पर यह साधन भी देश के प्रत्येक क्षेत्र में समान रूप से मात्रा व गुण में नहीं पाये जाते। उनके विविध विदोहन के लिए विविध स्तरों से भौतिक, तकनीकी, आर्थिक, नीतिगत और प्रशासनिक प्रयास करने हेतु नियोजन निश्चित ही बहु स्तरीय होगा जिसमें प्रत्येक क्षेत्र व जनपद अपना महत्व रखता है।
- 2. देश के सन्तुलित विकास के लिए क्षेत्रीय असन्तुलनों को समाप्त करना होगा। इन असन्तुलनों के सुक्ष्म एवं व्यापक स्तरीय प्रसंग है । इसके लिए आवश्यक है कि अलग—अलग क्षेत्र के अलग—अलग आर्थिक असंतुलन से निपटने के लिए सुक्ष्म स्तरीय नियोजन किया जाये और फिर व्यापक स्तरीय उपचार हेतु देश के लिए अपनाये जायें ।
- 3. जो नियोजन एक क्षेत्र की विषमताओं और असन्तुलनों से निपटने के लिए आवश्यक और उचित है, आवश्यक नहीं कि वही नियोजन दूसरे क्षेत्र की दूसरी समस्या या असन्तुलन को दूर करने या हल करने के लिए उपयुक्त बैठे । इस कारण बहु—स्तरीय नियोजन आवश्यक हो जाता है ।
- 4. बहु—स्तरीय नियोजन क्षमता, वृद्धि, साधन व सहयोग का हर स्तर पर प्रयोग और विदोहन करने हेत् आवश्यक है।
- 5. भारत की नियोजन व्यवस्था न तो रूस की तरह अधिनायकवादी अथवा निरंकुश शासकवादी है, और न ही अमेरिका की तरह स्वतन्त्र व्यापार वाली पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था है जिसमें मिश्रित अर्थव्यवस्था का भी महत्वपूर्ण स्थान व भूमिका है । ऐसे नियोजन की सफलता हर स्तर पर हर प्रकार का सहयोग व साधन-प्रयोग से सम्भव है तभी भारत में बहु स्तरीय नियोजन का चलन है ।
- 6. प्रजातान्त्रिक मिश्रित अर्यव्यवस्था में केन्द्रीय सरकार से लेकर ग्राम पंचायत तक प्रत्येक सार्वजनिक सत्ता इकाई अपने अधिकार व कर्तव्य से बंधी हुयी है । नियोजन के महान

कार्य में सबका सहयोग परामर्श व योगदान आवश्यक है जिसके कारण बहु—स्तरीय नियोजन ही एक मात्र उपचार है।

- 7. हर आर्थिक क्षेत्र व इकाई की समस्या कहीं—कहीं तो इतनी छोटी है कि उसका ज्ञान केवल क्षेत्रीय लोगों तक ही सीमित है। एक गांव से दूसरे गांव तक पहुँचने के लिए सड़क बनवाना केन्द्र सरकार का काम नहीं है और न ही वह सूक्ष्म रूप से केन्द्रीय नियोजन का भाग बन सकती है। इस प्रकार की समस्यायें क्षेत्र विशेष की होती है और सूक्ष्म रूप से सदैव ही अलग होंगी तथा उनके लिए नियोजन भी स्थानीय या क्षेत्रीय सत्ता करेगी। इस दृष्टि से भी बहु—स्तरीय नियोजन विशेषकर क्षेत्रीय या ग्राम्य—स्तर नियोजन आवश्यक व उपयुक्त है।
- 8. केन्द्रीय स्तर पर संगठित होने वाले नियोजन आयोग के सदस्य एकदम अनुभवी तथा सिद्ध उत्पन्न नहीं हुए है । वे सभी कहीं न कहीं प्रारम्भिक अवस्था और स्थिति में नगर स्तरीय नियोजन या जिला स्तरीय नियोजन या मण्डल स्तरीय नियोजन या राज्य—स्तरीय नियोजन से सम्बद्ध अवश्य रहे होंगें या रहे है जिससे उनका वास्तविक स्थितियों से परिचय रहा होगा या रहा है । तभी वे व्यापक स्तर पर राष्ट्रीय नियोजन व्यवस्था के लिये लाभकारी और उपयुक्त रहे है या रहे होंगे । इस सीढ़ी को पूरा करने तथा निर्माण करने के लिए भी विभिन्न स्तर पर नियोजन आवश्यक है जो व्यवस्था के अगले स्तर के लिए अनुभवी व सिद्ध नियोजन कर्ता उत्पन्न कर सकें।
- 9. प्रावैगिक जानकारी की दृष्टि से, यह उपयुक्त है कि जिस स्तर की समस्या हो उसी स्तर पर उसके नियोजन कर्ता भी कार्यरत हों । पंजाब की समस्या को सुलझाने के लिए केरल का मुख्यमन्त्री नहीं आयेगा और न ही उसका कोई स्थान अथवा औचित्य है । इसीलिए बहु स्तरीय नियोजन करके हर क्षेत्र की समस्या को उस क्षेत्र की क्षमता, जनशक्ति, साधन शक्ति के प्रयोग से फलीभूत किया जा सकता है हल निकाला जा सकता है या सुलझाया जा सकता है।

26.1 प्रस्तावना :-

मार्च 1950 में, देश में, नियोजन आयोग की स्थापना की गयी । इसके प्रारम्भ से ही, देश का प्रधानमंत्री इसका अध्यक्ष रहता है । आयोग के दिन—प्रति—दिन का कार्य देखना उपाध्यक्ष का दायित्व है । दूसरे शब्दों में, आयोग का नित्य प्रति का कार्य देखने हेतु इसका एक उपाध्यक्ष होता है । स्मरण रहे, उपाध्यक्ष का पद और नियोजन मंत्री का पद अलग—अलग होते है यह दो पद है एक नहीं । नियोजन आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद को एक सचिवालय प्रदान करता है और सुविधा देता है । यह सचिवालय राष्ट्रीय स्तर पर राज्य सरकारों को, नियोजन के राष्ट्रीय संगठन से, एक अंग के रूप में जोड़े रखता है ।

नियोजन आयोग अनेक विभागों और उपविभागों की सहायता से कार्य करता है। इनमें से प्रत्येक विभाग अथवा उपविभाग का मुखिया एक विरष्ठ अधिकारी होता है। यह अधिकारी भिन्न—भिन्न नामों जैसे सलाहकार, मुख्य सचिव अथवा संयुक्त सचिव, जैसे नामों से जाना जाता है। कुछ विभागों के अधिकारी मध्यम ग्रेड के अफसर होते है। इन्हें निदेशक कहा जाता है यह अपने विरष्ठ अधिकारियों के सहयोग से कार्य करते है। आयोग के पूर्ण कालिक सदस्यों

का यह दायित्व है कि वे विभागों तथा उपविभागों के नित्यप्रति कार्यों को देखें यद्यपि सम्पूर्ण आयोग एक पूरे अंग की तरह कार्य करता है और सभी महत्वपूर्ण नीतिगत मामलों पर संयुक्त रूप से सभी को सलाह देता है । विभिन्न विभाग, दो बड़े भागों में विभक्त होते है (1) सामान्य विभाग, जिसका सम्बन्ध सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के कुछ विशिष्ट पहलुओं से होता है । और (2) विषय विभाग (जो कई होते है) जिनका संबंध विकास के विशेष क्षेत्रों से होता है । इसके अतिरिक्त, नियोजन आयोग का दूरगामी भविष्य जिनत नियोजन के लिए भी एक अलग विभाग है जिससे यह आशा और अपेक्षा की जाती है कि विभिन्न विभागों और उप विभागों द्वारा किये जा रहे दीर्घगामी विकास कार्यक्रम के लिए उन्हें समय—समय पर सामान्य उचित और सामयिक मार्ग दर्शन दे ।

सामान्य विभाग इस प्रकार है :-

- (1) आर्थिक विभाग
- (2) भविष्यगामी सम्भावी नियोजन विभाग,
- (3) श्रम और रोजगार विभाग,
- (4) सांख्यिकी तथा सर्वेक्षण विभाग,
- (5) कार्यक्रम और प्रशासन विभाग,

(यहविभाग, राज्यों द्वारा अपनायी गयी योजनाओं की निगरानी करता है तथा समन्वय स्थापित करता है और नियोजन आयोग द्वारा अधिक पिछड़े हुए क्षेत्रों व राज्यों में किए जा रहे कार्यों का भी समन्वय करता है।)

- (6) साधन और वैज्ञानिक अन्वेषण विभाग
- (7) सामाजिक- आर्थिक खोज (एस.ई.आर) विभाग,
- (8) योजना समन्वय उप विभाग,
- (2) विषय विभाग हैं।
 - (1) कृषि विभाग,
 - (2) सिंचाई तथा चालक शक्ति विभाग,
 - (3) भूमि सुधार विभाग
 - (4) उद्योग खनिज विभाग
 - (5) ग्रामीण तथा लघु स्तरीय उद्योग विभाग,
 - (6) यातायात तथा संचारवाहन विभाग,
 - (7) ग्रामीण कार्य विभाग
 - (8) शिक्षा विभाग
 - (9) स्वास्थ्य विभाग
 - (10) आवास विभाग
 - (11) समाज कल्याण विभाग
 - (12) जन सहयोग विभाग

(3) बहु स्तरीय नियोजन ढाँचा :-

अधिकार क्षेत्र, शक्ति, क्षमता, कार्य-क्षेत्र, भौगोलिक क्षेत्र, क्षेत्रीय आधार इत्यादि के संदर्भ में, देश में नियोजन व्यवस्था इस प्रकार है:—

- (1) नियोजन आयोग : समपूर्ण देश की अर्थव्यवस्था के लिए नियोजन के लिए उत्तरदायी संस्था।
- (2) राज्य नियोजन आयोग : देश के प्रत्येक राज्य तथा केन्द्र शासित क्षेत्र के लिए एक-एक
 - (3) मण्डलीय नियोजन समिति : प्रत्येक राज्य के प्रत्येक मण्डल में एक -एक।
 - (4) जिला या जनपद नियोजन समिति : प्रत्येक जिले के लिए एक ।
 - (5) ग्राम पंचायत, ग्राम सभा अथवा जिला पंचायत ।
 - (6) सामूदायिक विकास योजना एवं ग्राम्य प्रसार सेवा ।

26.2 विश्व-अर्थ व्यवस्थाओं में पायी जाने वाली विभिन्न प्रकार की नियोजन व्यवस्थायें अथवा प्रणालियाँ :

26.2.1 साम्यवादी बनाम प्रजातान्त्रिक नियोजन :-

सोवियत रूस ने, जो नियोजन के क्षेत्र में अग्रणीय और अगुआ माना जाता है, एक सख्त, दृढ़, लोचविहीन, सर्वशक्तिवादी रूप की नियोजन व्यवस्था अपनायी जिसे " साम्यवादी नियोजन" कहते हैं । इस व्यवस्था को अपनाते हुए, सम्पूर्ण सोवियत संघ में, अर्थव्यवस्था के "समाजिकरण करने के अथक व चहुँ मुखी प्रयास किये गये और इस प्रक्रिया में, निजी साहस व उद्यम तथा स्वतंत्र बाजार संयंत्रों को सुनियोजित और क्रमिक रूप से कुचल दिया गया । सोवियत नियोजन कर्ता देश में, तीव्रगामी तथा चमत्कारिक गित से बड़े उद्योगों के विकास चाहते थे और इसी दिशा में प्राथमिक और प्रमुख रूचि रखते थे जिसके कारण, उपभोग—वस्तु उद्योगों की ओर अरूचि और उदासीनता उत्पन्न हो गयी । इसका परिणाम हुआ समस्त यू. एस. एस. आर. की जनता के लिए कष्ट व संकट तथा अभाव । नियोजन कर्ताओं की हर हालत में तथा हर कीमत पर योजना की सफलता के लिए अंधे और क्रूर प्रयास और उसकी दिन प्रति दिन की उपलब्धि में अतिव्यस्तता का परिणाम यह हुआ कि आम जनता में क्रूरता, विद्रोह, कठोरता, प्रतिक्रिया और विभागीकरण तथा वर्गीकरण को बढ़ावा मिला और चारों ओर आर्थिक सामाजिक असन्तोष पनपने लगा।

इस प्रकार के दृढ़ अलोचपूर्ण तथा कठोर प्रकार के "सामावादी नियोजन " के विपरीत प्रजातान्त्रिक नियोजन है जो दो प्रकार का होता है । एक हल्के—फुल्के प्रकार के प्रजातान्त्रिक नियोजन का प्रारम्भ, अमेरिका में, महान तीसे की मन्दी से निपटने व संघर्ष करने के लिए किया गया तथा ब्रिटेन में, द्वितीय महायुद्ध के बाद के काल में ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण हेतु किया गया। अमरीका और ब्रिटेन में नियोजन ने आर्थिक सम्बन्धों के एक प्रकार

के जागरूक पुनर्व्यवस्थापन का रूप लिया । इसने "स्व नियत्रणकारी स्वचालित व्यवस्था " की अभिपूर्ति की जिसका आधार था प्रतिस्पर्द्धा और निजी उद्यम जो प्रतिस्पर्द्धा पर आद्यारित था । इस प्रकार का प्रजातान्त्रिक नियोजन, आम जनता की आर्थिक सामाजिक दशाओं को सुधारता है और साथ ही साथ किसी प्रकार की तंग व कंटकीय जटिलता अथवा जन असन्तोष को भी जन्म नहीं देता ।

दूसरे प्रकार का प्रजातान्त्रिक नियोजन, पहले प्रकार के प्रजातान्त्रिक नियोजन की तुलना में ज्यादा संकेन्द्रित, ज्यादा समन्वित और ज्यादा गहन होता है । इस प्रकार का नियोजन, एक ओर तो दृढ़ लोंचिवहीन, दमनकारी व कूर साम्यवादी नियोजन तथा दूसरी ओर, कल्याण-प्रेरित, हल्के-फुल्के प्रकार के प्रजातान्त्रिक नियोजन, दोनों के बीच का मध्य वर्ग है और इसलिए उस अर्द्धिविकसित अर्थव्यवस्था वाले देश की प्रजातान्त्रिक सरकार के लिए सबसे अधिक उपयुक्त है जो सरकार के आर्थिक विकास को गतिमान करने के दायित्व को ओढ़ लेता है । नियोजन की इसकी तकनीक व प्रणाली को अपनाने का अर्थ होगा कि राज्य यह देखे और सुनिश्चित करले कि राष्ट्रीय आय के उस अंश में अनिवार्य रूप से वृद्धि हो रही है जो अंश उपभोग की ओर से तो खींच लिया जाता है तथा निवेश को समर्पित किया जाता है । अर्थात उपभोग के स्थान पर उत्पादक कार्यों के लिए निवेश बढ़ाया जाता है । पर मुश्किल तो यह है कि प्रजातान्त्रिक देश की सरकार के लिए यह लगभग असम्भव सा हो जाता है कि वह तीव्र विकास को प्राथमिकता देने के चक्कर व अभियान में, उपभोग को निरपेक्ष न्यूनतम स्तर पर बनाये रखे । प्रजातान्त्रिक नियोजन के अन्तर्गत जनता का कल्याण तथा उसकी खुशहाली भी बहुत महत्व के होते है । इसलिए आवश्यक रूप से, "विकास" उद्देश्य तथा "कल्याण" उद्देश्य के बीच समझौता करना होता है । यही है वह तकनीक व व्यवस्था जो हमने भारत में अपनायी है।

भारत, मानव—स्वतंत्रता और गौरव में अट्ट विश्वास रखता है इसलिए उसकी विकास योजनायें, यद्यपि वे उच्चस्तरीय संकेन्द्रण और समय का विषय व आधार है, मूलरूप से तथा आधारभूत ढांचे में, कल्याण—जिनत है । भारत की पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी व छठी योजनायें, सुनियोजित, सुसंगठित, समन्वित और केन्द्रित नियोजन के उत्तम और आदर्श उदाहरण है । जिनका उद्देश्य रहा है, एक पिछड़ी हुयी धीमी गित से चलने वाली शिथिल अर्द्धविकसित अर्थ—व्यवस्था के करोड़ों लोगों की जीवन—दशाओं और कल्याण सम्बन्धी आवश्यकता की आपूर्ति में वृद्धि करें । जिसके लिए साधनों का प्रभावपूर्ण प्रयोग व विदोहन किया जाय जो अन्त में स्थायी रूप से अर्थव्यवस्था में प्रावैगिक विकास और गितमानता का मार्ग प्रशस्त करे । भारत में, उत्तरोतर वृद्धिमान आर्थिक विकास को प्राप्त करने के लिए, केन्द्रित और कल्याण—जिनत नियोजन प्रणाली को इसलिए समर्थित तथा प्रोत्साहित नहीं किया गया कि यहाँ पर एक प्रजातान्त्रिक सरकार है बिल्क इसलिए भी अपनाया गया क्योंकि उस सामाजिक व्यवस्था की रीढ़ की हड्डी या आधार शिला, जो सामाजिक व्यवस्था कि मूल रूप से, आर्थिक विकास की बैलगाड़ी व्यवस्था और हथकरघा अवस्था के अनुकूल चल रही थी, अब सोद्देश्य—पालित सिक्रय राज्य—क्रिया के सकारात्मक प्रभाव के कारण शनै : शनै : क्षीण खिण्डत व भूमिल होती जा रही है । भारतीय अर्थव्यवस्था में, स्वतंत्र—बाजार संयन्त्रों ने निरन्तर ही एक

स्पष्ट भूमिका निभायी है । पंचवर्षीय योजनाओं से जो आर्थिक ढ़ाँचा भारत के संदर्भ में उभर कर आया है वह है "मिश्रित अर्थव्यवस्था" जिसमें सार्वजनिक उपक्रम और उद्यम तथा निजी उपक्रम और उदयम का अस्तित्व सम्भव है ।

26.2.2 अधिकारात्मक नियोजन बनाम मार्ग निर्देशात्मक या दिशा निर्देशात्मक नियोजन:-

आज कल कुछ रिवाज सा बन गया "अधिकारात्मक अथवा आदेशात्मक नियोजन या सर्वशक्ति मानता परक नियोजन, निर्देशन के अनुसार नियोजन, आदेश के अनुसार नियोजन इत्यादि और "दिशा निर्देशात्मक नियोजन " या मार्ग दर्शनात्मक नियोजन या रजामन्दी से तैयार किया गया नियोजन, प्रेरणाजनित नियोजन, नियन्त्रित नियोजन या मार्गदर्शित नियोजन इत्यादि के बीच के अन्तर को जाने, पहचाने, खोज करें तथा इन दोनों के बीच के अन्तर को स्थापित करें । निर्देशात्मक अथवा मार्गदर्शनात्मक नियोजन प्रणाली के अन्तर्गत जैसा कि हम फ्रांस में पाते हैं, नियोजन सत्ता या संस्था, मात्र एक समन्वयात्मक ऐजेन्सी है और यह, योजना-निर्माण हेतु, सम्बन्धित संस्था अथवा सत्ता को केवल मार्गदर्शन दिया जाता है । विस्तृत क्षेत्रीय लक्ष्यों की रूप रेखा अनेक छोटी—छोटी समितियाँ, जिनमें उन सभी वर्गों के प्रतिनिधि होते है जो कि मिले हुए अथवा प्राप्त हुए अथवा लिए गए निर्णयों को कार्य व व्यवहार में परिणित करेंगे और इस तरह लक्ष्य, योजनाओं के लिए निर्मित तथा निर्धारित होते रहेंगे । कहीं पर किसी प्रकार का दबाव या धौस नहीं है । इस प्रजातान्त्रिक नियोजन व्यवस्था के अन्तर्गत, नियोजन एक प्रकार की सहकारी, समयक समन्वित, समरूप, सहज व सरल प्रक्रिया है जो एक ओर तो नियोजन आयोग तथा दूसरी ओर, छोटी—छोटी उप समितियों के संयुक्त कार्यकरण, कार्यशैली और कार्य क्षमता तथा गति पर निर्भर करेगी ।

लेकिन, आदेशात्मक नियोजन प्रणाली के अन्तर्गत, एक प्रकार का दमन, दबाव, अनिवार्यता का तत्व निहित रहता है । इस प्रकार की नियोजन प्रणाली की एक विशेषता और भी है और वह यह है कि इसके क्रियान्वयन के लिए एक प्रशासनिक तंत्र या संयन्त्र या व्यवस्था होती है जो निवेश तथा उत्पादन सम्बन्धी निर्णयों को क्रियान्वित करवाने की विपुल शक्ति व संज्ञा रखती है । जिस शक्ति के कारण, वह निर्णय क्रियान्वयन हेतु अन्तिम आर्थिक इकाइयों तक पहुंचते है और उन्हें कार्य करना पड़ता है । भारत की पहली चार योजनाओं में इस प्रकार की मोटी—मोटी विशेषता दिखाई पड़ती है ।

26.2.3 केन्द्रित बनाम विकेन्द्रित नियोजन: -

ऊपर हम देख चुके है कि अनिवार्य अथवा आदेशात्मक नियोजन व्यवस्था के अन्तर्गत, नियोजन की शक्ति व संज्ञा एक "केन्द्रीय नियोजन संस्था" या "बोर्ड" में निहित व केन्द्रित रहती है । जो सत्ता न केवल योजना का प्रारूप ही तैयार करती है बल्कि साथ ही साथ उन लक्ष्यों को भी तैयार करती है और देश के सामने रखती है जो लक्ष्य अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में क्रियान्वित किये जाते है और उपलब्ध होते है । इस प्रकार के नियोजन में अनिवार्यता शत प्रतिशत होती है और यह अनिवार्यता उस केन्द्रीय सत्ता से प्रवाहित होती है जिस

अनिवार्यता का प्रयोग उस केन्द्रित सत्ता द्वारा योजना के लक्ष्यों को प्राप्त करने व पूरा करने के लिए किया जाता है ।

यह केन्द्रित नियोजन मॉडल जिसका पालन व प्रयोग सोवियत संघ में, किया गया है, भारत की पंचवर्षीय योजनाओं का भी आधार है । जिसने भारत पर लगभग $2^{1}/_{2}$ वर्ष (1977) से 1979) तक राज्य किया था, भारत ने भी धीरे-धीरे विकेन्द्रित नियोजन मॉडल का प्रयोग किया था। जनता राज्य की अवधि में, निर्देशात्मक अथवा मार्गदर्शनात्मक नियोजन पर बहुत बल दिया गया था और हम सभी देशवासियों ने एक कीमत निर्देशित अर्थव्यवस्था का अन्भव किया था । और इस प्रकार की व्यवस्था की तुलना फ्रांस में पायी जाने वाली नियोजन व्यवस्था से की जा सकती है । एक कीमत-निर्देशित (नियन्त्रित) विकेन्द्रित नियोजन मॉडल में, पूरी समस्या, अनेक उप समस्याओं में विभक्त कर ली जाती है । इस व्यवस्था में, सर्वोपरि (शीर्षपर) होती है एक केन्द्रीय नियोजन सत्ता (सी. पी .ए) अर्थात सेन्ट्रलप्लानिंग ओथोरिटी जो कि मुख्य समन्वयक का कार्य करती है । सबसे नीचे अनेक छोटे वर्ग, विभाग अथवा खण्ड होते है जो कतिपय कुछ गुणों के आधार पर अथवा विशेषताओं के आधार पर विभक्त किये जाते है (जैसे निवेश-वस्तु संवर्ग, उपभोग-वस्तु संवर्ग, इत्यादि) जो संवर्ग कि केन्द्रीय नियोजन सत्ता के दवारा निर्धारित मार्ग बिन्द्ओं और प्रदर्शन दिशाओं के अनुसार व आधार पर कार्य करते है और अपनी प्रतिउत्तरता प्रदर्शित करते है । यह सभी उप भाग व उप खण्ड व अंचल क्षेत्र केन्द्रीय सत्ता के प्रति उत्तरदायी है । इसके अतिरिक्त, केन्द्रीय सत्ता तथा उप वर्गों के बीच, एक और वर्ग होता है जिसे दोनों सिरों के बीच सूचना प्रसार या प्रवाह की नियमित्तता और स्चारू क्रियान्विति देरवने का दायित्व सौपा जाता है । यह एक प्रकार का बिचौलिया भाग है जिसमें स्वयं अनेक उप भाग या खण्ड होते है । इस सारी व्यवस्था के अतिरिक्त क्छ सम्पर्क समितियाँ (लायजन कमेटीज) भी होती है जिनमें दल के प्रतिनिधि या कार्यकर्ता होते है और बिचौलिया संवर्ग के प्रतिनिधि (जिन प्रतिनिधियों में कृषि, उदयोग, व्यापार व व्यवसाय के प्रतिनिधि सम्मिलित है) होते है । यह सब मिलकर, विविध प्रकार की अधीन इकाइयों को जोड़ने एवं समन्वित करने का काम करते है । यहां यह ध्यान में रखना होगा कि एक विकेन्द्रित नियोजन विधियन, मूलरूप से, एक प्रकार का "अधिकिकरण प्रकार का नियोजन मॉडल" है । यहाँ "अधिकिकरण" दो स्तरों पर चलता है । एक ओर तो क्षेत्र, वैयक्तिक रूप से अधिकिकरण करते है और दूसरी और केन्द्रीय सत्ता, सम्पूर्ण समुदाय के अधिकतम सामाजिक कल्याण की उपलब्धि अथवा प्राप्ति का लक्ष्य निरन्तर अपने मस्तिष्क में रखती है । इस प्रक्रिया में, वह, सामाजिक उद्देश्य कार्यकरण के अधिकिकरण को स्वतः ही अपना लक्ष्य बना लेती है।

26.3 पिछड़े क्षेत्रों और अर्द्ध विकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए नियोजन तकनीक

यह सर्वविदित है कि पिछड़ी अर्थव्यवस्थाओं में, "चालू आय के असामान्य निम्न स्तर" तथा "हीन उत्पादकता" के इन क्षेत्रों के लिए नियोजन तकनीक ऐसी हो जो आय और उत्पादकता के स्तरों में निरन्तर, वृद्धिमान तथा प्रावैगिक वृद्धि का मार्ग प्रशस्त करें । जिससे एक ओर तो लोगों की वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और दूसरी ओर भविष्य में प्रगति, विकास व समृद्धि का मार्ग गतिमान हो ।

पिछड़ेपन की अवस्था, जैसा कि दिन-प्रतिदिन के आधार पर दृष्टिगत होती है, "प्रति व्यक्ति निम्न आय" वाले सन्तुलन के चारों ओर चरों variables के उच्चावचन या उतार चढ़ाव का प्रतिनिधित्व करती है । इन चरों के मूल्य, किसी आर्थिक अवस्था के संदर्भ में एक दूसरे के साथ, स्थैतिक और स्थिर रहते है। लेकिन यह निम्न आय सन्तुलन अवस्था जो कि अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था वाले देश को अर्द्ध स्थैतिक अवस्था में बनाए रखती है, एक ऐसे चुम्बक का कार्य करती है कि चरों के मूल्य उस अवस्था की ओर आकर्षित हो चलें तथा उसके इर्दगिर्द केन्द्रित, होने लग जायें । "आत्म-संयत आर्थिक विकास" अथवा "आत्म-स्फूर्ति-आर्थिक विकास" के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए यह परमावश्यक है कि विकास के लिए जो भी प्रारम्भिक उत्प्रेरक हों वह ऐसे हो कि उनका एक प्रभावी-न्यूनतम आकार अवश्य हो अर्द्ध-विकसित अर्थ व्यवस्थाओं में, दीर्घगामी आर्थिक विकास इसलिए प्रभावी तथा उपलब्ध नहीं हो पाता क्योंकि उत्प्रेरकों का आकार बहुत छोटा होता है । इसका अर्थ यह हुआ कि आर्थिक पिछड़ेरान से बचने के लिए, विकास की समस्या से सम्बद्ध उत्प्रेरक अथवा कार्यकारी प्रभावी घटक प्रच्र मात्रा में मजबूत अथवा सशक्त हों और नए निवेश का आकार व मात्रा, उस "प्रभावी" न्यूनतम आकार स्तर से ऊपर की मात्रा और स्तर वाला हो जिससे कि अब तक "स्थिर-आय-सृजक-हासात्मक घटक, नये आय-वर्धक-घटकों की उत्प्रेरित प्रभावशाली कार्यकरण के सम्मुख फीके पड़ जायें, अर्थहीन हो जायें, अकारण हो जाए या तटस्थ हो जाये । और यह है वह स्थिति तथा कार्य जिसमें एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था वाले देश की सरकार, सशक्त और विस्तृत विकास योजना बनाने के माध्यम से, महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है । यह व्यापक, विस्तृत तथा सशक्त योजनायें, विकास उत्प्रेरको में उत्साहित वृद्धि करके, प्रभावशाली तरीके से नए निवेशों के आकार में वृद्धि करने का प्रयास कर सकती है, और विकास को गतिमान करने की दिशा में सफलता प्राप्त कर सकती है।

वह "अवधि अथवा काल जिसमें अर्थव्यवस्था में सुधार लाने, आय स्तर में सकारात्मक वृद्धि लाने तथा प्रभावी निवेश को बढ़ाने और मूल रूप से पिछड़ेपन तथा गरीबी का निवारण करने हेतु सशक्त योजनायें बनायी गयी है । जो योजनायें अपने कार्यकरण अथवा क्रियान्वित के माध्यम से अर्थव्यवस्था की "अर्द्ध—स्थैतिक दशा" को सुधारेगी, —गितशील अवस्था " अथवा "आत्म—स्फूर्ति" अवस्था का काल कहलाता है । विकास की प्रक्रिया प्रचुर मात्रा में, द्र्तगामी होनी चाहिए इस "आत्म—स्फूर्ति" अथवा "गितमान अवस्था" काल में — यह तभी सम्भव है जब कि निवेश में प्रशंसनीय वृद्धि करने हेतु प्रचुर मात्रा में अतिरेक उत्पन्न होकर आयें या उभर कर आये — और तब यही अवस्था, अर्थव्यवस्था को आवश्यक गित व प्रवाह प्रदान करेगी जो अन्ततोगत्वा (अन्त में) एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था को एक सामान्य, स्वपरक तथा स्थायी विकास दर तथा स्तर प्राप्त करने की क्षमता प्रदान करेगी अर्थात इन लक्ष्यों को प्राप्त करने की

उसमें सामर्थ्य उत्पन्न करेगी । इस तरह, मध्यान्तर काल की अविध का प्रश्न उभर कर सामने आता है । गत्यावरोधन अथवा स्थैतिकता जैसी प्रारम्भक अवस्था से प्रारम्भ होकर, वह अविध क्या होगी और कितनी होगी जो कि "गितशील अवस्था" अन्तिम अवस्था अर्थात "आत्म स्फूर्ति अवस्था विकास" तक पहुंचने में लेगी । प्रो. रोस्टोव जिन्होंने ही आर्थिक साहित्य में "गितशील अवस्था" जैसी शब्दावली का प्रयोग किया है, इस अविध की सीमा पन्द्रह और पच्चीस वर्षों के बीच की अविध बताया है । इस पन्द्रह से पच्चीस वर्षे की अविध को मानने की प्रक्रिया में उन्होंने उन अनेक देशों की विकास प्रक्रिया को ध्यान में रखा है जो देश की आर्थिक विकास की बहुत ऊँची अवस्था और स्तर को बहुत पहले ही प्राप्त कर चुके है । "गितिशील—अवस्था" की यह अविध इसिलए, बहुत महत्वपूर्ण है और "अर्द्धस्थैतिक अवस्था" से "गितशील अवस्था" में और अन्त में "आत्म स्फूर्ति अवस्था" में दूतगामी परिवर्तन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विकास नियोजन की एक बहुत प्रभावी तथा अच्छी तरह से समन्वित प्रक्रिया अपनानी होगी तथा अपनानी भी चाहिए।

अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं की प्रकृति कुछ इस प्रकार की होती है कि बहुत छोटी– छोटी मात्राओं में निवेश, एक वृद्धिमान तथा द्रतगामी आर्थिक विकास की प्रक्रिया को गतिशील करने की दिशा में न तो प्रभावी होता है और न ही फलदायक । द्रतगामी आर्थिक विकास दर तो तब ही सम्भव है जबिक विदयुत निर्माण, यातायात और संचार वाहन के विकास और आधारभूत बडे तथा भारी उदयोग के आधार निर्माण इत्यादि पर प्रच्र तथा सम्चित मात्रा में निवेश किया जाये । इनमें निवेश करने पर ही अर्थव्यवस्था को अर्द्ध स्थिर, स्थैतिक अवस्था और अर्द्ध स्थैतिक वातावरण से ऊपर उठाया जा सकता है । इस प्रकार के और इन भागों में किये गये बड़े निवेशों को गतिमान करके ही "स्थैतिक अवस्था" को "आत्म स्फूर्ति अवस्था" में परिवर्तित किये जाने– वाले काल को कम किया जा सकता है । जो एक अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्था की पहली माँग है । इसलिए नियोजन कर्ताओं का मूलभूत कार्य होगा ऐसी नियोजन तकनीक पर ध्यान केन्द्रित करना जो तकनीक भारी उदयोग, यातायात और विदय्त निर्माण जैसे क्षेत्रों में प्रशंसनीय विकास ला सके । क्योंकि इस प्रकार के निवेश तुरन्त लाभ उत्पन्न व सृजित नहीं करते इसलिए निजी उद्यमियों या साहसिकों के द्वारा म्शिकल से ही किये जाते है । विकास नियोजन का आधार कूटनीति का सम्बन्ध, सरकार द्वारा भारी उद्योग, यातायात स्विधाओं के विकास और विदयुत-निर्माण इत्यादि के तीव्र विकास स्तर व दर को प्राप्त करने से होना चाहिए।

आधार भूत भारी उद्योगों का विस्तार नए निवेश के समय पथ को प्रोत्साहित करेगा। वास्तव में, भारी उद्योग के विकास पर निश्चित तौर पर, योजनाओं को समेटने वाले काल—अन्तराल में कुल निवेश का तेजी से ऊपर चढ़ता हुआ मार्ग सृजित करेगा। यह तेजी से ऊपर चढ़ता हुआ निवेश मार्ग ही एक विकासशील अर्थव्यवस्था की मूल विशेषता और पहचान है और यह "गतिशील—अवस्था" के प्रारम्भ होने का प्रमाण भी बन सकती है। सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि औद्योगिकरण के कार्यक्रम में, भारी उद्योग का विकास शीर्ष प्राथमिकता को प्राप्त होना चाहिए जिसके लिए निरन्तर नया निवेश होते रहना चाहिए।

यातायात, सिंचाई और बिजली विकास सुविधायें बाजार के कुल आकार का विस्तार करती हैं। और एक विस्तृत क्षेत्र में निवेश—विस्तार को प्रोत्साहित करती हैं जो कि आवश्यक संरचना निर्माण में सहायक होता है। इन सुविधाओं के विकास और विस्तार पर किया गया प्रचुर मात्रा का सार्वजनिक व्यय पूंजी निर्माण की दर में वृद्धि करेगा जिससे जनता के कल्याण में वृद्धि होगी। जब तक इन सुविधाओं में आशानुकूल विकास नहीं होता तब तक वृद्धिमान आर्थिक विकास की पहल भी सम्भव नहीं और फल यह होगा कि "अर्द्ध स्थैतिक अवस्था से" प्रावैगिक गतिशील अवस्था" में परिवर्तन आने में भी बहुत विलम्ब हो जायेगा और वह परिवर्तन पिछड जायेगा।

भारी उद्योग, परिवहन, सिंचाई और विद्युत सुविधाओं के विकास के क्षेत्र में, राज्य की भूमिका के महत्व को उस समय पूरी तरह समझा व आका जा सकता है यदि हम आर्थिक विकास के मुख्य निर्धारकों का विश्लेषण करें । यदि सरल शब्दों में अभिव्यक्त करें तो आर्थिक विकास की दर (विकास नियोजन की प्रजातांत्रिक प्रणाली में) निम्न बातों पर निर्भर करेगी (अ) आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने और जनता के कल्याण — सामाजिक तथा आर्थिक विकास में वृद्धि करने के लिए की गयी सार्वजनिक व्यय की राशि, (ब) पूंजी निर्माण की दर (या नए निवेश का अर्थव्यवस्था में प्रवाह) और (स) सार्वजनिक सहयोग, सार्वजनिक तथा जन उत्साह और सामाजिक ढांचे में परिवर्तन से मुख्य रूप से जुड़े हुए सामाजिक राजनैतिक घटक । यदि हम आर्थिक विकास की ऊंची दर चाहते हैं तब उचित प्रकार का प्रयोजनाओ पर किये जाने बाले सार्वजनिक व्यय का राशि में वृद्धि करनी होगी और उसे बढ़ाना होगा, नए निवेश के प्रवाह में वृद्धि करनी होगी, सामाजिक ढाँचे का उचित समायोजन करना होगा और जन—उत्साह के द्वार पूरी तरह खोलने होंगे।

इस तरह, सार्वजनिक व्यय में की गयी भारी वृद्धि, भारी उद्योग, परिवहन, विद्युत विकास इत्यादि में तथा बाजार विस्तार में प्रशंसनीय विकास सम्भव करेगी जिससे नया निवेश और पूंजी निर्माण निश्चित ही बढेंगे । इसी से विकास की दर भी बढेगी ।

पर प्रजातान्त्रिक नियोजन कर्ताओं के लिए विकास की उच्चतम दर प्राप्त करना मात्र एकल लक्ष्य ही नहीं है । उन्हें तो, एक ओर, उपलब्ध साधनों को, प्रतिस्पर्द्वात्मक राज्य परियोजनाओं के बीच न्यायोचित आवन्टन करना होगा और साथ ही साथ जनता के कल्याण तथा खुशहाली भी ध्यान रखना होगा। यह तथ्य इस बात का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करता है कि क्यों, राज्य कोषों के एक भाग को एक कृषि जनित या कृषि प्रधान अर्द्ध विकसित अर्थव्यवस्था में, सामुदायिक विकास योजनाओं तथा ग्रामीण प्रसार सेवाओं की ओर मार्गान्तरित करना होता है । कोषों और साधनों का इस प्रकार का स्थानान्तरण तथा मार्गान्तिकरण, पूंजी निर्माण की उच्चतम या ऊँची दर प्राप्त करनें के मार्ग में निश्चित ही एक अवरोधक सिद्ध होता है और होगा भी । यह इसलिए है क्योंकि भारी उद्योंगों के विकास के लिए किया गया सार्वजनिक व्यय, पूंजीगत उपकरण के वृद्धिमान अथवा बड़े प्रभाव को जन्म देगा और उसे उत्तरोत्तर बढ़ायेगा । और इस तरह एक ज्यादा स्पष्ट तरीके से पूंजी निर्माण की दर में वृद्धि करेगा बजाय उस सार्वजनिक व्यय के जो कि सामुदायिक विकास योजनाओं तथा ग्रामीण प्रसार सेवाओं पर व्यय

किया गया है । लेकिन प्रजातान्त्रिक और कल्याण प्रेरित नियोजन व्यवस्था को, एक ओर तो अधिकतम आर्थिक विकास और दूसरी ओर, जनता के कल्याण और खुशहाली में अधिकतम वृद्धि, दोनों के बीच एक समझौता और समन्वय स्थापित करना पड़ेगा ।

प्रजातान्त्रिक नियोजन में, जन सहयोग भी एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है । सामुदायिक विकास परियोजनाओं तथा दूसरे प्रकार की विस्तार सेवाओं पर, जिनके माध्यम से ग्रामीण जगत का उद्धार तथा उत्थान सम्भव होता है, उपयुक्त तथा वांच्छित जोर अवश्य दिया जाना चाहिए । इस प्रकार का ग्रामीण जनता के उद्धार व विकास के लिए किया गया कार्य, ग्रामीण जनता में एक नए विश्वास का संचार करेगा और साथ ही ग्रामीण जनता की कल्याण और विचार शक्ति को जागृत करेगा जो कि भारत जैसे अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था वाले कृषि प्रधान देश की विकास प्रक्रिया को सफल बनाने में बहुत सहायक सिद्ध होगा । वास्तविकता तो यह है कि जन–उत्साह तथा जन सहयोग, सामाजिक, राजनैतिक घटको को प्रेरित करते है जो कि आर्थिक विकास की गित व दर को बढ़ाता है तथा विकास वातावरण को प्रखर तथा मुखर करता है ।

पर स्मरण रहे कि कल्याण उद्देश्यों की ओर उदासीन रहते हुए या उदासीन रहकर, मात्र आर्थिक विकास को दुगूनी गित से तीव्र करने का प्रयास एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था के संदर्भ में न तो उपयुक्त है और न ही वांच्छित है। इस प्रकार की स्थिति की, एक प्रजातान्त्रिक कल्याण प्रेरित नियोजन व्यवस्था में गुजर नहीं है। इसिलए नियोजन के माध्यम से सामाजिक, राजनैतिक घटकों को भी प्रभावित करना है और उचित तथा उपरोक्त तरीके से प्रभावित करना है जिसके कारण, साधारण व आम जनता यह अनुभव करने लगे कि उन्हें भी नियोजन और विकास कार्यक्रम का लाभ मिला है और मिल रहा है। यह अनुभव तथा अनुभूति स्वपरक जन—सहयोग उत्पन्न करेगी और उपलब्ध करायेगी। एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था वाले कृषि प्रधान देश में सामुदायिक विकास परियोजनायें तथा ग्रामीण विस्तार सेवायें, ग्रामीण लोगों के इदयों में नई आशायें व आकांक्षायें उत्प्रेरित व उत्पन्न करने का काम कर सकती हैं और करती हैं। इसिलए, नियोजन तकनीक ऐसी होनी चाहिए जिससे कि एक ओर भारी उद्योगों, यातायात और बिजली तथा दूसरी ओर सिंचाई और ग्रामीण विस्तार सेवाओं का साथ—साथ विकास हो सकें। संक्षेप में वृद्धिमान विकास दर को स्थापित करने के लिए, संरचनात्मक सुविधाओं का भी प्रचुर विकास करना चाहिए।

संक्षेप में, इसी प्रकार की विकास कूटनीति हमारी पंचवर्षीय योजनाओं में अपनायी गयी है। भारत की दूसरी, तीसरी, चौथी और छठी पंचवर्षीय योजनाओं में, भारी उद्योगों के विकास पर बहुत जोर दिया गया था। और साथ ही साथ परिवहन, विद्युत और अन्य संरचनात्मक सुविधाओं के विकास पर भी, जिससे कि यह समन्वित और संयुक्त प्रयास, आर्थिक विकास की दर के ऊपर बताये गए दो प्रमुख निर्धारक तत्व अनुकूल रूप से प्रभावित हो सकें। यह दो तत्व है, एक तो सार्वजनिक व्यय की राशि और दूसरे नए निवेश का प्रवाह। पर क्योंकि भारत की पंचवर्षीय योजनायें, कल्याण–उद्देश्य–प्रधान प्रजातान्त्रिक नियोजन के आधारभूत तथा सशक्त प्रयोग हैं इसलिए सार्वजनिक व्यय का एक बहुत बड़ा भाग, सामुदायिक विकास परियोजनाओं

और अन्य कल्याण-प्रधान और कल्याण उद्देश्य प्रेरित परियोजनाओं पर लगाना पड़ा, उसकी ओर मार्गान्तरित करना पड़ा । यह कार्य, सामाजिक राजनैतिक घटकों को सही दिशा में अग्रसर होने में आशिक रूप से सहयोग कर रहा है और इस तरह, सतत् तथा समयक आर्थिक विकास की प्रक्रिया को स्थापित करने के लिए पृष्ठभूमि तैयार कर रहा है ।

हमारे दवारा किये गये, आर्थिक विकास की दर के तीनों निर्धारक तत्वों के विश्लेषण से निकलने वाली, सामने आने वाली और उभर कर मुखर होने वाली आधार भूत विकास कूट नीति, प्रजातान्त्रिक नियोजन कर्ताओं दवारा सफलता पूर्वक प्राप्त की जा सकती है । अगर विकास नियोजन की दरें आवश्यक संगतियों पूर्ण रूप से सन्त्ष्ट की जा सकें । पहली संगति का सम्बन्ध, "उत्पादक कोषों के प्रभावशाली एकीकरण" से है जो कोष कि एक ओर तो, ग्रामीण भ्रम अतिरेक में पाये जाते है । और दूसरी ओर, हथकरघा तथा कुटीर उदयोगों में एक पूंजी अभावग्रस्त अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्था वाले देश में । विकास नियोजन की प्रारम्भिक अवस्था में, यदि ज्यादा जोर भारी उद्योगों के विकास पर दिया जाता है तो मशीन प्रधान लघ् उद्योग या फैक्ट्री का जो उपभोग वस्तुओं का उत्पादन करती है, प्रशंसनीय स्तर तक विकसित व विस्तरित करना सम्भव नहीं होगा । एक बढ़ती हुयी, विकासशील अर्थ-व्यवस्था में, उपभोग वस्तुओं की बड़ी माँग होगी और इस माँग की आपूर्ति, आरम्भिक अवस्था में, अर्द्ध रोजगार में लगे ग्रामीण लोगों को हथकरघा और कुटीर उद्योगों में कार्यरत करके की जा सकेगी । इस तरह, आरम्भ में, हथकरघा उदयोग तथा कुटीर उदयोग, उपभोग वस्तु की आपूर्ति की अल्पकाल और समय विशेष की व्यवस्था का माध्यम बन जायेंगे जिन उदयोगों को धीरे-धीरे छोटी-छोटी मशीनयुक्त और मशीन प्रधान इकाइयों में बदला जाना चाहिए । इस प्रकार का परिवर्तन दीर्घकालीन प्रक्रिया में इन्हें बिजली भी मिलने लगेगी और बड़े उदयोगों से बड़ी तथा वृद्धिमान मात्रा में इनकी आवश्यकता वाले यन्त्र तथा उपकरण भी मिलने लगेंगे ।

विकास नियोजन की दूसरी संगित, एक विकासशील अर्थव्यवस्था में पायी जाने वाली उद्योग और कृषि के बीच की महत्वपूर्ण कड़ी पर प्रकाश डालती है और उसके महत्व की ओर इशारा करती है। यह इस बात पर जोर देती है कि कृषि का गहन तथा सम्पूर्ण पुनर्गठन और तीव्रगामी कृषि विकास, वृद्धिमान औद्योगिक विकास दर को कायम अथवा सतत् रखने के लिये नितान्त और अपरिहार्य रूप से आवश्यक है । इसका कारण यह है कि औद्योगिक क्षेत्र की विकास दर, कृषि क्षेत्र की ओर से आपूरित की जाने वाली खाद्य पदार्थों व कच्चे माल की पूर्ति की प्रवृतियों. पर निर्भर करती है । दुतगामी कृषि विकास और साथ में गहन तथा समूर्ण संस्थागत परिवर्तन तथा चमत्कारिक औद्योगिक विकास प्रक्रिया को गतिमान करने की पहली आवश्यक पूर्व दशा है । इस सत्य और तथ्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि क्यों हमारी प्रथम पंचवर्षीय योजना में सर्वोच्च प्राथमिकता, कृषि के पुनर्गठन व विकास को दी गयी थी लेकिन भारत के कृषि क्षेत्र की क्षमताओं के प्रयोग व विकास के लिए जो पहल प्रथम पंचवर्षीय योजना में की गयी थी तथा उपचार हाथ में लिए गये थे वे पूरी तरह दूसरी पंचवर्षीय योजना से चौथी योजना तक रही। इसका फल यह हुआ कि तीसरी पंचवर्षीय योजना की अन्तिम अवस्थाओं में और चौथी योजना के अन्तिम के दो वर्षों में, एक भारी कीमत वृद्धि हुयी जिसके लिए केवल

दोषपूर्ण और बुरा कृषि नियोजन ही मूल रूप से उत्तरदायी कहा जायेगा। इसके बाद कृषि उत्पादकता को बढ़ाने और उसे स्थिर रखने के बहुत प्रयास किये गए जिसमें राज्यों व देश के औद्योगिक क्षेत्र ने, अच्छे तथा उन्नत प्रकार के उर्वरक, कीट—नाशक दवायें, पौध—पोषक उत्पाद, सरल पर आधुनिक कृषि यन्त्र प्रदान करने और आपूर्ति करने के माध्यम से सहायता प्रदान की। जब तक की कृषि और औद्योगिक क्षेत्र एक दूसरे की मदद नहीं करेंगे और एक दूसरे को पारस्परिक सहयोग नहीं देंगे तब तक देश का औद्योगिक विकास निर्वाध रूप से नहीं चलेगा।

26.4 भारत में नियोजन की विधियाँ और संगठन :-

26.4.1 भारत में पंचवर्षीय योजना निर्माण की अवस्थायं-

राष्ट्रीय योजना, एक ओर तो, केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों की योजनाओं तथा दूसरी ओर, निजि क्षेत्र या विशिष्ट भाषा में निगम क्षेत्र के लिए योजनाओं से मिलकर बनता है।

योजना निर्माण की पहली अवस्था में, पंचवर्षीय योजना के निर्माण के लिए सामान्य दिष्टिकोण या सामान्य पहुँच दृष्टि को निर्धारित किया जाता है, उस पर विचार किया जाता है। इस पहली अथवा प्रारम्भिक अवस्था में कुछ महत्वपूर्ण राष्ट्रीय स्थितियों, परस्थितयों, समस्याओं, प्रवृतियों, उत्पादकताओं जैसे अर्थव्यवस्था की वर्तमान स्थिति, अर्थव्यवस्था की सामाजिक आर्थिक और संस्थागत कमजोरियों, अर्थव्यवस्था की प्रगति की दीर्घकालीन दृष्टि के संदर्भ में उत्पादन के अतीत में रही प्रवृतियाँ और परिस्थितियों तथा विकास दर, असन्तुलनों को ठीक करने के प्रस्तावित सुझाव तथा मार्ग दर्शन बिन्दु इत्यादि पर प्रारम्भिक निर्णय और निष्कर्ष प्रस्तुत किये जाते है। यह काम नियोजन आयोग द्वारा किया जाता है और यह आख्यान उसके द्वारा केन्द्रीय मंत्रिमण्डल और राष्ट्रीय विकास परिषद के सुमुख प्रस्तुत किये जाते है।

दूसरी अवस्था में वे सभी अध्ययन आते है जो इस उद्देश्य से किए जाते है कि यह सामने आये और स्पष्ट हो कि सम्बन्धित पंचवर्षीय योजना में सम्मिलित किये जाने वाले भौतिक और स्थूल तथ्यों का एक मोटा—मोटा विचार करने योग्य प्रारूप तैयार हो सके और लक्ष्य निर्धारित हो सके ।

विभिन्न अध्ययन दलों द्वारा किये गए अध्ययनों से, नियोजन आयोग उन सभी मुख्य, मूल और विशिष्ट बातों तथा बिन्दुओं को एकत्रित करता है जो सम्बन्धित योजना के बनाने का आधार होंगे और फिर स्मरण प्रारूप (ड्राफ्ट मेमोरेण्डम) तैयार करके उसे केन्द्रीय मंत्रिमण्डल और राष्ट्रीय विकास परिषद के सम्मुख उनकी— औपचारिक स्वीकृति हेतु प्रस्तुत करता है।

यहाँ पर, यह स्पष्ट कर देना अनावश्यक नहीं है कि नियोजन आयोग और राष्ट्रीय विकास परिषद का कोई वैधानिक अथवा अधिकारिक अस्तित्व नहीं है । फिर भी, राष्ट्रीय विकास परिषद की संस्तुतियाँ, केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा बड़े आदर से ली जाती है । राष्ट्रीय विकास परिषद का अन्तिम उद्देश्य है हमारी योजनाओं को एक वास्तविक राष्ट्रीय चरित्र,

रूप और स्वरूप—देना और सभी राज्यों की नियोजन तथा योजना—क्रियान्विति से सम्बद्ध सभी क्रियाओं का समन्वय करना।

26.4.2 नियोजन के प्रकार और विधियाँ:

1. समाजवादी और पूँजीवादी नियोजन :- आर्थिक नियोजन को दो भागों - एक तो सख्त निर्देश और अधिकारिक आदेश से नियोजन और दूसरे, प्रेरित नियोजन अथवा प्रेरणा प्रधान नियोजन – में विभक्त किया जा सकता है । पहले प्रकार के नियोजन को प्राय: अनिवार्य या "आदेशात्मक" (शासक के और सत्ता के आदेशानुसार) नियोजन कहा जाता है और दूसरे को सामान्य रूप से आदर्शात्मक, दिशानिर्देशात्मक नियोजन कहते है । पहला नियोजन अधिनायकवादी, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था के अन्दर पाया जाता है । यह सदैव, राजनैतिक अधिनायक के आदेश और अधिकार पर ही बनता है और चलता है । यह स्थिति, एक प्रकार से, एक अलोचपूर्ण, दृढ़ और स्थिर अर्थव्यवस्था की ओर इशारा करती है जिसमें निवेश तथा कीमत-निर्धारण सम्बन्धी निर्णय, एक केन्द्रीय सत्ता (निरंक्श शासक या अधिनायक) दवारा लिए जाते है और वे निर्णय, अर्थव्यवस्था की अन्तिम आर्थिक इकाईयों और क्रियाशील इकाइयों पर क्रियान्विति के लिए थोप दिये जाते है । इस प्रकार की नियोजन व्यवस्था में, राज्य को निरंक्श शासकवादी भूमिका अदा करनी पड़ती है और इसमें सारी आर्थिक क्रियाओं का समाजीकरण पाया जाता है तथा होता है । इस व्यवस्था में, नियोजन, ऊपर से चलता है । इस नियोजन व्यवस्था के अन्तर्गत यह मान लिया जाता है कि राज्य ही सामाजिक लाभों कों अधिकतम कर सकती है या अधिकतम करने की क्षमता और बृद्धि रखती है । स्वाभाविक भी है कि एक शक्तिशाली औदयोगिक पारस्परिक निर्भरता वाले ढाँचे और व्यवस्था में उचित अन्त औदयोगिक नियोजन और भिन्न-भिन्न "निवेश सम्बन्धी निर्णयों" के समन्वय के लिए राज्य का कार्य व योगदान तो महत्व का होगा ही । फिर, साधनों के ज्यादा अच्छे प्रयोग, विदोहन और संरक्षण के लिए जिनका प्रयोग समाज के सामान्य लाभ के लिए किया जाता है, और संरचनात्मक और बाह्यीय अर्थव्यवस्था स्विधाओं को स्धारने और सामाजिक कल्याण की स्विधाओं को प्रोत्साहित करने की दिशा राज्य के पास रचनात्मक, सकारात्मक और सत्तात्मक शक्ति तो है ही जिसका उसको एकल लाभ मिलता है । सोवियत रूस इस प्रकार के नियोजन का प्रमाणित उदाहरण है ।

माना कि, समाजवादी नियोजन व्यवस्था के अपने गुण है पर इसका सबसे बड़ा दुर्गण है. इस व्यवस्था में निजी साहस या निजि उद्यम का गला घुट जाना उसका पूर्ण अवरोधन हो जाना। इतना ही नहीं समाजवादी नियोजन व्यवस्था अन्तिम स्थिति में सरकारी अफसरवाद अथवा नौकरशाही के अधीन हो जायेगी और यह वर्ग इस व्यवस्था के बड़े लाभों को हड़प जायेगा।

समाजवादी—नियोजन व्यवस्था के विपरीत, हम देखते है कि पूँजीवादी अर्थ—व्यवस्था में राज्य प्रशासन के भीतर एक नियोजन उपखण्ड (प्रकोष्ठ) का अस्तित्व पाया जाता है । उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व भी मौजूद होता है । और वह व्यवस्था को स्वीकार भी होता है । अमेरिका इस प्रकार के स्वतन्त्र व्यापार पूँजीवाद का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करता है ।

इसे स्थिति से निपटने के लिए और स्थिति को नियमित रखने के लिए, एक और प्रकार के नियोजन का समर्थन किया जाता है जैसा फ्रांस अपनाता है और वह है "निर्देशन प्रधान अर्थव्यवस्था" (गाइडेड इकोनोमी) इसमें दबाव या जोर नहीं होता बल्कि प्रेरणा या नैतिक प्रभाव होता है ।

2. भविष्यजनित–नियोजन (रोलिंग प्लान) प्रोस्पेक्टिव प्लानिंग एवं रोलिंग प्लान:– समय– सारिणी पर आधारित आर्थिक नियोजन या तो अल्पकालीन हो सकता है या दीर्घकालीन।

अल्पाविध नियोजन, एक वार्षिक योजना का स्वरूप ले सकता है और यह पांच अथवा सात वर्ष की अविध का भी हो सकता है। इतनी अविध वाली योजना मध्यम कालीन नियोजन का उदाहरण कहलायेगी। ऐसी अनेक अल्पाविध योजनाओं अथवा मध्यम कालीन योजनाओं का एक दूरगामी भविष्य—जिनत लक्ष्य हो सकता है और होगा भी। यह दूरगामी नियोजन बीस और पच्चीस वर्ष की अविध तक अपने पैर व पंख फैला सकता है। नियोजन कर्ताओं के समुख कुछ अल्पकालीन उद्देश्य हो सकते हैं जिन्हें वे वार्षिक और पंचवर्षीय योजनाओं को बना कर तथा उन्हें क्रियान्वित कर हल कर सकते है। पर इनके साथ—साथ कुछ दूरगामी उद्देश्य भी निश्चित ही होते हैं जिन्हें वे दीर्घाविध नियोजन के माध्यम से हल करते है। इस प्रकार के दीर्घाविध नियोजन को अर्थशास्त्री "प्रोस्पेक्टिव प्लानिंग" कहते हैं जिसका सम्बन्ध लम्बे अर्से में, निश्चित अविध की छोटी व मध्यम कालीन योजनायें बनाकर पूरा करते है। यह तो एक तरह से रेलगाड़ी का एक एक डिब्बा जोड़कर पूरी है। भारत में, छठी और सातवीं योजनाओं में यह दिष्टकोण अपनाया गया है। वास्तविकता तो यह है कि भारतीय नियोजन दूरगामी और भविष्य प्रधान योजनाओं "लक्ष्यों और उद्देश्य पूर्तियों को प्रदर्शित करने वाले "प्रोसैक्टिव प्लानिंग" का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करता है।

भारत की इस प्रकार की सावधि नियोजन प्रणाली में, एक और नया विचार अथवा प्रयोग हमारी नियोजन संरचना या संयंत्र में प्रविष्ट किया गया था 1978 में और वह विचार था "रौलिंग प्लान" का । जबिक 1974 से 1979 तक चलने वाली पांचवी योजना का असूचित अन्त कर दिया गया। और जनता सरकार के सत्तारूढ होने के कारण, 1978 से 1983 तक चलने वाली छठी योजना का प्रारूप (रूपरेखा) तैयार किया गया। पूरी छठी योजना "रोलिंग प्लान्स" की एक क्रमिक क्षृखला पर आधारित थी जिसके अन्तर्गत वार्षिक योजनाओं का परिवर्तन एक दूरगामी भविष्य प्रधान लक्ष्य युक्त "प्रोस्पेक्टिव दृष्टि" में पांच वर्षों की अविध के लिए करना था।

इस तरह हमारी नियोजन प्रणाली के इस नए, संरचनागत ढांचे में, यह प्रावधान किया गया कि प्रत्येक योजना एक एक वर्ष की अविध की एक एक "रोलिंग योजना' होनी चाहिए । जिसकी दृष्ट दूरगामी व भविष्य प्रधान लक्ष्य की प्राप्ति होनी चाहिए । इस "रोलिंग प्लान" व्यवस्था के अन्तर्गत एक वर्षीय योजनाओं का, निरन्तरता रखते हुए एक परिवर्तित दृष्टिकोण होता है जो पांच वर्ष की अविध तक फैलकर एक पंचवर्षीय योजना को पूरा करता है । इस

दृष्टि से 'रोलिंग प्लान' नियोजन की विचार धारा के अन्तर्गत यह अन्तर्निहित है कि, हर वर्ष अगले पांच वर्षों के लिए एक योजना होनी चाहिए ।

इस "रोलिंग प्लान" व्यवस्था का लाभ यह है कि इस प्रकार की योजना में कीमतों के उतार चढाव, विदेशी विनिमय भण्डार में प्रतिकूल परिवर्तन (गिरावट) प्रकृति की प्रतिकूलता, अर्थव्यवस्था में उपलब्ध संसाधनों की कमी अथवा तंगी इत्यादि के कारण उतम, बदलती हु यी परिस्थितियों के अंनुकूल और अनुसार, वांच्छित समायोजन करना, बहु त सुविधाजनक हो जाता है । इस व्यवस्था के अन्तर्गत यह आशा की जाती है कि जब योजना में निरन्तरता भी बनी रहेगी और समय तथा परिस्थिति के अनुसार योजनाओं में प्रत्येक वर्ष आवश्यक परिवर्तन तथा समायोजन भी होते रहेंगे, तो एक तो योजना वास्तविकता धारण करती जायेगी और दूसरे हर अगली वार्षिक योजना पूरे तथा आधुनिकतम आकड़ों के आधार पर ही बनेगी । इसका फल यह होगा कि योजना के प्रत्येक स्तर पर सुधार, समायोजन और परिवर्तन अपने आप ही होता रहेगा।

पर "रोलिंग प्लान" की इस तथाकथित परिवर्तनशीलता और वांछित समायोजनशीलता ने एक नए प्रकार की विषमता तथा दोष उत्पन्न कर दिया । किन्हीं दो सम्पूर्ण पंचवर्षीय योजनाओं की विकास दर की तुलना असम्भव व कठिन हो गयी । प्रशासन तंत्र के सम्मुख भी अनेक जटिलतायें आ गयी और योजना निर्माण का कार्य दूरूह हो गया।

26.5 सारांश

भारत में बहु स्तरीय नियोजन (राज्य स्तरीय और जनपद स्तरीय नियोजन के विषय संदर्भ में) विषयक उपरोक्त विस्तृत अध्ययन के पश्चात हम सारांश में यह कह सकते है कि भारत जैसी अधिविकसित अर्थव्यवस्था के लिए जिसमें व्यापक विकास तथा सूक्ष्म विकास की अलग—अलग आवश्यकता को पूरा करने वाली विकेन्द्रित प्रजातान्त्रिक नियोजन प्रणाली अपनायी गयी है । जो न तो रूस की तरह है, और न ही अमेरिका की तरह । जिसमें मिश्रित अर्थव्यवस्था का समुचित स्थान, महत्व, मान्यता, उपादेयता तथा औचित्य है । बहु स्तरीय नियोजन (राज्य स्तरीय और जनपद स्तरीय नियोजन के विशेष संदर्भ में) न केवल उपयुक्त वांछित और आवश्यक ही है अपितु व्यावहारिक भी । क्योंकि सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक, जनसंख्या—घनत्व परक, आर्थिक असन्तुलन, खनिज सम्पदा वितरण विषमता व (विविधता सम्बद्ध स्थितियों, परिस्थितियों और समस्या के रहते एक सत्तात्मक और एक दिशात्मक निरपेक्ष तथा स्थैतिक नियोजन न उपयुक्त ही है और न ही व्यावहारिक ।

दूसरे, देश का सामाजिक और वैधानिक आधार तथा दृष्टिकोंण प्रजातान्त्रिक है । जिसमें सभी स्तरों की क्षमता का उपयोग, प्रयोग और सहभागिता आवश्यक भी है और व्यवस्था की दृष्टि से व्यावहारिक भी । समाज कल्याण कार्य, सरकार तथा जनता दोनों के अपरिहार्य सहयोग से ही पूरा होता है और हो सकता है । सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति में जन सहयोग परमावश्यक है । बहु—स्तरीय नियोजन में सभी स्तर के लोगों की क्षमताओं व प्रतिभाओं का, साधनों व उपलब्धियों का, सफलता और विफलताओं का वांछित योगदान सहज तथा स्वाभाविक है । इससे

समूर्ण अर्थव्यवस्था को लाभ होता है । विशेष रूप से, जब प्रत्येक राज्य स्तर पर तथा जनपद स्तर पर नियोजन इकाइयों का गठन कर दिया जाता है । तब उस स्तर के लोग अपने—अपने दायित्वों को समझने लगते है और गौरवान्वित अनुभव करते है कि उनके हित में किये जा रहे सामाजिक आर्थिक कार्यों में उनकी भी साझेदारी व सहभागिता है । तथा उनकी वास्तविक समस्याओं पर उनके विचार लिए जा रहे है । स्वाभाविक है कि इस प्रकार के हर स्तर के नियोजन में जन—सहयोग, नियोजन की सफलता का साधक तत्व सिद्ध रहेगा ।

हाँ, यह अवश्य ध्यान रखना होगा कि बहु स्तरीय नियोजन के जहाँ अनेक व्यावहारिक लाभ व गुण है वहाँ उससे सम्बन्धित अनेक सावधानियाँ भी है जिनका ध्यान यदि नहीं रखा गया तो सम्पूर्ण नियोजन व्यवस्था, वास्तविक सफलता और प्रावैगिक क्रियान्वित से दूर हो जायेगी और दूर रहेगी । यह ध्यान रखना होगा कि प्रत्येक स्तर पर चाहे वह जिला और जनपद स्तर हो अथवा राज्य स्तर हो या केन्द्र स्तर, क्रियान्विति में कोई ढिलाई या शिथिलता या उत्तरदायित्व का अभाव, अकुशलता जैसे दोष नहीं आने चाहिए । नियोजन तो एक श्रृंखला है जिसकी प्रत्येक कड़ी महत्वपूर्ण है ।

26.6 शब्दावली

इस पाठ में प्रयुक्त व सम्मिलित कुछ मुख्य शब्द, शब्दावली और उपवाक्य इस प्रकार है :-

- 1. प्रजातान्त्रिक नियोजन व्यवस्था।
- 2. अद्भविकसित अर्थव्यवस्था ।
- 3. अधिनायकवादी नियोजन व्यवस्था ।
- 4. प्रावैगिक विकास दर ।
- 5. केन्द्रित बनाम विकेन्द्रित नियोजन व्यवस्था।
- 6. निर्देशात्मक नियोजन व्यवस्था।
- 7. मिश्रित अर्थव्यवस्था।
- 8. समाजवादी अर्थव्यवस्था।
- 9. वितरणात्मक न्याय।
- 10. पूँजीवादी अर्थव्यवस्था तथा नियोजन।
- 11. तानाशाही अथवा निरंक्श शासकवादी कार्य।
- 12. अधिकीकरण की प्रक्रिया।
- 13. रोलिंग प्लान।
- 14. सम्भावी अथवा भविष्यगामी नियोजन।

बोध प्रश्न- 1

- 1. आपके गांव में खरंजा निर्माण होना है। उसका नियोजन कौन करेगा।
- 2. दो गांवों के बीच एक छोटी नदी पड़ती है। उस पर कलवर्ट बनना है। उसके निर्माण की योजना कौन बनायेगा।

- 3. जिले में अम्बेदकर गांवों को सड्कों से जोड़ने की योजना बनाने का दायित्व किस सत्ता व संस्था का है।
- 4. राजस्थान के सूखाग्रस्त, क्षेत्रों को केन्द्रीय सहायता का आवण्टन करना है। कौन करेगा।
- 5. विश्व बैंक से मिलने वाली विकास राशि सर्वप्रथम कौन प्राप्त करता है।
- 6. पचवर्षीय योजना में प्रस्तावित वार्षिक राशि का प्रत्येक राज्य को आवण्टन कौन करेगा।
- 7. समूर्ण देश में गरीबी और बेरोजगारी से निपटने की योजना बनाने का मुख्य दायित्व किसका है।
- 8. देश में अमुक-अमुक नदी पर बाँध बनाने के लिए एक सर्वेक्षण दल की नियुक्ति करना है तथा वांच्छित स्थानों पर (भिन्न-भिन्न राज्यों में) बाँध बनवाने है। यह सब कार्य किसके निर्देशन में होगा।
- 9. नियोजन आयोग और वित्तीय आयोग में क्या अन्तर है। **उत्तर:** नियोजन आयोग का वैधानिक अस्तित्व कुछ भी नहीं। वह तो. सलाहकार समिति
 की तरह है। इसके विपरीत, वित्तीय आयोग एक वैधानिक संस्था है।
- 10. भारतीय नियोजन का मूल, आधार क्या है।

बोध प्रश्नों के उत्तर संकेत : -

- 1. ग्राम सभा।
- 2. जिला पंचायत या जिला परिषद ।
- 3. जिला नियोजन समिति तथा मुख्य विकास अधिकारी (जनपद मुख्यालय पर) ।
- 4. राज्य सरकार तथा राज्य नियोजन आयोग।
- 5. केन्दीय सरकार।
- 6. नियोजन आयोग तथा राष्ट्रीय विकास परिषद और वित्त मंत्रालय संयुक्त रूप से।
- 7. नियोजन मंत्रालय, नियोजन मंत्री तथा साथ में नियोजन आयोग का सर्वेक्षण दल।
- 8. सिंचाई विभाग और मंत्रालय, केन्द्रीय सरकार तथा नियोजन आयोग।
- 9. उत्तर प्रश्न के नीचे दिया हु आ है।
- 10. प्रजातान्त्रिक।

26.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- 1. I.C. Dhingra: The Indian Economy
- 2. Planning Commission : तृतीय पंचवर्षिय योजना छठी पंचवर्षिय योजना

सातवीं पंचवर्षिय योजना

आठवीं पंचवर्षिय योजना

3. Susheela Subrahmanya & M.V. Srinivasa–Gowda (Ed.)–Regional Economic Development in India.

इकाई 27

नगर एवं महानगर नियोजन

इकाई की रूपरेखा

- 27.0 उद्देश्य
- 27.1 प्रस्तावना
- 27.2 महानगरों की मुख्य समस्याएं
- 27.3 नगरों व महानगरों की प्रमुख समस्यायें व नियोजन
- 27.4 समन्वित अंचल क्षेत्रीय नियोजन
- 27.5 अध्ययन व समस्याओं का सारांश
- 27.6 शब्दावली
- 27.7 एक केस स्टडी-कलकत्ता का सन्दर्भ (स्वअध्ययन मॉडल)
- 27.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

27.0 उद्देश्य

- (1) इस पाठ का उद्देश्य भारत के सन्दर्भ में नगरों व महानगरों की समस्याओं अध्ययन करना है।
- (2) इसके बाद कतिपय सुझाव देना है जो भारतीय नगरों को उन्नत करें, अगर वे पश्चिम के उत्तम नगरों की भांति ना भी हो पायें तो ।
- (3) महानगर का नियोजन ठीक रखने के लिए आस-पास के नगरों को उन्नत होना चाहिए । छोटे नगरों की समस्यायें न बढ़ें, इसके लिए ग्रामीण नियोजन भी इसका अंग होना चाहिए।

27.1 प्रस्तावना

भारत जैसे देशों में शहरीकरण अनियोजित तथा dysfunctional रहा है । यह प्रक्रिया ग्रामीण अर्थव्यवस्था की शोषक ज्यादा और पोषक कम रही है । शहरी आबादी का तेजी से बढ़ना (Population Impiosion) कहाता है जो देश में जनसंख्या विस्फोट का परिणाम है । हम महानगरों, नगरों और कस्बों के बारे में इस पाठ में अध्ययन करेंगें । अधिकतर महानगर एक मिलियन या 10 लाख से ऊपर जनसंख्या, शहर / बड़े शहर 50000 से 10 लाख तक, कस्बे 50000 से कम आबादी के होते है ।

परन्तु अलग–अलग देशों की स्थिति अलग–अलग होती है आस्ट्रेलिया में कितपय 25000–50000 के शहरों में ऐसे अस्पताल होते है जैसे दिल्ली में भी नहीं है ।

शहर व गांव दुहरी अर्थव्यवस्थायें है बीच के शहर बीच की अर्थव्यवस्थायें है । शहरों— शहरों मे बड़ा फर्क है । उद्योग के कारण एक शहर उन्नत परन्तु प्रदूषित हो सकता है, दूसरा शहर स्वच्छ परन्तु उद्योग व ऊँची आय रहित हो सकता है । किसे ठीक मानें ? वास्तव में प्रदूषण रहित औद्योगीकरण के शहर होने चाहिए । सभी कोटि के शहर यातायात—संचार—शिक्षा—ट्रेनिग—स्वास्थ्य—व्यापार—रोजगार—आय सृजन तथा अनेक सुविधाओं के केन्द्र है । हर शहर अपने आस—पास के स्थानों को Central Place function देता है परन्तु बड़े शहरों से वह यह लेता है ।

27.2 महानगरों की प्रमुख समस्याएँ

एक पाठ / पेपर का आकार पुस्तक के आकार के बराबर तो हो नहीं सकता। अत : हम अपने विषय को मात्र 12 बिन्दुओं में समेटेंगे । इन्हें हम dirty dozen problems की संज्ञा दे सकते है

महानगरों व नगरों की समस्यायें निम्न रख सकते है तथा इन्हें हल करना ही नियोजन के बिन्द् होंगे।

- 1. Crisis, disaster and Clamity management. संकट कालीन स्थितियों से निपटने का नियोजन
- 2. आवासीय नियोजन
- 3. उद्योग स्थापना नियोजन बाजार नियोजन
- 4. यातायात व सड्कों का नियोजन
- 5. पेय जल नियोजन (चाहे तो इसे सर्वप्रथम रख सकते है परन्तु नम्बरीकरण महत्व के आधार पर नहीं है)
- 6. बिजली, संचार, शिक्षा व स्वास्थ्य नियोजन
- 7. कूड़ा निकासी नियोजन
- 8. पर्यावरण प्रबन्धन : प्रदूषण चचनियंत्रण
- 9. वायु प्रदुषण
- 10. ध्वनि प्रदूषण
- 11. जमीन प्रदूषण
- 12. प्रशासनिक नियोजन

27.3 नगरों व महानगरों की प्रमुख समस्यायें व नियोजन

- (1) नगरों व महानगरों का आपातकालीन समस्याओं से निपटने का नियोजन नगरों व महानगरों में अनेक आपातकालीन स्थितियाँ उत्पन्न हो सकती है जैसे
- (अ) अग्नीहादसा

इसके लिए हरजोन में इस तरह से अग्निशमन वाहन होने चाहिए कि वे 5— 10 मिनिट में संबंधित स्थान पर पहुंच जायें । इन्हें व्यक्तियों को घर से निकालने के लिए सीढ़ी—रस्सी (जो अग्निफ़्फ हों) लेकर चलना चाहिए । बहुमंज़िला इमारतें या तो उतनी ही ऊँची हों जितनी कि अग्निशमन वाले बुझा सकते हों या उनमें अपने इन्तजाम होने चाहिए । पानी व पंपिंग की व्यवस्था समयोचित "हायड़ेन्ट पुआंट्स" से होना चाहिए । गलियों व तंग बस्तियों में पहुंचने के dry—wins करना चाहिए, अर्थात पहले से नकली बचाव प्रयास के अभ्यास करने चाहिए ।

(ब) सूखा–बाढ़ इन्तजाम

कभी पानी कम बरसे तो आपातकालीन वैकल्पिक पानी व्यवस्था की तैयारी पहले से नियोजित होनी चाहिएं । अभी VIPs को इस कष्ट से मुक्त रखते है सभी पर पानी राशन लागू होना चाहिए।

निदयों के किनारे बसे या समुद्र किनारे बसें लोग हर वर्ष हजारों में कहीं न कहीं मरते है। शासन यह कह कर हाथ धो लेता है कि वे गैर कानूनी बस्तियों में रहते थे। रूके अस्थाई केम्पों के लिए कम्बल, टेन्ट, बड़े कम्यूनिटी किंचित बर्तन आदि राज्य भंडारण में होने चाहिए कितपय स्थान (स्कूल ज्यादातर) इसके लिए होने चाहिए।

- (स) भूकम्पों का नियोजन तो होता नहीं है परन्तु जो क्षेत्र इसके क्षेत्र है, जहां भू—स्खलन होता है वहां कहीं न कहीं कुछ पूर्व तैयारी एक बड़े अंचल क्षेत्र में होती है, पूल के रूप में ।
- (द) दुर्घटना क्रेन, एम्बुलेन्स तथा अस्पतालों में स्पेशल Trauma wards नगरीय नियोजन का अंग है।
- (इ) यातायात व्यवस्था अस्थाई रूप से भंग होने की स्थिति में आवश्यक सामान की पूर्ति का इन्तजाम होना चाहिए ।
- (फ) अगर नगर में मेले या अन्य प्रकार के जमघट होते है, जैसे इलाहाबाद, हरिद्वार या अन्य अनेक शहरों में तो सम्पूर्ण प्रशासन व शहर में सारे बन्दोंबस्तों का तब सक्रिय होने का इन्तजाम होना चाहिए।

(2) आवासीय नियोजन

हर बड़े नगर व महानगर की योजनायें होती है तथा होनी चाहिए। ये 50 वर्ष की अग्रिम होनी चाहिए जिनमें से हर वर्ष एक वर्ष घट जाता है व एक जुड़ जाता है जैसे 1998–2048 फिर 1999–2049 तथा 2000–2050........इनमें मुख्य अवयव 4 भाग के होते है।

- (1) भावी भू-प्रयोग के लिए स्थान छोड़ना / वकसित करना।
- (2) भविष्य में किन क्षेत्रों / बिल्डिंगों (भवनों—मकानों) को तोड़ना तािक वे गिरने के समय व्यक्तियों को काल ग्रसित न करें, या उन्हें तोड़कर सड़क निकालना या बाजार, बस स्टेंड या कुछ भी बनाना जिससे भू—प्रयोग. ठीक हो । इनसे विस्थापित व्यक्तियों का इन्तजाम करना।
- (3) यह स्वीकारते हुए कि अतिउच्च, उच्च, उच्च मध्यम, निम्न मध्यम, निम्न तथा आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग सभी महानगरों में रहेंगें । इनके लिए भावी विकास के लिए जमीन आवंटन करना परन्तु अमीरों के लिए राजाओं जैसी कोठियों के लिए बड़े बगीचों सिहत नहीं। या तो महानगर प्रशासन स्वयं फ्लेट निर्माण हाथ में ले या निजी फर्मों को सहायता दे । अभी महानगर प्रशासन अतिक्रमण रोकने में सारे तंत्र को लगा देता है । सकारात्मक कार्य तो भविष्य में आवास की कमी दूर करना है । पिश्चमी देशों के महानगरों में गन्दी बस्तियाँ नहीं होती ।

(4) जल–मल निकासी की योजनायें सुधारना तथा नयी को पूर्ण रूप से सक्षम बनाना। यथा सम्भव नदियों को भी प्रदूषण से बचाना । यह माना गया था कि गन्दी बस्तियाँ भारत समाप्त नहीं कर पायेगा । मात्र उनकों प्रदूषण रहित किया जाना जाहिए।

अर्बन सीलिंग या शहरी भूमि परिसीमन तो सफल नहीं हु आ परन्तु शहरों का विकास माफिया ताकतों से अलग नहीं किया जा सका। शहरों के मालिक—मकान व किरायेदार दोनों असंतुष्ट है। पुराने मकानदार अपने मकान या आय (वाजिव बाजार किराये से) प्राप्त नहीं कर पाते। हजारों फाइलें ही गुम हो जाती हैं, माफिया के आदेश पर। शक्तिमान लोग अच्छे मकान बनाकर उनकी कम्पनियों व सरकार को किराये पर देकर अच्छी आय प्राप्त करते है और सम्पत्ति की सुरक्षा भी पाते है। बहुत भूमि शहरी उद्योगों के लिए लेकर फिर उनमें उद्योगों का वास्ता देकर अत्यन्त अधिक मात्रा में धन, अयोग बदलकर माफिया कमाती है तथा भारत के बड़े महानगरों शहरों में गरीब व मध्यमवर्ग का अस्तित्व खो गया हैं।

आज के महानगर उपनिवेशवादी जमाने के निर्यातक केन्द्र नहीं है उन्हें तो आन्तरिक (Hierarchy of Settlements) को पोषण करना है । अभी भी भारत के बड़े शहरों ने अपने (Hinterland) से पोषण ज्यादा पाया है, दिया कम है । भारत का औद्योगिक मूल्य सृजन (Value - Adding by Manufacturing) लगभग एक चौथाई महाराष्ट्र में होता है व उसका 78% मुंबई—पूणे—थाणें से होता है । जरूरत विकेन्द्रीकरण की भी है, चाहे यह बम्बई हो या दिल्ली, कानपुर या अन्य ।

(3) औद्योगिक नियोजन तथा महानगर नियोजन

बड़े शहरों को न केवल Locational poles बल्कि Functional poles भी बनना है। इन महानगरों का विकास मात्र उनके लिए ही नहीं बल्कि तत्सम्बन्धी अंचलक्षेत्रों के हित में भी होना चाहिए । अच्छी स्थिति तो यह है कि महानगर ही Growth poles न बने रहें । महानगरों के आस पास चारों ओर Growth foci उन्नत होना चाहिए । सूक्ष्म (Micro) बड़े (Meso) वृहद (Mano) सभी अंचल क्षेत्रों में महानगरों व गांवों से सम्बंधित आर्थिक क्रियायें पोषित होनी चाहिए। महानगरों की यह जिम्मेदारी है कि वहां अन्दरूनी क्षेत्रों के लिए औद्योगिक सेवाओं का उत्पादन हो । औद्योगिकरण महानगरों को बड़ा, प्रदुषित, महंगा व मुश्किल जीवन केन्द्र बना देती है । अदाहरणतया : महानगरों में कृषि उत्पाद पर आधारित उद्योग नहीं होने चाहिए । महानगर नियोजन में औदयोगिक इकाई स्थापना के ये नियम पालन होने चाहिए ।

- (1) केवल उच्च मूल्य सृजन के तथा आवाज प्रदूषण न करने वाले उद्योग (जो वायु व जमीन प्रदूषण भी न करें) ही महानगरों में नये सिरे से स्थापित होने देने चाहिए ।
- (2) जो प्रदूषण फैलाने वाले तथा कम मूल्य सृजन के उद्योग पहले से हों, तो उन्हें उसी जगह पर नया परन्तु दूसरी लाइन का उद्योग स्थापित करने या हाउसिंग कॉलोनी बनाकर बेचने देने से पुराने उद्योगपित इतना धन प्राप्त कर सकें जिससे वे पुराने उत्पाद उद्योग को नयी—अन्दरूनी जगह स्थापित कर पायें।

बाजार के नियोजन के लिए Commercial Complexes के लिए जगह रखनी चाहिए। फुटकर बाजार तो उपभोक्ताओं के निकट होते है । हर महानगर में वस्तु–विशिष्ट थोक बाजार होते है । अगर ये बहुत बीच में होते है तो सफाई का ध्यान रखना होता है तथा सामान लाने व ले जाने वाले ट्रकों के लिए सड्कों की तथा पार्किंग व्यवस्था होनी चाहिए । बाकी काम तो निजी क्षेत्र के व्यापारी स्वयं कर लेते है ।

- 1 फुटकर दुकानें : प्रत्येक मोहल्ले में एक काम्पलेक्स गुमिटयाँ न होकर सङ्कों पर अतिक्रमण न करने वाली पक्की दुकानें होनी चाहिए ।
- 2 पार्किंग व्यवस्था : साइकिलों, स्कूटरों, कारों, ट्रकों, हाथ ठेलों, टेम्पो सभी के लिए होनी चाहिए । बेचने वाले ठेले अगर स्वीकृत हों तो चलायमान रहें।
- 3 गोदाम व्यवस्था : जहाँ पर भवन सुरक्षा को कोई खतरा न हो वहाँ पर अंडर ग्राउन्ड गोदाम बडे काम्पलेक्स में बनें ।
- 4 अस्थाई बाजार : जैसे हाट, सब्जी हाट (Weekly Markets), श्रम बाजार, जहाँ रोजनदारी के लोग खड़े रहते है, उनके लिए स्थान होना चाहिए ताकि यतायात अवरूद्ध न हो ।

(4) महानगर यातायात : उसका नियोजन

- बड़े उद्योगों में Locational weights ऊँचे होते है, अर्थात जो कच्चा माल आता है तथा जो निर्मित माल जाता है उसका वजन बहुत होता है । इसके कारण ये उद्योग सड़कों को नष्ट करते है । इनके आस पास की सड़कों के रख रखाव का दायित्व कुछ उद्योगों पर भी होना चाहिए । अनेक रेलवे स्टेशन जो महानगर के बाद होते है उन पर समान रूप से लदान—उतार का भार बांटना चाहिए। अगर सम्भव हो तो नई इकाइयाँ इन्हीं स्टेशनों के पास स्थापना के लिए बांट दें । यह वहां पर उपलब्ध जमीन पर निर्भर करेगा।
- 2 हर महानगर में यथा सम्भव निरन्तर ट्राफिक फ्लों की व्यवस्था होनी चाहिए चाहे यह सर्कुलर रेल से हो, या अंडर ग्राउन्ड रेल से हो, या बसों से हो। परन्तु भारत के सन्दर्भ में बम्बई की बस सेवा का अनुशासन पालन योग्य है तथा दिल्ली का बचने योग्य। अगर नयी कालोनियाँ बनती है तो चार लेन ट्राफिक की व्यवस्था पहले से करनी चाहिए । बिजली की लाइने इस तरह ऊंची हों कि double decker चलना संभव हो।
- 3 पुराने इलाकों की समस्या अत्यन्त गम्भीर रहती है । यहाँ की सडकों को चौड़ी करना सम्भव नहीं हो पाता । आस—पास के घर व दुकानों को तोड़ना सम्भव नहीं होता क्योंकि मुआवजे की मात्रा तथा विरोध बहुत ऊँचा होगा। यहां की निकासी समस्या कम करने के लिए बाजारों को उन्नत करना तथा मिनी यातायात साधनों का विकास जरूरी होता है । इसके लिए इन सडकों का रखरखाव विशिष्ट रूप से जरूरी होगा।
- 4 कोई भी यातायात प्रणाली घाटे पर नहीं चल सकती । सार्वजनिक नगर यातायात प्रणाली में सहायता (Subsidy) होने से वे घाटे में जाती हैं और धन की कमी से सक्षम नहीं रह

V.Nath, Eln, jan.30,1998 on "Regional Planning for Large Metropolitan Cities.

वर्ष 2001 के लिए दिल्ली का स्थान तब ही बना था । इसके लिए "authority ने आस-पास के राज्यों को शामिल करके बनाने की सिफारिश की ।

- पाती हैं । अत : कुछ चार्टर बसे जिनकी सहायता से चलाया जाये उन्हें छोड़ निजी यातायात कारगर होता है परन्तु पुलिस बन्दोबस्त होना ही चाहिए ।
- 5 महानगरों में कम से कम 5 टर्मिनल होनी चाहिए। एक केन्द्रीय तथा चार, चारों दिशाओं में, इनके बीच शटल सेवा चलने से भीड कम व सस्ता परिवहन होगा। अन्यथा कभी यह होता है कि दूर से महानगर में आने का जितना व्यय होता है, उससे अधिक महानगर में घर पहुंचने पर हो जाता है।
- 6 भारी वाहन का प्रवेश व निकासी रात को 1 बजे से सुबह 6 बजे के बीच होनी चाहिए। अन्तत : Inter-modal model स्वयं बन जाते है ।

सड़कें

भारत के महानगरों में तीन तरह की सड़कें होती है— वी. आई. पी. सड़कें जिन पर विशिष्ट लोगों के आने जाने की बारम्बारता अधिक है और वे हमेशा अच्छी रहती है । गरीबों के मोहल्लों की सड़कें तथा मध्यम श्रेणी की सड़कें जो हमेशा खराब रहती है ।

समतल महानगरों में पानी की निकासी बड़ी समस्या है—जैसे बम्बई में सड़कें व रेल पटिरयाँ बहुत जल्द पानी में डूब जाती हैं । यहाँ पर सड़कों को बीच में ऊँची तथा दोनों तरफ ढाल वाली होना चाहिए । कई महानगरों में ऐसे स्थान बनने चाहिए जहाँ से पम्पिंग द्वारा पानी को आगे बढ़ाया जा सके । भारत की सड़कें ऐसी है जो कि टायर बनाने वालों की पसंद है । उनकें कारण ही भारत में इनकी विक्री जरूरत की दो गुनी है । महानगरों में सड़कों में दो तरफा ट्राफिक का "डिवाइडर" द्वारा पृथ्थिकिकरणं तथा प्रकाश व्यवस्था उचित होनी चाहिए । विदेशों में तो क्लोज सर्किट टी. वी. तथा रेडियो निर्देश से ट्राफिक का नियंत्रण होता है तथा मोड़ पर ब्रेक के लिए तकनीकी शोध तक होते हैं । ट्राफिक सिगनल तो अत्यन्त जरूरी होते हैं तथा सड़कों की प्रकृति के अनुसार स्पीड सीमा भी ।

(5) पेय जल की व्यवस्था

महानगरों के लिए बड़ी निदयाँ, तालाब, झीलें या बांध से पानी की व्यवस्था होती है परन्तु अनेक स्त्रोतों से दो तरह की समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं । एक तो इनमें पानी कम पड़ने लगा है । अकसर निदयों का पानी पहले पड़ने वाले habitats भी अधिक प्रयोग करते है या ग्रामीण क्षेत्रों में सिंचाई होने लगती है । और दूसरे पानी प्रदूषित होने लगा है । पर्याप्त तथा स्वच्छता बनाये रखना जरूरी है । यह सर्वविदित है कि अब शहरों में शुद्ध पानी का एक लीटर, शुद्ध दूध के भाव मिल रहा है । सभी महानगरों में पानी की लाइनों के बारे में आद्यतन चिंतन इस तरह है—

- 1 पानी की लाइनों में वाहय झिरन न हो, न जंग लगे न उनमें प्रदूषण जायें ताकि hepatitis B जैसी बीमारियों से बचा जा सके ।
- 2 कच्चे पानी की लाइनें अलग हों ।
- 3 स्वच्छ पानी की योजनायें अगले 50 वर्षों के लिए भी नियोजित हो ।

शिक्षा-स्वास्थ्य-अन्य सेवायें

नगर नियोजन में विभागीय कार्यक्रमों के कार्यो तथा भवनों के लिए जगह का प्रावधान करना पड़ता है । स्कूल तो शिक्षा विभाग खोलता है परन्तु उसके लिए भवन व खेल के मैदान का बन्दोबस्त तो नगर नियोजन में होता है । निजी क्षेत्र वाले अपने स्कूल उच्च वर्ग के लिए खोल सकते है, परन्तु निम्न व निम्म मध्यम वर्ग की संस्थायें तो सरकारी होती है ।

यही बात अस्पतालों, बस स्टेंड, पेट्रोल पम्प से लेकर पोस्ट आफिस तथा सार्वजनिक दफ्तरों, मंडियों आदि सभी के लिए लागू होती है । बम्बई में तो महानगर की म्यूनिसिपल कार्पोरेशन ने बहुत अच्छा अस्पताल बनाया।

महानगरों में कलाकेन्द्र, रंगमंच केन्द्र, सार्वजनिक वाचनालय, घूमने के लिए पार्क, चिड़ियाघर, अजायबघर, जू तथा अनेक संग्रहालयों के लिए स्थानों का प्रावधान होता है, तथा होना चाहिए।

इसके अतिरिक्त जहाँ पर सतही प्रदूषण न हो वहाँ पर महानगरों में tube—wells की संख्या अच्छी होनी चाहिए। महानगरों में Crisis management के लिए इतने टेंकरों की व्यवस्था होनी चाहिए कि अगर पानी की लाइनें कुछ मोहल्ले में गड़बड़ हो तो आन्तरिक इन्तजाम हो।

भारत जैसे देश में पानी की व्यवस्था के लिए शासकीय अनुदान ही मुख्य है । 60 से 100 रूपया प्रतिमाह का जो किराया, शासन / महानगर परिषद लेते है वह अपर्याप्त होता है । पूरा खर्चा तो जनता से नहीं ले सकते परन्तु differential rates या विभेदपूर्ण चार्ज लेकर अब अधिक से अधिक राशि लेनी चाहिए ताकि लोग "पानी का मूल्य जाने" । महानगरों में ऐसे पेड लगाने चाहिए जो रोज पानी न चाहें ।

(6) बिजली-संचार-अन्य सिरोपरी सुविधाएं

महानगरों में शासकीय तंत्र बिजली प्रदान करने में अक्षम रहा है । बम्बई में टाटा की बिजली निरन्तर प्राप्त होती है तथा जरूरत के अनुसार मिलती है । दिल्ली में दोनों बातें निश्चित रूप से अनिश्चित है । कलकत्ते में साम्यवादी सरकार भी सार्वजनिक उपक्रम को ठीक है चलाने का उदाहरण प्रस्तुत न कर सकी ।

संचार क्षेत्र में निजी क्षेत्र के आने से सक्षमता बढ़ रही है । स्वास्थ्य सुविधाओं का quarternary क्षेत्र महानगरों में रहता है । सभी functions व facilities या सुविधायें उच्च वर्ग की होती हैं । निजी क्षेत्र की सक्षमता रखने वाली स्वास्थ्य, शिक्षा, बिजली, बैकिंग, यातायात संचार आदि का होना जरूरी है ।

(7) कूड़ा निकासी नियोजन

इसके लिए भी भारत के महानगरों को पश्चिमी देशों के मॉडल अपनाने चाहिए । सर्विस लेट्रिन तो मानवता पर कलंक है इन्हें समाप्त कर Sewerage System या Soakpitsystem होना चाहिए। ऊँचाई—नीचाई के अनुसार ब्रूस्टर पम्पों से कहीं एक जगह ले जाकर शहर से दूर खाद बन सके तो वह करके अन्ततः पानी को Treat करके नदियों या समुद्र में छोड़ना चाहिए।

इसके वित्त प्रबन्धन के लिए पर्यावरण स्धारने वाली अन्तर्राष्ट्रीय संस्थायें

अनुदान दे सकती है, बशर्तें कि धन का सही प्रयोग सामने आये । गंगा एक्शन प्लान के भ्रष्टाचार ने भारत की साख गिरायी है । इन कार्यों में विदेशी आयातीत सामग्री नहीं लगती, न ही कोई आयात जरूरी होता है । विदेशी अनुदान तो आन्तरिक व्ययों को इस प्रकार के कार्यों में divert या दिशा देने में सहायता करता है । रिकार्डों ने ऐसे कार्यों के लिए Cess या Capital levy दफा या विशिष्ट विकास कर लगाने को कहा था ।

निम्न बिन्दु जरूरी हैं

- ० सार्वजनिक मूत्रालय व शौचालय जिन्हें स्वच्छ रखा जाये ।
- अस्पतालों का कचरा दूर जाकर स्पेशल प्लाटों में जलाना ।
- सड़क पर कचरा फैंकना सर्वथा मना व भारी जुर्माना
- बँगलोर की तरह चार रंग के डिब्बों में (i) प्लास्टिक, कांच, (ii) biodegradable
 waste खाद कचरा, (iii) धात्विक कचरा, व, (iv) अन्य एक स्थान पर रखें ।
- सीवरेज के पाइप व मेन होल कहीं से लीक न करें ।
- आधुनिक व पुराने तरीकों को मिलाकर वातावरण स्वच्छ रखें ।

भारत वे महानगरों में यही सबसे बड़ी समस्या है । "यमुना पार" की दिल्ली जहाँ दिल्ली की एक तिहायी आबादी रहती है वहाँ गलियाँ मोहल्ले नर्क है । इस सम्बन्ध में सूरत एक उदाहरण है जो एक –अत्यन्त गन्दे शहर से एक साफ शहर में जनआन्दोलन व जनता के सहयोग से ठीक हुआ।

आज के महानगरों में हजारों अरबपित रहते है । उनकी तथा सभी व्यापारियों की एवं आम जनता सभी का सहयोग जरूरी है । धन राशि दूसरे नम्बर पर महत्वपूर्ण है ।

(8) पर्यावरण प्रबन्धन : प्रदूषण नियंत्रण

महानगरों में eutrophic stress है जो मानव उपभोग जानवरों के शरीर के अवयवों के सड़ने से होती है। फिर exploitature stress है जो धात्विक शोधन व कारखानों के कचरों से होती है। इसके बाद disruptive stress है जो महानगरों में निर्माण कार्य से होती है। उसके बाद development stress है जो बढ़ते वाहनों के प्रदूषण से लेकर आबादी के सभी पहलुओं के कारण है। कोई भी नदी शहर में आने पर जितनी साफ रहती है शहर से निकलने पर वह गन्दा नाला बन जाती है। आज नदियों की स्वयं को साफ करने की क्षमता गांवों से नहीं बल्कि महानगरों के कारण समाप्त हुई है।

(9) वाय् प्रदूषण

धूल, धुआँ गैसें, यातायात साधनों से निकला सीसा सिहत धुआँ, फोटो केमीकल तथा फिजियो—केमीकल परस्पर—प्रतिक्रिया से वायु प्रदूषण है। महानगरों में रहना अपनी आयु कम करना बन गया है। एक के पीछे एक लगी हुई कारें, चिमनियाँ, धूरे(कचरे के ढेर) वायु प्रदूषण करते है।

महानगरों में वायु में निम्न प्रदूषण तत्व करते है-

- 1 सल्फर कम्पाउन्ड SO2 तथा SO3 तथा तेल से उत्पन्न धुआ गैस ।
- 2 कार्बन मोनोक्साइड जो कारों, टकों आदि के आन्तरिक कम्बश्चन से उत्पन्न होती हैं।
- 3 नाइट्रोजन कम्पाउड NO तथा NO2 जो कोयले या केरोसीन आदि के प्रयोग से हवा में जाते है।
- 4 बेन्जथाइरीन (जो कि केन्सर पैदा करती है) जो कि वाहनों के धुँऐ से आती है।
- 5 सीसा जो वाहनों के धुएँ से आता है।
- 6 अनेक प्रकार की धूल व दुर्गन्ध।

कतिपय कम्पाउन्ड-संयोग तो अत्यन्त घातक हो जाते है। महानगरों में " In the Presence of sunlight, nitrogen oxides in combinations with hydrocarbons undergo a chemical reaction and generate irritating noxious substances called oxidants.

फैफड़ों की बीमारियाँ बान्क्राइटिस, एम्फेसीमा, अस्थमा (asthama) तथा bronchiectasis अत्यन्त घातक होती है। इसके लिए महानगरों में सीसा—रहित प्रैट्रोल प्रयोग जरूरी है व कतिपय घन्टों में gas marks जरूरी है। Carbonmonoxide combines with haemoglobin much more earily than does oxygen. High concentrations of carbon monoxide in the blood interfare with supply of oxygen necessary to maintain metabolism in cells. Acute poironing by this substance develops such systems as headache, naurea, dizziness, temporary blackout and impaired muscular co—ordination. Lead Poironing causes anaemia Photochemical amog brings eye irritations and cough.

वाय् प्रदूषण को रोकने का नियोजन

सारा नदी प्रदूषण बड़े शहरों के कूड़े कचरे व मल निकासी से होता है। औद्योगिक "वेस्ट" भी नदियाँ प्रदूषित करती है। शराब के कारखाने के वेस्ट (शराब तो पेय है) तो पानी को पीने योग्य नहीं छोड़ते । ये सब रासायनिक प्रदूषण करते है। जब औद्योगिक वेस्ट नदियों में मिलती है तो नदियाँ अपने आप को साफ नहीं कर पाती। बनारस, कानपुर व पटना में गंगा वास्तव में गटर जितनी प्रदूषित रहती है। प्रदूषित पानी से सब्जी, कच्चे बीज, फल, मछली, दूध व अनाज भी प्रदूषित हो जाता है। पानी में रंग आ जाता है(रासायनिक वेक्टेरियल प्रदूषण से जिगर, आतों व समूर्ण पेट की बीमारियाँ होती है जो अन्य अंगों को भी रोग ग्रस्त करती है।

महानगरों में फिटकरी से ठीक किया गया, क्लोरीन से साफ किया गया तथा फिल्टर पानी देना चाहिए। यह कर्त्तव्य है। अगर पानी साफ करके नहीं दे सकते तो कम से कम नदियों या पीने के पानी के स्त्रोतों को प्रदूषित होने से बचाना चाहिए। अगर इनमें डेटरजेन्टस जाते है तो पानी अपने आप को साफ नहीं कर पाता । उर्वरक भी अंततः बहकर पानी में प्रदूषण करते है। पानी में महानगरों की पानी प्रणाली में आरसेनिक, केडीमियम, क्रोमियम, लेड, सेलेनियम तथा नाइट्रेटस रहते है। जैविक प्रदूषण से तो हजारों किस्म की बीमारियाँ फैलती है।

(10) ध्वनि प्रदूषण कम करना

वाहनों के चलने, उनके हॉर्न, मशीनों के चलने, हवाई—जेट की उड़ान भरने, रेलों के गुजरने से कहाँ तक बचें, जहाँ ध्विन प्रदूषण 70 डेसीबल से ऊपर हो वहाँ "ईअर प्लग' की सलाह दे सकते है। खिड़की दरवाजों में ध्विन—रोक पेडिंग की सलाह दे सकते हैं। ध्विन प्रदूषण दिल की धड़कन पर बुरा असर डालती है।

(11) जमीन प्रदूषण हटाने का नियोजन

महानगरों में कूड़े के ढेर जहाँ तहाँ लगे रहते है। विदेशों के महानगरों में तो घर के सामने साफ डिब्बों या बेगस में कचरा, कचरा—गाड़ी आने पर ही दिया जाता है। सुअर व मवेशी खुले रूप से गन्दगी करते रहते है। कचरे उठाने की गाडियाँ, व्यक्ति, रखने के डिब्बे सभी का नितान्त अभाव है। सिविक सेन्स नहीं है, कोई भी सड़क पर कचरा फैक सकता है या पेशाब कर सकता है। समस्त झुग्गीवासी तो रेल पटरी के किनारे या कहीं भी खुली जगह में शौच करते है। कचरा जलाने से बहुत ऊँचे ताप की स्थिति आती है और "कास्टिक गैस (Caustic gases)उत्पन्न होती है। सुलभ शौचालय व हर समय साफ होते रहने वाले सार्वजनिक मूत्रालय नियोजन अत्यन्त जरूरी है। मिक्खयों, चूहों तथा मच्छरों की भरमार से शहर भरे है। भारत के शहरों के निवासी चाहें तो जनआन्दोलन से किसी एक शहर को पहले विदेशी महानगर बनाने की पायलाट योजना बनानी चाहिए।

निम्न बातों का नियोजन जरूरी है-

- 1 शहरों में अप्रवास की एक नीति होना, परन्तु इसके लिए छोटे कस्बों व गांवों में विकास होना परन्तु यह ही तो सम्पूर्ण "विकास का अर्थशास्त्र" हो गया।
- 2 अमीर लोगों व सम्पत्ति वालों पर जो कर लगते हैं उनमें से अच्छा भाग सफाई पर व्यय होना चाहिए।

पेय जल की व्यवस्था

भारत में यह कानूनी रूप से सम्भव नहीं है, इसलिए इस सम्बन्ध में संविधान में यह प्रावधान होना चाहिए कि मेट्रोपोलिटन शहरों की आबादी रोकने के लिए, केन्द्रीय सरकार (राज्य सरकार तथा शहर—प्रशासन की सिफारिशों को जाँचते हुए) अधिकतम सीमा के बाद अप्रवास जो बसने के लिए हो उसका नियन्त्रण कर सकती है।

The soil must be regarded as a living community of fungi, bacteria, protozoa and metazoa. Composting and open dumping may in erase population of plies, rats and vectors of diseases. Buried organic wastes are subject to anaerobic decomposition and production of methane and carbon dioxide may result in pollutions of the ground waters.

बम्बई, दिल्ली या कलकत्ते में हर दिन सैकड़ों लोग नये अप्रवासी बनते है, अगर ठीक काम नहीं पा सकते तो वापिस भी चले जाते है, परन्तु शुद्ध रूप में तो अप्रवास धनात्मक ही रहता है। गन्दी बस्तियों का उदय होना/बढ़ना तथा जुर्म इनके कारण बढ़ते है।

अगर जनसंख्या कम की जाये तो कई कार्यों के लिए व्यक्तियों की कमी पड़ जायेगी। इसके लिए Moscow जैसे नियम बनायें जाने चाहिए । यद्यपि यह आसान न होगा क्योंकि भारत साम्यवादी देश नहीं है ।

इसके अतिरिक्त शहरों की ओर प्रवास रोकना ग्रामीण गरीबों के लिए समस्या उत्पन्न करेगा। जरूरत इस बात की है कि satellite township बने तथा वहाँ से सस्ता यातायात उपलब्ध कराया जाये । इसी तरह से बहुत बड़े शहरों के पास urban centres को आर्थिक रूप से सिरोपरी सुविधायें प्रदान करके युष्ठ करें । इनमें समन्वय जरूरी है ।

परन्तु हर बिन्दु के अन्त में हमकों सकल जनसंख्या नियन्त्रण के लिए तो बोलना ही पड़ता है ।

(12) प्रशासन नियोजन

Cities must have "management" approach instead of "administration" approach.

समस्त शहरों व महानगरों का प्रशासन प्रजातान्त्रिक है । आज भारत में केन्द्रीय, राज्यीय, शहरी व ग्रामीण चार स्तरों पर प्रजातांत्रिक प्रशासन है । परनु हर स्तर पर अक्षमतायें व भ्रष्टाचार है । प्रजातान्त्रिक प्रशासन दिन व दिन महंगा हो रहा है क्योंकि पार्षद भी मंत्रियों की तरह अपव्यय करते है । उन्हें हर विभाग की मांगों पर विचार करते समय गिफ्ट देने की परम्परा है ।

वित्त प्रबन्धन के निम्न स्त्रोत है— ग्रान्ट, सबिसडी, कर, फीस, लेवी व ऋण, सड़क कर, फायर ब्रिगेड कर, पानी फीस, सम्पित्त कर, ऐंट्री कर, पुल लेवी, विकास लेवी अनेक आय के स्त्रोत है, परन्तु दुरूपयोग है। (भोपाल में जिस वार्ड से सर्वाधिक सम्पित्त कर मिलता है उसमें सारे गटर के होल खुले है व इस कमर्शियल काम्पलेक्स की सड़कों पर "पानी" बहता है। वार्ड के पार्षद विरोधी पार्टी के थे) राजनीति को शहर प्रशासन से दूर रखना चाहिए।

27.4 समन्वित अंचल क्षेत्रीय नियोजन

राष्ट्रीय शहरीकरण कमीशन, चार्ल्स कोरिया की अध्यक्षता में बना था, ने शहरों/कस्बों को महानगरों का Countermagnets या "उल्टी चुम्बक" बनाने की सिफारिश की थी ताकि व्यक्ति महानगरों में कम जायें तथा हो सके तो वहाँ से इन Setellite towns में आयें, लेकिन इनके लिए पर्याप्त संसाधन, धनराशि और प्रशासनिक तन्त्र सही मायने में नहीं जुटा पाने से तथा राष्ट्र में बम्बई (मुंबई), दिल्ली, चेन्नाई (मद्रास) तथा कलकत्ता में अप्रवास पर बंदिश न लगने से बगैर घर को फुटपाथ पर सोने वालो झोंपड़पट्टी में रहने वालों की संख्या बहुत हो गयी है, (1998)

बम्बई/मुंबई 50 लाख

 दिल्ली
 40 लाख

 कलकत्ता
 10 लाख

 मद्रास/चेन्नाई
 8 लाख

राष्ट्रीय आयोग ने शहरी भूमि के विवेकपूर्ण प्रयोग के लिए शासकीय नियंत्रण व निजी क्षेत्र को प्रोत्साहन की एक विवेकपूर्ण नीति की सिफारिश की थी परन्तु इसमें जहाँ पहले भष्टाचार का बोलबाला था, बाद में माफिया का बोलबाला हो गया । बम्बई की जमीन के माफिया वर्ग तो मध्य एशिया के देशों से कार्य चलाते है । यद्यपि बहुत विस्तार से नहीं लिखा, फिर भी परोक्ष रूप से कमीशन ने कृषि भूमि को समाप्त करके शहरों के विस्तार पर चिंता व्यक्त की थी ।

जिस Infrastructure stress की बात थी वह बजाये घटने के बढ़ती जा रही है तथा इसके लिए Populations implosion या अप्रवास जिम्मेदार है । इस संबंध में सेन्ट्रल प्लेस थियोरी के अनुसार Satellite शहर बसने चाहिए ।

" Planned Slum" का विचार भी कमीशन ने दिया था ।

27.5 सारांश

भारत में साफ शहर में रहने का तजुर्बा व चाह ही नहीं दिखती । लोगों को यह Perception ही नहीं है कि सम्पूर्ण रूप से साफ शहर जैसे सिंगापुर हो भी सकता है । भारत में प्रदूषण रहित औद्योगिक नगर चाहिए, और यह अत्यन्त कठिन कार्य है ।

- अग्निशमन सेवायें, बाढ़, राहत, सूखा स्थिति में पानी का इन्तजाम, दुर्घटना क्रेन, एमुलेन्स, "ट्रामा वार्ड" तथा आपात काल से निपटने के पूर्ण इन्तजाम होने चाहिए ।
- 2 अमीर, मध्यम वर्ग, गरीब, बहुत गरीब सबकी आवास व्यवस्था होनी चाहिए । जरूरत है भू-माफिया को नियंत्रण में रख कर, निजी बिल्डरस से नगर नियोजन में सहायता लेने की।
- 3 शहरों से दूर अति प्रदूषणकारी उद्योगों को ले जाना व उस भूमि को फ्लेट के लिए मिल मालिकों को प्रयोग करने देना औद्योगिक re-location में सहायक होगा, जैसे दिल्ली, बम्बई में उच्च मूल्य सृजन के growth poles शहरों में रह सकते है परन्तु चारों ओर growth foci होना चाहिए । हर शहर के बाजार काम्पलेक्स तथा यातायात में समन्वय होना चाहिए ।
- 4 महानगरों में Locational weights का परिवहन बँटा होना चाहिए । Bypasses, Flyovers, Subways तथा conducts का जाल बनाना होगा । Terminals सड्कों की स्थिति के अनुसार बनने चाहिए । Inter-modal Model को उन्नत करना होगा । सड्कों का रख रखाव व पानी निकासी नियोजन अति जरूरी है ।
- 5 वर्तमान व भावी पेय जल व्यवस्था नगर नियोजन को चेलेन्ज है । प्रदूषण रहित पानी का इन्तजाम, पानी चार्ज वसूली पर भी नियंत्रण होगा । पानी का मूल्य बढ़ेगा, पानी का मूल्य पहचानना होगा ।

- 6 भारत में बड़े शहरों की स्वास्थ्य, सफाई, अस्पताल, बिजली, संचार तथा अनेक अन्य सुविधाओं के लिए, विस्तार के लिए जगह का प्रबन्ध व उन्हें सक्षम बनाना Inter departmental सहयोग का बड़ा चैलेन्ज है।
- 7 कूड़ा निकासी शहर नियोजन का बड़ा कार्य है । सार्वजनिक शौचालय, मूत्रालय का न होना, सुअरों का कूड़ा घरों पर विचरना, अस्पतालों के कचरों को नदी तालाबों में जाने देना, Non-biodegradable प्लास्टिक थैलियों का बिखराव, बूचड़ खानों का प्रदूषण (Eutrophic Stress), निर्माण कार्य का मलवा (disruptive stress) वाहन धुआँ (Transport development stress), कारखानों का प्रदूषण (Exploitive) वायु, पानी व सतही प्रदूषण इनसे शहरी जीवन की किस्म घट रही है व उम्र घट रही है ।
- 8 सभी तरह के बढ़ते प्रदूषणों से भारत की राजधानी को दुनियाँ की अब सबसे गन्दी राजधानी मानते है । हमारे सभी महानगर (चंडीगढ़ को छोड़ कर और कुछ हद तक बेंगलोर को) बहुत प्रदूषित है ।
- 9 यद्यपि संविधान में प्रवास व बसने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है, फिर भी कतिपय शहरों में अप्रवासियों को लेने की चरम सीमा पहुँच चुकी है।
- 10 भारत के महानगरों का वित्तीय प्रबन्धन अपर्याप्त है, व्यय में भ्रष्टाचार व अक्षमता है तथा प्रबन्धन में कुप्रबन्धन ज्यादा है । जनता के समक्ष कोई जवाबदारी नहीं है ।
- 11 सभी महानगरों व नगरों में Crisis, Disaster व Calamity से निपटने की रूप रेखा तैयार रहे । इसके लिए वांछनीय सामान व मानव संसाधन होने चाहिए । वांछनीय वित्त व्यवस्था थोड़ी-थोड़ी हर वर्ष जुड़नी चाहिए।
- 12 शहरों के भावी विकास तथा वर्तमान किमयों को दूर करने के लिए तकनीकी व आर्थिक योजना होनी चाहिए । मूल्य सृजन के उद्योग लाना, प्रदूषण के उद्योग बाहर ले जाना, सड़कें चौड़ी करना, टर्मिनल बनाना, नालियां सुधारना तथा भवन निर्माण बढ़ाने के लिए निजी क्षेत्र का सहयोग लेना चाहिए ।
- 13 नगर विकास के लिए Hierarchy of Settlements का नियोजन समन्वित रूप से होना चाहिए । बाजार व रिहायशी काम्पलेक्स मिले जुले बनने चाहिए ।
- 14 भारी वाहनों का महानगरों व नगरों में कुछ बिन्दुओं पर Periphery मे प्रवेश होने देना चाहिए । कितपय सड्कों पर ही यातायात का भार नहीं होना चाहिए । Flyovers, कई Lanes की हीना, Underground सड़कें, रेलमार्ग, Bypasses आदि के बनाने में कई बस्तियों का हटाना जरूरी हो सकता है, उनका Re-location जरूरी होगा । डबल डेकर बसें भी उपयुक्त होंगीं । गरीबोंपयुक्त यातायात सेवायें श्रम वर्ग के लिए जरूरी होती है ।
- 15 शुद्ध पानी की लाइनें (फिटकरी, क्लोरिन से साफ किया तथा छना) जिसमें अशुद्धता न मिले, बनाना जरूरी है । बगीचों व धुलाई के लिए या लेट्रिन के लिए कच्चे पानी की व्यवस्था की जा सकती है । पानी का अब मूल्य लेना (कम से कम रू 60 से 100 प्रति माह) जरूरी है । भावी योजनायें तैयार रहनी चाहिए।

- 16 बिजली जिसका Low-Shedding न हो, संचार जो बीच-बीच में ठप न हो, शिक्षा जिसमें खेल का इन्तजाम हो तथा नगर जिसमें स्वास्थ्य सेवायें गन्दी न हों, शहरी नियोजन के लिए जरूरी है।
- 17 अफ्रीका के देशों में (जैसे केन्या में) गाँव व शहर कहीं भी कम से कम "सोकपिट" लेट्रिन के बगैर घर को अस्तिव में नहीं आने देते । शहरों में Choked Sewerage Lines कलंक है । यह नहीं कर सकते तो कुछ नहीं कर सकते। कूड़ा निकासी, उसकी Recycling व उसका जलाना अति आधुनिक तरीके से होना चाहिए । सार्वजनिक मूत्रालय व शौचालय होना चाहिए ।

1999 में दुनियाँ में 600 करोड़ व्यक्ति होंगें । भारत में विश्व के 2.4% क्षेत्र में 100 करोड़ या 1/6 या 16.67% समस्या है गरीबी, पानी की कमी, धन की कमी और इन सभी की जड़ में है दूषित राजनीति व भ्रष्टाचार । इनके रहते कोई नियोजन संभव नहीं है ।

- 18 वायु प्रदूषण, पानी प्रदूषण तथा सतही प्रदूषण को रोका जाये। उसके वैज्ञानिक व तकनीकी तरीके तो पता हैं।
- 19 क्छ मात्रा में अप्रवास पर नियंत्रण महानगरों में जरूरी होगा।
- 20 Cess या विशिष्ट कार्य कर अधिक कारगर होंगें । जनता जो चाहे उसकी लागत वसूल कर उस कार्य को सम्पादन करके देने में भविष्य के लिए जनता सर्वथा तैयार रहेगी । संसाधन जुटाने में प्रगतिशीलता तो रहेगी परन्तु सभी की भागीदारी भी । अभी झुगीवाले उनके लिए 1 रूपये से लेकर 5 रूपये रोज देने पर भी EWS मकानों को झुग्गी की जगह लेने से इन्कार अपने "नेताओं" के कहने पर कर देते है ।

27.6 शब्दावली

शहर जहाँ कम से कम 5000 की आबादी तथा 75% से अधिक अकृषि

कार्य से आय।

महानगर 10 लाख से ऊपर का शहर

केन्द्रीय स्थान प्रमुख केन्द्र जिसके चारों ओर Honey Comb रूपी Hierarchy

Central Place of Settlement

अर्बन सीलिंग :

मूल्य सृजन शहरों में अधिकतम भूमिधारण की सीमा मूल्यवान परन्तु छोटी । इन्टर मोडल—मॉडल अनेक प्रकार के यातायात साधनों का एक के वाद एक या एक

Inter-model Model समय में अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा प्रयोग

Cess सेस कार्य विशिष्ट के लिए आय लेना

Quarternary तृतीय वर्ग के क्षेत्र की अति उन्नत स्विधा जैसे All India

Function Institute of Medical Sciences या कुछ भी।

Settelite Town मुख्य शहर के आसपास चारों और के शहर या कालोनियों जो केन्द्र

27.7 कलकत्ते का विशेष उदाहरण

कलकत्ता वास्तव में एक बार "Dead City" घोषित कर दिया गया था जो लाइलाज था । 1998 में दिल्ली को केन्द्रीय मंत्री ने यही कहा । परन्तु फिर अपनी कुख्याित को दूर करने के लिए कलकत्ते में कार्य सुधरा । बीस लाख झुग्गीवािसयों को पर्यावरण सुधार तथा वहाँ के निवािसयों को प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधायें दी । वहाँ पर Express Ways (द्रुतगामी वाहन सड़कें), Bypass (मुख्य शहर से न गुजरने की सड़कें), Flyovers (सड़कों के ऊपर सड़के, खम्बों पर), Truck Terminals (ट्रक अड्डे), Relaying of Conducts, Re—Sectioning of outfall Channels (जल व्यवस्था के पाइप ठीक करना, मल निकासी की लाइनें पुन : बिछाना कि टूटें नहीं व लीक न करें), बनाई ।

कचरा उठाने का कार्य नियमित किया । पूर्वी कलकत्ते में तथा बैशनाबघाटा—पदूली में नयी बस्तियाँ बनाई कि शहर के केन्द्र पर दवाव कम हो । गाल्फ ग्रीन बाधाजातिन, वैरकपुर में अलग—अलग आय वर्ग के लिए आवासगृह बनवायें, "वार्ड पंचायतें" गठन की, तथा पेय जल शुद्धता पर ध्यान दिया ।

कलकत्ता 300 वर्ष पूर्व किलकाता, गोविन्दपुर तथा सुतानटी नाम के तीन गावों से मि. जाव चार्नक (Job Charnock) ने "शुरू" किया था । पूर्वी पाकिस्तान बनने तथा बंगला देश की स्वतन्त्रता के युद्ध से पूर्व पाकिस्तान द्वारा वहाँ के अल्पसंख्यकों को निकाल देने से कलकत्ते में जनसंख्या विस्फोट हो गया । आज वहाँ Calcutta Metropolitan Development Authority है। इसके अन्तर्गत 41 "अर्बन लोकल बाडीज" तीन म्यूनिसिपेलिटीज तथा 101 ग्राम पंचायतें है । 1991 में आबादी 1.2 करोड़ के प्रक्षेपण थे । यहाँ का घनत्व 8700 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि. मी. था जबिक शहरी भारत का घनत्व 4098 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि मी. था।

एक बात ध्यान में रखने योग्य है कि सभी प्रकार की गन्दगी दूर करने तथा सुधारात्मक विकास करने का बजट 1997–98 में भी 300 करोड़ वार्षिक था जो प्रति व्यक्ति मात्र 200 रुपये आता था, अर्थात 1000 रू. प्रति परिवार प्रति वर्ष था। अन्य शब्दों में धन नहीं बल्कि सही व्यय, बगैर भष्टाचार झिरनों के समस्यायें हल कर सकता है।

दुर्भाग्य से अगर पिछली गंदी बस्तियां सुधर जाती है तो नये लोगों की नयी गन्दी बस्तियाँ शुरू हो जाती है । यह भी दुर्भाग्य रहा कि गंदी बस्ती वालों ने 4 मंजिली में एक कमरे व 2 कमरों के फ्लेट्स में जाना पसन्द नहीं किया । वे काम के स्थान के पास फ्लेट चाहते थे । गंदी बस्तियों के "नेता" विकास में बाधक ही बनते है ।

न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम से लेकर अनेक Adhoc कार्यक्रमों के धन को शहर सुधार (बस्ती विकास, म्यूनिसिपल अंचल विकास, 1971) में लगाया गया। सब कुछ ठीक तो नहीं हु आ, फिर भी बहुत कुछ हु आ (10 में से नम्बर निम्न है) जज नानी पालखीवाला, मेनका गांधी तथा मृणाल सेन

| | कलकत्त | ा दिल्ली मुम्बई चेन्नाई |
|--------------------------|--------|----------------------------------|
| 1. पानी | 7.5 | 3.33 4.67 6.0 |
| 2. सार्वजनिक स्वास्थ्य | 6.0 | 1.33 4.33 5.0 |
| 3. प्रदूषण नियंत्रण | 3.0 | 1.00 1.33 2.7 |
| 4. गन्दी बस्ती सुधार | 5.0 | 3.00 1.00 2.3 |
| 5. यातायात सुधार | 6.5 | 2.67 5.00 2.00 |
| 27.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें | | |
| (1) De Soza, Alfred | | The Indian city, |
| | | Manohar Publication, |
| | | New Delhi 1983 |
| (2) Dwyer, D.J | | The city in the Third world, |
| | | Macmillan, London 1974 |
| (3) Crose,M.S. | | Urban Planning and some Portion |
| | | of social policy |
| | | Economic and political weekly, |
| | | Special Number june 1971 |
| (4) Kureinc. T. Joseph | | Urbanisation and Economic change |
| Jawes | | Economic and Political weekly |
| | | No.12 July 1975 |
| (5) Mishra, R.P | | Million cities of India |
| | | Vikas Publishing House, |
| | | New Delhi 19 |
| (6) Dutta, Abhijit | | Urban Government Finance and |
| | | Develoment The world urban |
| | | Calcuta 1970 |
| (7) Awasthi, R.K | | Urban Develoment and Metro |
| | | Polities In India |
| | | Chugh Publication Allahabad 1985 |
| (8) Toyanber, Aruold | | Cities on the more Oxford |
| | | University Press, London 1970 |

Pattern of Urbanisation and urban

(9) Govt.of India

| | Planning Rakes Mohan Committee |
|----------------------------|--|
| | 1992 New Delhi, Ministry of urban Planning |
| (10) Walsh Annamarie Hanck | Urban Challanges to Government |
| , | New York Praeger Publishing Co. |
| | 1969 |
| (11) Raheja, B.D | Problems of Government in Metro |
| • | politan area in India |
| | All India Inhitubg Local Government |
| | 1982 |
| (12) Bosh, Ashish | Urbanisation in India Acolemic |
| | Books Ltd, New Delhi 1970 |
| (13) Das, R.B | Urban Planning and Local Authority |
| | Oxford and IBH Publishing Co., |
| | Calcutta |
| (14) Hall, Prter | The World Cities Weiden Feld and |
| | Nicholson London,1977 |
| (15) Mayur, Rashmi | Urbanisation in India in 2000A.D. |
| | Urban System Center National |
| | Institute Of Training & Engineering |
| | Mumbai |
| (16) Rosenthon, Donald | City in Indian Politics |
| | Faridabad Thomson Press India |
| | Ltd. 1976 |
| (17) Sovani, N.V | Urbanisation and Urban India |
| | Asia Publishing House Mumbai |
| | 1966 |
| (18) Christz, Benjamin | City and suburb The Economies of |
| | Metropolitan growth |
| | Prentic Hall Inc Englawood Chitts |
| | N.J 1967 |

इकाई 28

ग्रामीण-शहरी समन्वय के लिए नियोजन : ग्रामीण शहरी प्रवास प्रवृत्ति : उपलब्ध स्थान (क्षेत्रों) में अधिकतम आवासीय संरचनाओं में सम्बन्ध कड़ियाँ

इकाई की रूपरेखा

- 28.0 उद्देश्य
- 28.1 प्रस्तावना
- 28.2 ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर प्रवास की प्रवृति के कारण
- 28.3 गांवों से शहरों की ओर प्रवासी प्रवृति के गुण
- 28.4 गांवों से शहरों की ओर प्रवास करने की प्रवृति के दोष व कमियाँ
- 28.5 ग्रामीण-शहरी जनसंख्या के अन्तर्गमन के प्रभाव
- 28.6 ग्रामीण–शहरी जनसंख्या के अन्तर्गमन प्रवास के कारण नई भूमि की खोज
- 28.7 ग्रामीण-शहरी समन्वय के लिए नियोजन
- 28.8 स्व-पाठ अभ्यास अथवा स्व-शिक्षण प्रयोग
- 28.9 सारांश
- 28.10 शब्दावली
- 28.11 स्व-शिक्षण के लिए अभ्यास
- 28.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

आर्थिक जीवन के विकास के इतिहास के संदर्भ में मानवीय सभ्यता के उदय के साथ मानव ने अपने स्थायी आवास जो बस्तियाँ बसायी उन्हें दो भागों 1 — ग्रामीण और 2 — शहरी में विभक्त कर सकते हैं । पर यह वर्गीकरण न तो दृढ़ और लोचिविहीन विभागों में बँटा है और न ही यह वर्गीकरण निरपेक्ष है । इसका अर्थ यह है कि जो बस्ती कल तक गांव कहलाती थी वह आज अनेक कारणों के फलत : या प्रभाव स्वरूप शहर या कस्बा कहलाने लगी । पर गांव की शहर या कस्बा कहे जाने की स्थिति के पीछे क्रियाशीलता रही है । मानव स्वभाव की उस प्रवृत्ति की जिसके धनात्मक और निरन्तर क्रियाशील रहने के कारण मानव गांव से शहर की ओर जाने, जाकर बसने और स्थायी रूप से प्रवासित होने के लिए प्रेरित, आकर्षित अथवा वाध्य हुआ है, होता जा रहा है और होता गया है । इस तरह यह मानना होगा कि गाँवों से शहरों की ओर प्रवास करने की प्रवृति बाध्यता अथवा मनोवृत्ति मानवीय सभ्यता का एक अभिन्न, अन्तरंग और अनिवार्य अंग बन गया है । तभी मानवीय आवासीय आबादियों व बस्तियों के दो रूप सामने है—शहर व गांव । वह विभाग मोटा—मोटा है और इसमें अनेक उप—विभाग भी मौजूद है । जैसा पहले कहा ज चुका है कि यह विभागीय वितरण न तो निरपेक्ष है और न ही इसमें आकारीय समानता पायी जाती है अर्थात कहीं पर किन्हीं कारणों से शहर बड़े व घने बनते गए और कही गांव बड़े हो गए । पर इस विभाग के पारस्परिक अन्तर्संबंध और सहसम्बन्ध के रूप

में निर्विवाद रूप से एक सत्य के रूप में उभर कर आयी है और वह यह कि शहर और गांव के बीच मानव का आवागमन और आकार बसने की प्रक्रिया कभी समाप्त नहीं हुयी है । यह प्रवृत्ति तो शाश्वत रूप से चलती ही रही है । वर्तमान पाठ के निम्न लिखित उद्देश्य है –

28.0 उद्देश्य

- 1. गांवों की मूल आवासीय, नागरिक, शैक्षिक, सामाजिक, व्यावसायिक, भविष्य—विकास परक विशेषतायें, बाध्यतायें और कमजोरियों जो गांव वालों को शहर की ओर जाने से नहीं रोक पायी। इस कारण को अध्ययन का विषय बनाना कि इन कमियों से ऊब कर मानव गाँव से शहर की ओर जाने को प्रेरित अथवा आकर्षित हुआ है । उपलब्धियों, आपूर्तियों अथवा परिलब्धियों की व्याख्या करना तथा पहचान करना जो मानव के, गांव से शहर की ओर स्थायी या अस्थायी, अल्पकालिक अथवा दीर्घकालिक, तदर्थ अथवा सामान्य प्रवास के लिए सष्ट रूप से उत्तरदायी है।
- 2. मानव की उस सामान्य मानसिकना का अध्ययन करना जो एक न एक समय, उसकी सरल सुविधा के अनुसार, गाँव से शहर की ओर जाने व जाकर बसने के लिए बाध्य करती रही है।
- 3. शहर की भौतिक परिभाषाओं का अध्ययन करना ।
- 4. शहर और शहरी जीवन तथा शहरी पर्यावरण की विवेचना करना तथा शहरी जीवन कीं मानवोचित उन सभी सुविधाओं का वर्णन करना जो लोगों को आकर्षित करती हैं।
- 5. इस प्रवासीय प्रवृत्ति को जनसंख्या वृद्धि के प्रति किलोमीटर घनत्व और वितरण प्रवृत्ति से सम्बद्ध करना और सहसम्बन्ध स्थापित करना ।
- 6. गांवों से शहरों की ओंर लोगों की प्रवासी प्रवृत्ति के शहरी जीवन पर अनेकानेक प्रभाव पड़े है और पड़ रहे है । इस दृष्टि के विषय की विषद व्याख्या करना परम आवश्यक है ।
- 7. भूमि की सीमित्तता के कारण नगरीय आवास एक समस्या भी बन गयी है और चुनौती भी। इसका फल यह हुआ कि आवास समस्या अनेक प्रकारों में, धाराओं में, रूप स्वरूपों में विस्फोट हुआ है । अनेक—मंजिला भवन, छोटे मकान, गन्दी बस्तियाँ इतने प्रकार से इस समस्या का रूप ले रहे हैं कि शहरी जीवन अनेक प्रकार से कुप्रभावित होने लगा है और पर्यावरण स्वास्थ्य तथा सफाई, चिकित्सा, महामारी विस्फोट इत्यादि अनेक समस्यायें, दोष, चुनौतियाँ, बोझे व अनंतुलन उत्पन्न हो गए है तथा भविष्य के नागरिक तथा नगरीय जीवन को दूभर बना रहे है । यह पाठ इस बात के अध्ययन को भी उद्देश्य मानकर चल रहा है ।
- 8. शहरीकरण की इस दौड़ में आवास की समस्या उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है और उसी के साथ स्वाभाविक है नागरिक सुविधाओं की आपूर्ति की निरन्तर बढ़ती हु यी मांग । इस पाठ का उद्देश्य यह भी देखना है कि क्या आवासीय बस्तियाँ और उनमें आवश्यक नागरिक सुविधाओं की आपूर्ति साथ—साथ विकसित होते रहे है अथवा आवासीय बस्तियाँ तो जल्दी— जल्दी बसती गयी पर उनके लिए आवश्यक नागरिक सुविधाओं की आपूर्ति पिछड़ती गयी जिसके कारण उन बस्तियों में अनेक ऐसी समस्यायें उत्पन्न हो गयी जिनका निराकरण

- असम्भव ही हो गया और उनकी ओर समय—समय पर ध्यान देने पर भी कुछ काम नहीं हुआ।
- 9. आवासीय बस्तियों को बसाने में नयी—नयी अधिकाधिक भूमियों की आवश्यकता पड़ी । दूसरी ओर, शहरों के भीतर गिलयों में रहने वाले सम्पन्न लोग भी बाहर खुले में आने लगे। इसके साथ—साथ जनसंख्या की अनवरत तीव्र वृद्धि ने नएँ आवासों की मांग उत्पन्न कर दी । इस का सामुहिक प्रभाव यह हुआ कि शहरी आवास की परिधि बढ़ने लगी । बेकार भूमि भी काम में आने लगी । सभी जगह, भूमि के अधिकतम आवासीय प्रयोग की बात होने लगी। छोटी—छोटी बिगयाये, बाग कट—कट कर बस्तियों में बदलने लगे । शहर के बाहर किनारे—िकनारे वाली भूमि जिसपर सब्जी उगाने वाले किसान सब्जी उगा कर प्रात : काल सब्जी मण्डी लाकर बेचते थे, एक तरह से बेदखल होने लगे क्योंकि आवासीय सिमितियों ने चाहे वे सिमितियों सहकारी आवास सिमितियाँ थी अथवा निजी कालोनाइजर द्वारा बनायी गयी निजी लाभ से प्रेरित आवासीय सिमितियाँ थी । आवासीय बस्तियाँ बनाने का काम आरम्भ कर दिया । इस पाठ का एक उद्देश्य उन विसंगतियों का अध्ययन करना है जो इस स्थिति के द्वारा उत्पन्न हुयी हैं, जन्मी है ।
- 10. जहां शहरी—ग्रामीण जनसंख्या के पारस्परिक अन्तर्गमन थी और प्रवाह सम्बन्धित प्रवृत्तियाँ जन्म ले रही थी और फलस्वरूप नए कार्य तथा नए कार्यक्रम बन रहे थे वहां सरकार भी इतनी बड़ी आवश्यकता और समस्या के प्रति बेखबर नहीं रह सकती थी । फल यह हुआ कि सरकार की ओर से अनेक कदम उठाए गए जिनका सीधा सम्बन्ध भूमियों के अधिग्रहण, उन पर आवासीय बस्तियों का नियोजित निर्माण करना, नागरिक सुविधाओं, जैसे जलापूर्ति, सफाई, सड़क निर्माण, सीवर इत्यादि से था। राज्य स्तर पर आवास एवं विकास से संविधित संघ की स्थापना हुयी। सरकार में इस सम्बन्ध के मंत्रालय स्थापित किए गए और आवासीय ऋणों की रूपरेखा बनायी गयी। तथा उसकी विविध क्रियान्वित प्रारम्भ हुई। इस पाठ का एक उद्देश्य यह भी अध्ययन करना है कि किस प्रकार सरकारी प्रयास ने इन प्रवासी प्रवृत्तियों के कारण बढ़ती हुयी जनसंख्या की आवासीय आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए कारगर कदम उठाए।
- 11. इन आवासीय बस्तियों का विस्तार कहीं पर तो व्यवस्थित और नियोजित तरीके से लेकिन अधिकतर तो अनियोजित, मनमानेपन और बेढंगेपन से हुआ जिसके कारण अनेक प्रकार के असन्तुलन व अव्यवस्थाएँ उत्पन्न हुयी जैसे नीचे स्तर वाली भूमियों पर बसी बस्तियों में जलभराव की समस्या, मच्छरों का प्रकोप, और बीमारियों का फैलना इत्यादि । उन सभी कुप्रभावों का अध्ययन करना जो शहरीकरण के इस अवाच्छित पर अनिवार्य लाचारी के कारण उतपन्न हुए है ।
- 12. इस गन्दिगयों, स्थानाभावों, नागरिकजीवन में आयी दुर्गमताओं और स्वच्छ वातावरण में जीने की लालसाओ ने बहुत से सम्पन्न लोगों को शहर से बाहर आदर्श कालोनियाँ बसाने या उनमें आवास क्रय करने या उनमें भूमि क्रय करके अपने मन-पसन्द नियोजित आवास निर्मित कराने की लालसा ने प्रबल समय लिया है । इसके फलस्वरूप शहरी जनसंख्या का

एक भाग, शहर से बाहर खुलें में निकलने और रहने को प्रेरित हुआ है । इस सबका फल हुआ नए नगर क्षेत्रों का विकास, लेकिन वहां भी धीर—धीरे जनसंख्या के आधिक्य के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं ने प्रवेश करना प्रारम्भ कर दिया है ।

बिजली, पानी, सीर, सफाई आदि वहां अनेक प्रकार की समस्याएं है और उनका अपने प्रकार का हल है। फिर भी वहां शहरी लोग है और ग्रामीण जीवन जैसा खुला वातावरण है। इस पाठ का उद्देश्य यह भी अध्ययन करना हैं कि सामाजिक जीवन की उदमात्, व्यापकता, सरलता, व सहजता, पारस्परिक प्रेम और सदभाव का जीवन किस प्रकार इस प्रकार की बस्तियों से लुप्त होता जा रहा है और लोग अपने में सिमट कर किस प्रकार का जीवन जी रहे है। यह आधुनिक नगरीय जीवन की मुखर होती हुयी प्रवृत्तियों में से एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। इस प्रकार के जीवन के कुछ व्यक्तिगत सुख है और कुछ सामाजिक सीमायें भी।

28.1 प्रस्तावना

आधुनिक औद्योगिक, आर्थिक, तकनीकी विकास और जनसंख्या की तीव्रगति से बढ़ती हुई दर ने, शहरी और ग्रामीण जनसंख्या के बीच अनेक प्रकार के अन्तर्गमन अंन्तर्प्रवासी प्रवृत्तियाँ और अनेक प्रकार के असंतुलन उत्पन्न कर दिए है । जो कि अनेक प्रकार से अच्छे भी है तो अनेक प्रकार से बुरे भी । देश में नियोजन काल के आरम्भ से ही ग्रामीण विकास एक महत्वपूर्ण मुद्दा रहा है । वास्तविकता तो यह है कि ग्रामीण विकास, हमारी नियोजन प्रक्रिया व तथ्य का एक महत्वपूर्ण भाग हैं क्योंकि मूलत: है तो गांवों का देश । इसलिए हर दृष्टि से इस बड़े भाग की समस्त असमताओं का आकलन करना, उसकी समस्याओं की पहचान करना, उनके निदान के लिए नियोजन करना, विकास तथा गरीबी निवारण और बेरोजगारी निवारण की अनेक कारगर योजनायें बनाना, उस जनसंख्या की मूलभूत नागरिक आवश्यकताओं की आपूर्ति करना, इत्यादि अनेक बातों का सामने आना और उनको प्रकाश में लाकर, सरकार की विकास नीति का एक अंग बनाना हमारी नियोजन व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण भाग है । यह सभी समस्याएं कहीं न कहीं ग्रामीण–शहरी जनसंख्या की प्रवासी प्रवृत्ति और अन्तर्गमन की स्थिति को बढ़ावा देने, उत्पन्न करने और उनके हल किये जाने की माँगें उत्पन्न करने में सहायक तथा प्रभावी सिद्ध हुई है ।

देश की इस प्रकार की स्थिति व समस्या के प्रति न तो सरकार उदासीन रह सकती है और न ही अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, और मीडिया जहां एक ओर समस्याएं उतम हुई है वहां दूसरी ओर उनके निदान की विस्तृत योजनायें भी बनी है उनकी क्रियान्वित भी हुई है। लेकिन समस्या और उसके निदान की क्रियान्विति के बीच साम्य और सन्तुलन नहीं रह पाया है। दूसरे शब्दों में, समस्या तो विकराल रूप धारण करती गयी है लेकिन उसकी निदान, व्यवस्था अनेक आपूर्ति प्रतिबन्धों और नीतिगत शिथिलताओं के कारण अधिकतर मामलों में पिछड़ी ही रही है। इस सबका फल यह हुआ है कि अनेक प्रकार को नई समस्याएं उतम हो गयी है।

यदि आर्थिक अनिवार्यताओं, विवशताओं, और आकर्षणों ने गांवों से लोगों को शहरों की और खींचा भी है और ढकेला भी, तो दूसरी ओर, शहरी जनसंख्या के एक भाग को यथाशक्ति,

शहर के बाहर खुले में या फार्म—हाउस या आवासीय बस्तियाँ बसाकर उस ओर गमन व प्रवास करने की प्रेरणा मिली है । शहर का दूषित वातावरण और साथ में पर्यावरणीय असन्तुलन।

28.2 ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर प्रवास की प्रवृत्ति के कारण

ग्रामीण लोगों की शहर की ओर प्रवास की प्रवृत्ति के लिए निम्न कारण है अथवा हो सकते हैं :-

- 1. गांवों में रहने वाले भूमिहीन श्रमिकों, बहुत छोटे—छोटे लघु व सीमान्त कृषकों को और इसी तरह के पिछड़े वर्ग के गरीब लोगों को जब गांवों में वर्ष भर रोजगार नहीं मिलता तब वे रोजगार की तलाश में शहरों की ओर प्रवास करते है ।
- 2. कृषि पर जनसंख्या का बढ़ता भार और अधिक लोगों को रोजगार देने में असमर्थता के कारण वहां के लोग जो मूलतः कृषि पर अपने रोजगार के लिए आश्रित है, शहरों की ओर प्रवास करते है।
- 3. **ग्रामीण ऋणग्रस्तता:** कभी—कभी गांवों के साह्कार सें बचने के लिए भी लोग, शहर की ओर गमन करते हैं ।
- 4. निर्धनता और ऋणग्रस्तता का संयुक्त प्रकोप व प्रभाव गरीब लोगों को मजदूरी की खोज में शहरों की ओर ढकेलता है ।
- 5. संयुक्त परिवार प्रणाली : इस व्यवस्था के अन्तर्गत, कुछ सदस्य अपनी भूमि तथा घर को परिवार के अन्य सदस्यों के भरोसे पर छोड़कर नगरों में कार्य करने के लिए चले जाते
- 6. **पारिवारिक संघर्ष:** गांवों में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि की प्रवृत्ति के कारण, परिवारों का आकार जब बड़ा होता जाता है तो घर में अनेक झगड़े तथा पारिवारिक चिन्ताओं के उत्पन होने की प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से ही उत्पन्न हो जाती है । इनसे बचने के लिए भी लोग शहरों की ओर गमन करते है ।
- 7. पारस्परिक कुटीर उद्योग धर्न्धों का हास तथा प्रतिस्पर्धा में वृद्धि ने गांवों में लोगों के मुंह की रोटी छीन ली जिसके कारण वे शहरों की ओर प्रवास करने लगे।
- 8. सामाजिक व्यवहार : ग्रामीण दिलत वर्ग के साथ गांवों मे, सामाजिक व्यवहार इतना सरल वस्तुनिष्ठ तथा धर्मनिरपेक्ष नहीं होता जितना शहरों में । इसिलए इस वर्ग के लोग शहरों में जिस तरह भी हो, रहना पसन्द करते है ।
- 9. शहरों में, गांवों की तुलना में मिलने वाले रोजगार या मजदूरी या वेतन के मिलने की सम्भावना ऊँची और ज्यादा होती है इसलिए भी लोग गांवों से शहरों की ओर प्रवास करते हैं।
- 10. **उन्नत भविष्य की आशा**: गांव के लोगों को शहरी जीवन में उन्नत भविष्य की आशा दिखाई देती है इसलिए भी वे शहरों की ओर प्रवास करते है।
- 11. गांवों के लोग औद्योगिक केन्द्रों की ओर अधिक आकर्षित होते है क्योंकि उन्हें विश्वास है कि वहां उन्हें कुछ काम जरूर मिल जायेगा ।

28.3 गांवों से शहरों की ओर प्रवासी प्रवृत्ति के गुण

- 1. इस प्रवासी प्रवृत्ति के कारण, कृषि-भूमि पर पड़ने वाले, बढ़ी हु यी जनसंख्या के कुप्रभाव तथा भार में कमी आती है ।
- 2. लोगों के जीवन-स्तर में स्धार सम्भव हो जाता है।
- 3. ग्रामीणों के आर्थिक स्धार की सम्भावना उत्पन्न हो जाती है।
- 4. श्रमिकों का मानसिक विकास भी होने लगता है।
- 5. श्रम की गतिशीलता में वृद्धि सम्भव हो जाती है।
- 6. श्रमिकों की कार्य कुशलता में वृद्धि होती जाती है।
- शहरों में आने पर भी जब उनका सम्बन्ध गांवों से नहीं टूटता तब यह सम्बन्ध उनके लिए एक प्रकार की सुरक्षा का कार्य करता है ।
- 8. शहरों में आकर बसने वाले लोगों को, गांवों की तुलना में कुछ विशेष सुविधाएं उपलब्ध होने लगती है जैसे बच्चों की पढ़ाई के अवसर खुल जाते है ।
- 9. नगर व गांव के जीवन में समन्वय स्थापित होता जाता है जो शहर की ओर आने वाले ग्रामीण लोगों और शहरों में स्थायी रूप से रहने वाले लोगों के लिए लाभदायक है।

28.4 गांवों से शहरों की ओर प्रवास करने की प्रवृत्ति के दोष व किमयां

गांवों के लोगों को, इस प्रवासी-प्रवृत्ति का आर्थिक व सामाजिक लाभ प्राप्त होने लगता है । वहां उनके अपने गांवों व ग्रामीण जीवन से जुड़े अनेंक कारणों के रहते मोह-भंग न होने के कारण, और समय-समय पर अपने गांव के चक्कर लगाते रहने की स्थायी प्रवृत्ति के कारण उन्हें अनेक कष्टों व दुषरिणामों को भी झेलना पड़ता है । यह इस प्रवासी प्रवृत्ति का सबसे बड़ा दोष है । उसके साथ-साथ इस प्रवासी प्रवृत्ति के अन्य दोष इस प्रकार है-

- 1. शहर जाकर, गांव के लोग, कुछ अलग-थलग से पड़ जाते है और कुछ अपरिचित से रहते है । उसके कारण, उनका जीवन एकांकी सा हो जाता है ।
- 2. इस प्रकार के प्रवासी लोगों की कार्यकुशलता भी नहीं बढ़ती क्योंकि उनका गांव से शहर और शहर से गांव आना जाना निरन्तर लगा ही रहता है।
- 3. स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव: भौगोलिक दृष्टि से इन प्रवासी लोगों का स्वास्थ्य इसलिए ठीक नहीं रहता या रह सकता क्योंकि वे पैदा हुए एक अलग जलवायु व वातावरण में । कहां तो गांव की शुद्ध वायु, और खुला जीवन और कहां शहर का दृषित वातावरण । इसीलिए बम्बई, कलकत्ता और कानपुर जैसे औद्योगिक नगरों में नारकीय जीवन के कारण, ये लोग कभी स्वस्थ नहीं रह सकते।
- 4. संगठन बनाने मे कमजोर तथा अनिश्चित: क्योंकि गांवों से शहरों की ओर प्रवास करने वाले लोग शहरों में जाकर अधिकतर मजदूरी करते है जो असंगठित और अव्यवस्थित होती है। और गांव में फसल तैयार हो जाने पर ये लोग फिर गांव लौट आते है। इसलिए, इस प्रकार के लोगों का अपने आर्थिक हितों की रक्षा हेतु कोई श्रमिक संघ भी नहीं बन पाता, न

ही ये अपनी अस्थिर रोजगार—स्थिति के कारण किसी श्रमिक संघ का सदस्य बनना ही पसन्द करते है । इसका सामूहिक फल होना है कमजोर श्रमिक संघ और कमजोर आन्दोलन ।

जनसंख्या विस्फोट (explosion) तथा शहरों में अति प्रवास (implosion) ने गावों व शहरों में सभी जगह समस्याये खड़ी कर दी है। भारत में मात्र केरल में ही rural—urban continuum हैं। दोनों के विकास में कम अन्तर है। शिक्षा स्तर बराबर है। अन्य राज्यों में शहरों में मकानों की कमी, झुगियों व गन्दी बस्तियों का उभरना तथा वहां की महंगाई सभी के लिए समस्या है। प्रशासन की उदासीनता व अष्टाचार से भारत के हर बड़े शहर की हालत खराब है। क्वीन एलिजाबेथ ने तो भारत की राजधानी दिल्ली के गन्दा—प्रदूषित क्ड़ों के ढेर का पाकिस्तान की स्वच्छ राजधानी की तुलना में उल्लेख किया। शहरों की ओर प्रवास रोका नहीं जा सकता। साम्यवादी देशों में बगैर इजाजत के शहरों में बसने के लिए जाना संभव न था। नियोजन की विफलता व सार्वभौमिक भष्टाचार ने यह सुनिश्चित किया कि कुछ शहरी हिस्से ही ठीक रहें। शहरों में शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों से आये लोग जुर्म के कार्य भी करते है। गांवों से आये लोग ही सभी प्रकार की निम्न घरेल व श्रमिक की नौकरियाँ करते है।

आबादी का एक भाग ऐसा भी है जो सम्पन्न है, जिसका शहर से कोई पूर्व सम्बन्ध है या था । जिसका एक भाग शहरों में पहले से ही रह रहा है या जिसका किन्हीं कारणों से शहरी सम्बन्ध अनिवार्य या अपरिहार्य हो गया है । वह भाग शहरों की ओर गमन, आय, रोजगार प्राप्त करने की अनिवार्यता से ही प्रेरित नहीं होता बल्कि इसलिए भी प्रेरित होता है क्योंकि उनका जीवन दर्शन तथा साधन सुलभता उनके सम्मुख सभ्यता, संस्कृति और उन्नत जीवन का रूप-स्वरूप गांवों में नहीं बल्कि शहरों में रखते है । और अपने बच्चों के भावी विकास पढ़ाई-लिखायी, शिष्ट, सभ्य, और आध्निक जीवन जीने की तलाश व लालसा तथा स्विधा के लिए वे गांवों से शहरों को इस अर्थ में लगभग स्थायी प्रवास करने को प्राप्त रहते है । चाहें उन्हें समय-समय पर अपने पैतृक घर सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करने, शादी-विवाहों में सम्मिलित होने इत्यादि के लिए गांव जाना पड़े । पर स्थायी रूप से वे शहर में पहले तो मकान किराये पर लेकर रहना प्रारम्भ करते है और फिर घिरे-धीरे वहां जमीन देखते है, भवन निर्माण के लिए क्रय करके भवन बनाकर रहने लगते है । और फिर शहर के स्थायी निवासी या नागरिक बन जाते है । उनका पैतृक सम्बन्ध गांवों से रहता है पर उनकी नई पीढ़ी शहर में रहने की अभ्यस्त हो जाती है । ऐसे लोग युगों—युगों से शहर में रहने वाले लोगों की तरह रहन-सहन और स्वाभाविक शहरी जीवन के चाहे प्रतीक व प्रतिबिम्ब न बन पायें पर अपने गांव वालों के सामने तो वे अब शहर वाले हो गए । शहरी ग्रामीण जीवन के पारस्परिक अन्तर्गमन से इस प्रकार की प्रवृत्ति के विकास में यथोचित तथा बड़े पैमाने का सहयोग मिला है।

गांवों से शहरों की ओर प्रवास करने के लिए प्रेरित और आकर्षित होने की इस प्रवृत्ति के पीछे जहां सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक विकास, इत्यादि कार्य कर रहे है वहां व्यवसायिक या व्यापारिक कारक भी कार्य कर रहे है ।

28.5 ग्रामीण-शहरी जनसंख्या के अन्तर्गमन के प्रभाव

- 1. इस प्रकार के लोगों ने शहरी जनसंख्या की गहराई व विस्तार में वृद्धि की है।
- 2. आवास निर्माण के लिए विशुद्ध रूप से शहर में रहने वाले लोगों द्वारा की गयी मांग में जो वृद्धि हुयी उसके फलस्वरूप नई—नई आवासीय बस्तियां बसी और बस रहीं है । जिससे शहरीकरण और शहरी आवास व्यवस्था का बेहिसाब विस्तार हुआ है वो विस्तार अव्यवस्थित और अनियोजित हुआ है, वहां उस मांग वृद्धि में गांवों से अनेक कारणों से स्थायी प्रवास करने वाली जनसंख्या की मांग का भी एक महत्वपूर्ण प्रतिशत है और रहा है ।
- 3. उपर्युक्त कारणों से बढ़ रहे शहरीकरण के अनियोजित और मनमानेपन से होने वाले विस्तार के साथ—साथ शहरीकरण की मौलिक और नैसर्गिक किमयाँ भी उतम होती गयी है । इन किमयों और दोषों में प्रमुख है नई कॉलोनियों में सड़कों, नालियों, और परिवहन सुविधाओं और नियमित्तताओं का अभाव, गन्दे पानी के निकास की समस्या, स्वच्छ जलापूर्ति की समस्या, बिजली व प्रकाश की समस्या, इधर—उधर से बिजली लेने, चोरी से बिजली काटने, कच्ची व्यवस्था का सहारा लेने की प्रवृत्ति व समस्या इत्यादि इन कॉलोनियों में एक आम बात हो जाती है ।
- 4. अस्वीकृत मानचित्र पर कॉलोनी बसाना, आज के ठेकेदारों और कालोनाइजर्स की मिली भगत का जीता जागता उदाहरण, प्रमाण व नमूना है । बाद में बड़ी रकमें देकर सम्बन्धित अधिकारियों या अधिकरणों से यह बस्तियाँ नियमित करा ली जाती है । परन्तु प्रश्न यह भी है कि शहरों में कार्य सेवा देने वाले ये लोग भी रहने का हक तो रखते है वे भी देश के नागरिक है । आज के शहरी के पूर्वज भी कभी गांव वाले आदिवासी थे ।
- 5. अनियमित आवास—निर्माण या कॉलोनी स्थापन या स्थायी सम्पत्ति निर्माण व सृजन या भूमि संपति के सृजन ने देश में, विशेषकर शहरों में बहुत बड़े भ्रष्टाचार को जन्म दिया है, काले धन के निर्माण में योगदान दिया है और माफिया गैंग को पैदा किया है।
- 6. कॉलोनी व आवासीय बस्ती बसाने के चक्कर में शहरों के किनारे वाली भूमि या बाहरी हद वाली भूमि जिस पर सब्जी उगाने इत्यादि का काम राजस्थान में मुराव इत्यादि जाति के लोग किया करते थे आवास निर्माण के कार्य में आ गयी । गरीब लोगों को थोड़ा बहुत झाँसा देकर इन पूँजीपति कालोनाईजर्स ने भूमि सस्ते में खरीद ली। और फिर महगें दामों में उन्हें प्लाट बनाकर उपभोक्ताओं को बेची ।
- 7. "अपने घर" की कामना हर एक में होती है । एक तो संयुक्त परिवार के लोग होने के कारण, फिर जनसंख्या में वृद्धि के कारण, इसके साथ—साथ गांवों की ओर से स्थायी रूप से शहरों में बसने के इरादे से प्रवास करने वालें लोगों की संख्या में निरन्तर वृद्धि के कारण शहरों में आवासीय भूमियों और भूखण्डों की मांगों में बेहिसाब वृद्धि हुई है ।
- 8. इस तरह इस नए शहरीकरण ने नए असन्तुलनों और अव्यवस्था को जन्म दिया है।
- 9. भूमियों के दाम तेजी से बढ़े है और बढ़ रहे हैं । यह मुनाफा गिने—चुने लोगों के पास जा रहा है ।

- 10. देश के सहकारी आवास अधिनियमों का लाभ जैसे सीलिंग नियमों, और प्रतिबन्धों से छूट, रियायत पंजीकरण की सरलता व सुविधा इत्यादि लेने के उद्देश्य से कुछ लोगों ने सहकारी आवास समितियाँ भी निर्मित कर ली है। देश में इनका जाल सा बिछ गया है।
- 11. इस क्रम में अनेक और बड़ी माग में आवासीय समितियाँ तो बनी पर उनमें लाभ कमाने का उद्देश्य प्रमुख हो गया और कल्याण तथा सामुदायिक जीवन जीने का उद्देश्य गौण हो गया। इसका फल यह हुआ कि सहकारी आवारा समितियों के बोर्ड सूचक पर या श्यामपट पर तो लग गए पर निर्माण कार्य बाधित तथा अवरोधित ही रहा । फर्जी कार्य में वृद्धि हुयी। आधुनिक भारतीय शहरीकरण की यह एक प्रमुख बात है ।

28.6 ग्रामीण शहरी जनसंख्या के अन्तर्गगत प्रवास, आवास, विस्थापीकरण, शहरीकरण, के विकास व विस्तार और आवास के लिए नई भूमियों की खोज का एक और पक्ष

औद्योगिक नीति, 1948 तथा 1956 के प्रोत्साहनों तथा प्रावधानों की क्रियान्विति के फलस्वरूप होने वाले औद्योगिक विकास के अन्तर्गत नए अधिक औद्योगिक नगरों, बस्तियों. एस्टेटों की स्थापना जिसके कारण नई आबादी को आवासीय सुविधा देने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र में भवन निर्माण कार्य नई बस्तियों की स्थापना और नए स्वरूप को प्रारम्भ करना :—

यदि स्वतंत्रता के पश्चात विशेषकर 1948 की व 1956 की औद्योगिक नीतियों की क्रियान्विति के फलस्वरूए जहाँ एक ओर औद्योगीकरण गित को प्रोत्साहन मिला, वहाँ दूसरी ओर सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र में नए—नए औद्योगिक उपक्रम तथा संस्थान स्थापित होने लगे। उनकी स्थापना शहरों में तो हो नहीं सकती थी। अत: शहर के बाहर नई भूमियाँ देखी गयीं और उन पर इनकों स्थापित किया गया। इनकी स्थापना के साथ—साथ आरम्भ हुआ उन सभी आवासीय व नागरिक सुविधाओं को प्रदान करने का कार्य जो कि इस प्रकार के संस्थानों की स्थापना के साथ न केवल एक अनिवार्य अंग ही था पर परिवर्तनशील लागतों का एक अपरिहार्य प्रावैगिक रूप भी था। फल यह हुआ कि नए नगर स्थापित होने लगे और वे नगर स्वयं में प्रसिद्ध तथा महत्वपूर्ण हो गए। उदाहरण के लिए, स्वतन्त्रता से पहले भिलाई, नेपानगर, राउरकेला, दुर्गापूर का नाम भी लोग नहीं जानते थे क्योंकि यह नगर थे ही नहीं।

अतः नए औद्योगिक कार्यक्रम व विकास ने शहरीकरण तथा जनसंख्या के प्रवास तथा अन्तर्गमन की एक प्रवृत्ति उत्पन्न कर दी । प्रत्येक फैक्ट्री का अपने कर्मचारियों के लिए कॉलोनी व आवासीय बस्ती बनाना अनिवार्य हो गया। अन्य सेवाओं, सुविधाओं व परिवहन—सुविधा प्रावधानों को उपलब्ध कराने में अन्य लोगों का जो फैक्ट्री के बाहर के थे और फैक्ट्री के इर्द—गिर्द अपने मकान, दुकान, संस्थान तथा कार्यालय बनाकर बैठे थे, हाथ और कार्य बढ़ने लगा। यह जनसंख्या स्वपरक रूप से अन्य स्थानों, गांवों, छोटे नगरों से इन केन्द्रों की ओर आकर्षित तथा प्रभावित होती गयी । नगर बसने लगे रेलवे स्टेशन तथा बस स्टैण्ड स्थापित होने लगे । लोगों को रोजगार मिलने तथा रोजगार अवसरों का विस्तार हुआ यह सब देश में

नवीन शहरीकरण के लिए अनिवार्यतायें थी । क्योंकि जल्दी में किया गया कोई भी काम व्यवस्थित तथा संतुष्टि देने वाला नहीं होता इसलिए इन नगरों की बस्तियों को विशेषकर उनको जो निजी प्रयासों से लाभ कमाने के लिए स्थापित हुई थी व्यवस्थित नहीं कहा जा सकता । जिसको जहां जमीन मिली मकान व दुकान बनाने लगा क्योंकि लोगों को किराये पर दुकान व मकान की आवश्यकता थी । किरायेदार तथा मकान मालिक दोनों ही इन क्षेत्रों की ओर आकर्षित होने लगे । शहरीकरण का एक नया रूप सामने आया। औद्योगिक बस्तियाँ, फैक्ट्री, कॉलोनी इत्यादि तो संयमित, नियमित व व्यवस्थित थी पर उनके बाहर वाली बस्तियाँ तो अधिकतर अव्यवस्थित थी । नगर तो बसने लगे पर व्यवस्थित नहीं । चण्डीगढ़ जैसा नगर तो भारत में एक ही है ।

28.7 ग्रामीण-शहरी समन्वय के लिए नियोजन (Planning for rural urban integration)

अब यह बात एक निर्विवाद सत्य के रूप में स्वीकार करनी होगी कि अनेकानेक कारको, प्रभावों, आकर्षणों तथा प्रवृत्तियों के फलस्वरूप ग्रामीण व शहरी जनसंख्या] का प्रवास सम्बन्धी अन्तर्गमन होगा ही क्योंकि आर्थिक और औद्योगिक विकास कार्यक्रम में इस प्रकार का अन्तर्गमन स्वत : ही अन्तर्निहित है, इसका अनिवार्य अंग है ।

गांवों के लोगों के प्रधान व्यवसाय कृषि में, तथा शहरी जीवन के प्रमुख सशक्त उद्योग के बीच जब एक अपरिहार्य तथा अनिवार्य सह—सम्बन्ध अवश्यम्भावी तथा पूर्व किल्पत है तो इन व्यवसायों पर निर्भर जनसंख्या में सह—सम्बन्ध तथा अन्तर्गमन तो अवश्यम्भावी तथा पूर्व किल्पत अपने आप ही हो गया ।

इस प्रक्रिया में एक ओर से दूसरी ओर जनसंख्या का प्रवास होगा ही स्थायी रूप से या अस्थायी रूप से, यह दूसरी बात है।

जब यह प्रवास और अन्तर्गमन स्वाभाविक सिद्ध हो गया तो इस जनसंख्या की आवासीय समस्या का समाधान भी स्वयं में एक प्रश्न, एक चुनौती, एक प्रयास, एक अभ्यास, और एक नियोजन भी अनिवार्य तथा अपरिहार्य हो जाता है । इस प्रश्न के दो पहलू है —

- (अ) आवास के लिए नई भूमियों व भू—खण्डों के अधिग्रहण के प्रश्न का समाधान विशेषकर उस स्थिति में जिसमें बढ़ता हुआ औद्योगीकरण कृषि भूमि पर ही दबाब बनाए हुए है ।
- (ब) सीमित भूमि पर अधिकतम आवासीय सुविधा प्रदान करने के लिए नियोजन । दूसरे शब्दों में ग्रामीण शहरी जनसंख्या के प्रवासी अन्तर्गमन को ध्यान में रखते हुए उसकी आवासीय समस्या के समाधान हेतु उन कड़ियों, सम्बन्धों तथा सह अन्तर्क्रियाओं की खोज करना जिससे अधिकतम आवासीय सुविधा उपलब्ध हो सके जबिक भूमि का कम से कम प्रयोग हो ।
- (अ) इस बिन्दु के अन्तर्गत उठाए गए प्रश्न के समाधान के सम्बन्ध में निम्न बातें उल्लेखनीय हैं :— सभी शहरों में कारगर बहु मंजिला भवन बने जिससे कम भूमि लगे तो सिरोपरी सुविधाओं को दूर तक न ले जाना पड़े ।

- 1. जब सार्वजिनक क्षेत्र या निजी क्षेत्र में किसी नए औद्योगिक संस्थान को स्थापित करने की स्वीकृति दी जाये तब साथ ही साथ उसमें कार्य करने वाली सम्भावी जनसंख्या के लिए आवासीय व्यवस्था करने की बात भी उस सम्पूर्ण प्रक्रिया का एक अनिवार्य अंग बनाया जाये।
- 2. उस संयंत्र अथवा संस्थान के बाहर अनेक आवासीय, व्यापारिक, व्यवसायिक कारणों से जनसंख्या का जमावड़ा प्रारम्भ होगा और आवासीय भूमि की मांग भी बढ़ेगी । इस मांग की आपूर्ति केवल, निजी क्षेत्र में काम कर रहे कालोनाइजर्स व ठेकेदारों पर ही न छोड़ी जाए, उसके लिए एक राष्ट्रीय औद्योगिक आवास नीति व अधिनियम भी पारित किया जाये तथा नियोजन आयोग की नियोजन प्रक्रिया के दायरे में वह सभी प्रश्न आयें ।
- 3. उदमतावादी नीति के अन्तर्गत इन क्षेत्रों में संरचनात्मक विकास हेतु एक नियमित तथा जागरूक और प्रावैगिक "विदेशी—विनिमय नीति" के अनुपालन से संरचना सुदृढ़ होगी जिसकी देश को बहु त आवश्यकता है ।
- 4. आवास के लिए नियोजन के साथ—साथ जहां एक ओर नियोजित बस्तियों को स्थापित करने की बात कही जाये वहां एक सरस व सुगम आवासीय वित्त व्यवस्था की भी स्थापना की जाये । भवन निर्माण के लिए वित्तीय व्यवस्था सरल तो हो ही साथ ही साथ उसकी उत्पादकता तथा उचित प्रयोग की प्रक्रिया तथा सामयिक परीक्षण भी आश्वस्त कर लिया जाये । वित्तीय स्विधा स्पात्रों —को मिले कि पैतरेंबाज क्पात्रों को।
- 5. भू-खण्ड आवचन एक नियोजित आर्डर के अनुसार लें।
- 6. मनमाने ढंग से बनाया गया निर्माण, दण्ड का भागी बनाया जा सके ।
- 7. आगरे के ख्यालबाग में बनी राधा स्वामी कॉलोनी या चण्डीगढ़ में बनी बस्तियों को आदर्श मानकर, भवनों के मानचित्रों में एकरूपता होने से नगरों का विकास बदसूरत नहीं लगेगा।
- 8. इन्दिरा आवास योजना जैसी अनेक अन्य योजनायें भी बनाई जायें पर उनकी क्रियान्विति किसी प्रकार की संदिग्धता के प्रश्न के घेरे में न आ जाये ।
- 9. नगरीकरण एक लम्बा तथा निरन्तर विकसित होने वाला प्रयास है । इसमें प्रशासन और जनता दोनों की सहभागिता अनिवार्य है ।
- (ब) इस बिन्दु के अन्तर्गत आवासीय बस्तियों को जो, प्रवासी जनसंख्या के लिए नगर क्षेत्रों में बनेंगी, एक राष्ट्रीय नियोजित आवास निर्माण योजना और कार्यक्रम के तहत रखा जाना चाहिए । जनसंख्या से सम्बन्धित लगभग सभी विषय प्रावैगिक तथा ज्वलन्त है और सदा रहेंगे । और इसी आधार पर उसके लिए आवास की आवश्यकता की आपूर्ति का प्रश्न भी शाश्वत रूप ज्वलन्त नागरिक तथा प्रावैगिक रहेगा । इस दृष्टि से निम्मलिखित बातें ध्यान में रखी जा सकती है:
- 1. छोटे और सस्ते पर मजबूत और सामान्य नागरिक सुविधाओं से पूर्ण, आवास बनाये जाये जिनका निर्माण केन्द्र सरकार, राज्य सरकार, नगर निगम, या नगर महा पालिका और बहु राष्ट्रीय कम्पनियों के संयुक्त वित्तीय प्रयास से ही ।

- 2. विश्व बैक जैसी वित्तीय संस्थाओं को इस प्रकार की आवासीय बस्तियों के लिए वित्तीय सहायता तथा अनुदान देने को राजी किया जाये ।
- 3. कर-प्रणाली में इस प्रकार की छूट दीजिये कि नियोजित आवास व्यवस्था के अन्तर्गत आवास बनाने पर ही वह छूट सम्भव हों ।
- 4. आवास-विकास संघों के कार्य को ज्यादा तीव्र, कारगर, समयबद्ध व पारदर्शी बनाया जाये।
- 5. आवासीय बस्तियों में बहुत सा काला धन भी सम्मिलित है । अतः वैयक्तिक लाभ पर अंकुश लगे ।
- 6. भूमि के दामों का विवेकीकरण हो ।
- भूमि कम होने पर, पूर्व सुरक्षा के साथ तथा सुरक्षा सम्बन्धी प्रावधानों की ओर विशेष
 ध्यान देते हुए बहु-मंजिला मकान बनाये जायें ।
- 8. बेकार भूमि को आवासीय भूमि बना लिया जाये विशेषकर उस भूमि को जिस पर कुछ पैदावार नहीं होती है ।

28.8 स्व-पाठ अभ्यास अथवा स्व-प्रशिक्षण प्रयोग

1. ग्रामीण-शहरी जनसंख्या प्रवास एवं अन्तर्गमन : -

एक ओर तो सामान्य रूप से रोजगार के अभाव से ग्रस्त व त्रस्त गरीब ग्रामीण जनता शहरों की ओर रोजगार की तलाश में आकृष्ट होती है। फिर दूसरी ओर स्वतंत्रता के पश्चात औद्योगीकरण की तीव्र गति, विकास तथा विस्तार के कारण, नगरीय क्षेत्रों में, रोजगार के अवसर ज्यादा दिखायी देने लगे बजाये गांवों के, इसलिए गांव के लोग इधर और भी तेजी से आकर्षित हुए।

स्वाभाविक ही था कि बड़े नगरों की ओर इन कारणों तथा नए संदर्भों से ग्रामीण जनसंख्या का प्रवास हो ।

- (अ) **प्रश्न**: कुछ ऐसे औद्योगिक नगरों के नाम बताइए जिनकी ओर स्वतन्त्रता से पूर्व भी ग्रामीण लोगों का प्रवास रहा हों । कारण भी ।
- (ब) प्रश्न: स्वतन्त्रता के बाद औद्योगिक विकास के क्रम में देश में औद्योगिक नगर तथा बस्तियाँ बसना आरम्भ हो गए । ऐसे कुछ औद्योगिक नगरों व बस्तियों के नाम बताइए जहां नए सिरे से ग्रामीण तथा अन्य जनसंख्या प्रवास कर गयी? क्यों ।

2. नई जनसंख्या की आवासीय समस्या :-

नए औद्योगिक केन्द्रों, जनसंख्या के जमावड़े ने आवास की समस्या भी उतम कर दी। शहरों के बाहर, उनकी हदों के आस—पास पड़ी भूमि पर घीरे—धीरे आवासीय बस्तियाँ बसने लगी जो भूमि पहले बेकार समझी जाती थी वह नए संदर्भों व आवश्यकताओं को देखते हुए कारगर सिद्ध होने लगी और उसकी कीमतें बढ़ने लगी । मांग और पूर्ति का सनातन नियम लागू होने लगा। रिकार्डों का लगान सिद्धान्त भी लागू होने लगा।

(अ) प्रश्न: भूमि के क्रय-विक्रय ने लाभ कमाने के लिए खर्चें में इस प्रकार की वृद्धि कर दी कि अनेक प्रकार के असामाजिक लोग, वर्ग व हित उत्पन्न होने लगे । कुछ ऐसे लोगों, संस्थाओं व वर्गों के नाम बताइए जो इस प्रक्रिया में आवासीय भूमि अपनाने व हड़पने के काम में सिक्रय हो गए है।

- (ब) प्रश्न: सामान्य वर्ग के लोगों पर इस कार्य का क्या प्रभाव पड़ रहा है ।
- (स) प्रश्न: वास्तविक अथवा भवन-गत एवं भूमिगत ज्यादातर के निर्माण में और लेन-देन में काले धन का सूजन किस प्रकार होता है ।

3. इस क्षेत्र में किए जा रहे शासकीय तथा संस्थागत प्रयास : -

अनेक कारणों के प्रभाव स्वरूप उत्पन्न होने वाले शहरीकरण की ओर सरकार का ध्यान भी नीतिगत तरीके से और व्यवस्था या समता—सृजन की दृष्टि से यथोचित रहा है । शहरी आवास की समस्या से निपटने तथा उसे नियन्त्रित, अनुशासित व संयमित तथा संतुलित रखने के उद्देश्य सं केन्द्र में हाउसिंग मंत्रालय है, राज्यों में आवास एवं विकास संघों की स्थापना हुयी है । और जिला स्तर पर प्राधिकरण स्थापित हुए है । सहकारी आवास को प्रोत्साहन दिया गया है । विकास संघ से आवास—निर्माण सम्बन्धी ऋण तथा वित्तीय व्यवस्था सम्भव व सुलभ की गयी है । जीवन बीमा निगम जैसे निगम विस्तृत रूप से बीमा धारकों को क्षण देने लगे है । इस तरह आवास विकास के राभी पहलुओं पर सरकारी, सहकारी, संस्थागत, निजी, सभी प्रकार से विचार हुआ है विस्तार हुआ है, कार्यक्रम चलाए जा रहे है । और आवास निर्माण का कार्य देश भर में, विशेषकर नगरों के बाहर वाली भूमियों पर अथवा औद्योगीकरण के फलस्वरूप विकसित हो रहे नए नगरों में, नए आवास तीव्र गित से बन रहे है ।

- (अ) **प्रश्न**: केन्द्रीय सरकार में गृह—निर्माण व्यवस्था तथा विकास व आवास का कार्य कौन देखता है?
- (ब) प्रश्न: राज्य स्तर पर नगरीकरण के कारण उत्पन्न शहरी में मकान की आवश्यकता की आपूर्ति सम्बन्धी सभी बातें कौर सी संस्था अधिकारिक रूप से देखती है?
- (स) प्रश्न: जिला स्तर एवं नगरीय आवास सम्बन्धी मामलों के निस्तारण का कार्य किस संस्था को अधिकाधिक रूप से सौपा गया है?

28.9 सारांश

विकास—कार्य में प्रगति तथा परिवर्तन दोनों ही साथ—साथ चलते है । और पारस्परिक जीवन में प्रावैगिक परिवर्तन विकास की पहली स्पष्ट पहचान है । और यही है विकास की सभ्यता का मूल सेशन जिसका दृष्टव्य बिम्ब है नगर, नगरीय बस्ती या जनसंख्या । तथा आवासीय क्षेत्रों का शहरीकरण की प्रक्रिया में ग्रामीण जनसंख्या का रोजगार प्राप्त करने तथा अच्छा सभ्य व नागरिक जीवन जीने की लालसा । प्रवास, शहरों की ओर एक प्रवृत्ति व प्रक्रिया के रूप में अन्तर्निहित है । उसी को ग्रामीण लोगों की शहरों की ओर गमन करने की प्रवासी प्रवृत्ति कहते है।

इस प्रवृत्ति से प्रभावित जनसंख्या की पहली आवश्यकता है आवास, जो धीरे-धीरे एक समस्या भी बनती जाती है और चुनौती भी । इसका नियोजन जितना दीर्घकालीन दूरदर्शिता पर आधारित व्यवहारिक तथा वस्तुनिष्ठ होगा । समस्या का समाधान उतना ही शीघ्र सरल तथा स्थायी होगा ।

इस सामाजिक आवश्यकता के दो रूप बन जाते है -

- 1. सामाजिक आवश्यकता तथा सामाजिक कल्याण कीं आपूर्ति की दृष्टि से सरकार इसे वास्तविक लागत का एक भाग माने ।
- 2. निजी क्षेत्र फुटकर, भूमिधारक, वैयक्तिक हित इत्यादि लोग, पूजींगत लाभार्जन के लिए उल्टे सीधे सौदों को करके लोगों को विक्रेता कीमत पर भवन—खण्ड बेचे ।

स्वतन्त्रता के पश्चात शहरीकरण के अनेक पहलू प्रस्फुटित हुए है । उद्योगों की स्थापना के साथ औद्योगिक नगरों की जनसंख्या का विस्तार, नई जनसंख्या का औद्योगिक केन्द्रों की ओर रोजगार की खोज में प्रवास करना इत्यादि ।

इस बढ़ती हुई जनसंख्या की आवासीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नियोजित आवास व्यवस्था तथा अनियोजित आवास व्यवस्था दोनो ही अपने—अपने तरीके से आगे बढ़ते रहे हैं ।

धीरे-धीरे सरकारी प्रयास भी इस नियोजन व ग्रामीण शहरी जनसंख्या समन्वय के लिए भारतीय आवासीय बस्तियों को बसाने की दिशा में, संवैधानिक तथा प्रशासनिक रूप से आगे आयी केन्द्र, राज्य तथा जिला स्तर पर व्यवस्थाएं की गयी । संस्थागत तथा सरकारी सखाओं और संस्थाओं ने इस कार्य में साझेदारी की ।

वित्तीय व्यवस्था के लिए भी अनेक वित्तीय संस्थाओं ने ऋण देना प्रदान किया।

लेकिन समस्या है कि इस समन्वय के नियोजन के लिए, उपलब्ध भूमि का अधिकतम उत्तम प्रयोग कैसे किया जाए तथा उसका नियोजन कैसे सम्भव हो। "सब चलता है" का आचरण व भारी भष्टाचार सम्पूर्ण भारत को ही गरीब व गंदा रखे हुए है।

इसके लिए सरकारी, सहकारी, संस्थागत और निजी चार प्रकार की धाराओं से आवास प्रवाहित हो और प्रतिस्पर्धात्मक हो ।

28.10 शब्दावली

इस इकाई में प्रमुख प्रयुक्त कुछ मुख्य शब्द इस प्रकार है

- 1. प्रवासी प्रवृत्ति
- 2. विकास प्राधिकरण
- 3. आवासीय-भूमि अधिकतम प्रयोग, समीकरण
- 4. आवासीय-भूमि तथा जनसंख्या, सह-सम्बन्ध
- 5. संस्थागत वित्त
- 6. सामाजिक हित जनहित आवास सुविधा विकास व विस्तार
- 7. आवासीय सुविधा विस्तार नियोजन
- 8. ग्रामीण-शहरी जनसंख्या समन्वय

28.11 स्वःशिक्षण के लिए अभ्यास

- 1. शहरीकरण के विकास व विस्तार में एक या दो कारको व घटकों का ही योगदान नहीं है अपितु अनेक घटक क्रियाशील रहकर शहरीकरण की प्रगति, विस्तार इत्यादि में योगदान देते है । जनसंख्या की वृद्धि इन सभी कारकी में से एक महत्वपूर्ण कारक है ।
- (अ) प्रश्न: उन सभी कारकों की विस्तृत विवेचना कीजिए जो शहरीकरण के लिए साधक सिद्ध हुए है । क्या गांवों से शहरों की ओर प्रवास करने वाली जनसंख्या शहरीकरण के विकास अथवा उसकी समस्याओं को बढ़ाने में कोई कारक भूमिका निभाती
- 2. बढ़ती हु यी जनसंख्या के लिए आवास तो निश्चित रूपं से हीं चाहिए । बढ़ती हु यी जनसंख्या के कारण, शहरीकरण के विस्तार के अर्थी में एक अर्थ यह भी है कि जनसंख्या के जमावड़े के कारण आवास सुविधा की मांग भी बढ़ी हैं । बढ़ती हु यी मांग के कारण पूर्ति प्रक्रिया भी सिक्रिय हु ई है । पूर्ति प्रक्रिया के सिक्रिय होने का अर्थ है नई भूमियों को अधिग्रहीत करके उन पर आवासीय बस्तियों की स्थापना की जाये।
- (अ) प्रश्न: शहरीकरण में आवासीय समस्या के निदान से सम्बद्ध महत्वपूर्ण मुद्दों पर प्रकाश डालिए।
- 3. शहरीकरण और उसके साथ संलग्न अथवा संयुक्त रूप से उतम आवासीय सुविधा की मांग इत्यादि प्रश्नों के प्रति सरकार भी उदासीन न रह सकी और धीरे-धीरे इस संदर्भ में सरकारी प्रयास भी सक्रिय तथा कारगर सिद्ध हुए। सरकारी प्रयन्त भी व्यापक है।
- (अ) प्रश्न: सरकार द्वारा नगरीकरण के विकास विस्तार व शहरीकरण के साथ—साथ नगरीय आवासीय मांग में भी वृद्धि हु यी है। सरकार ने इस ओर अनेक कदम उठाए है और संस्थाएं स्थापित की है।
- (ब) प्रश्न: कुछ ऐसी सरकारी संस्थागत ओर साथ ही निजी क्षेत्र की संस्थाओं की संक्षिप्त चर्चा कीजिए और बताइए कि इन संस्थाओं ने आवासीय बस्तियों को बसाने तथा उपलब्ध भूमि के अधिकतम प्रयोग करने के मामले में क्या योगदान दिया है।

28.12 क्छ उपयोगी प्स्तकें

1. Sudip Mandal : District Planning

2. Crose, M.S. : Urban Planning and some Portion of Social

Policy

3. Awasthi, R.K. : Urban Development and Metro Politics in India

4. नाथूरामका : भारतीय अर्थव्यवस्था

इकाई 29

अंचल क्षेत्रीय साधन विकास की योजनाएँ : कृषि जलवायु अवस्थाओं पर आधारित क्षेत्रीय नियोजन : नदी घाटी व जल प्रपात (वाटरशैड) क्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

- 29.0 उद्देश्य
- 29.1 प्रस्तावना
- 29.2 साधन विकास के लिये योजनाएँ
 29.2.1 संतुलित क्षेत्रीय विकास
 29.2.2 क्षेत्रीय योजनाओं का समन्वय
- 29.3 क्षेत्रीय नियोजन '
 - 29.3.1 विशेष उद्देशीय नियोजन
 - 29.3.2 क्षेत्र सम्बन्धी दृष्टिकोण
- 29.4 आयोजना क्षेत्रों का विभाजन
 29.4.1 कृषि अवस्थाएँ
 29.4.2 जलवायु सम्बन्धी अवस्थाएँ
- 29.5 नदी घाटी परियोजनाएँ
- 29.6 वाटर शैड प्रबंधन कार्यक्रम
- 29.7 सारांश
- 29.8 निबन्धात्मक प्रश्न
- 29.9 क्छ उपयोगी प्स्तकें

29.0 उद्देश्य

आर्थिक स्थिरता की वर्तमान स्थिति को दूर करने एवं क्षेत्रों की असंतुलित अर्थव्यवस्था को समन्वित करने में साधन विकास की प्रमुख भूमिका है। यह सत्य है कि किसी भी क्षेत्र के लोगों की भविष्य की संपन्नता व कल्याण, मौखिक सामाजार्धिक व संरचनात्मक परिवर्तनों पर निर्भर करती है जो कृषि व जलवायु सम्बन्धी क्षेत्रीय और अधिक विशिष्टतया क्षेत्रों की नदी घाटी परियोजनाओं व वाटरशैड प्रबंधन पर आधारित क्षेत्रीय नियोजन के द्वारा लाये जाने हैं। साधन विकास की इन योजनाओं का क्षेत्रों पर बहु पक्षीय प्रभाव पड़ता है जैसे प्रति व्यक्ति की आय वृद्धि, राज्य व क्षेत्र की आय में वृद्धि, घरेलू उत्पादित व विकसित साधनों के उपयोग से आय को आसमानता में कमी आदि।

उपलब्ध साधनों के अधीन देश के विभिन्न भागों में संतुलित विकास के लिये हर सम्भव प्रयास किया जाना चाहिए और क्षेत्रीय असमानता में कमी करने की समस्या पर निरन्तर ध्यान दिया जाना चाहिए । संतुलित विकास कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये यह अति आवश्यक है कि लोगों को केवल क्षेत्रीय आर्थिक संरचना को सृदृढ आधार पर बनाने में व अपनी बढ़ी हुई सम्भावनाओं का अनुभव करने के लिये उनकी वास्तविक भूमिका के प्रति सजग बनाया जाये ।

इसी विचार से इस अध्ययन को कुछ उद्देश्यों के अनुसार तैयार किया गया है और जो इसका अध्ययन करेंगे उन्हें इसके निम्न पहलुओं के बारे में जानकारी मिलेगी ।

- 1. साधन विकास कें लिये बनायी गयी योजनाएं।
- 2. स्थानीय साधनों के ईष्टतम उपयोग के द्वारा संत्लित क्षेत्रीय विकास ।
- 3. संतुलित विकास के लिये क्षेत्रीय नियोजन
- 4. कृषि जलवायु अवस्थाओं के आधार पर क्षेत्रों का अभिन्नीकरण ।
- 5. क्षेत्रीय विकास के केन्द्र बिन्द् के रूप में वृहत-परियोजनाएँ।
- 6. नदी घाटी परियोजनाओं व वाटर शेड प्रबंधन के द्वारा क्षेत्रीय विकास ।

29.1 प्रस्तावना

विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के साधन उपलब्ध होते हैं जिनका उपयोग क्षेत्रों के विकास के लिये किया जा सकता है। एक देश में क्षेत्रों के सर्वागीण विकास के लिये, एक क्षेत्र के उपलब्ध साधनों का उसी क्षेत्र में उपयोग के लिये तथा विभिन्न क्षेत्रों के बीच इन साधनों के स्थानान्तरण के लिये सर्वसम्मत प्रयास आवश्यक होते हें। इसके लिये साधन विकास की योजनाओं के उचित प्रतिपादन व डिजाइन की आवश्यकता है। देश की नियोजन प्रणाली के द्वारा आर्थिक वृद्धि व विकास की प्रक्रिया में क्षेत्रीय असंतुलनों को दूर करने के लिये इस प्रकार के समन्वय को सम्मिलित करना होगा। क्षेत्रीय विकास के दृष्टिकोण से एक विशेष उद्देश्य से नियोजन भारी महत्व का होना है जो एक क्षेत्र के विकास के लिए कार्यक्रमों के पेकेज उपलब्ध कराने के विशेष उद्देश्य से किया गया है।

एक क्षेत्र के अभिनीकरण एक नियोजन क्षेत्र के अभिनीकरण की प्रक्रिया को उसके विशेष साधनों, समस्याओं व आवश्यकताओं से निर्देशित होना चाहिए । अधिक महत्वपूर्ण आर्थिक तत्व हैं जो एक क्षेत्र को दूसरे क्षेत्र से अलग करते हैं । हालांकि एक क्षेत्र की कृषि जलवायु सम्बन्धी विशेषताएं भी समान रूप से महत्वपूर्ण होती है । वास्तव में वे धारक जो एक क्षेत्र के साधन विकास को प्रभावित करते हैं वे है— शुद्ध बोया गया क्षेत्र, दोहरी फसल क्षेत्र व सिंचित क्षेत्र । क्षेत्रक सामुदायिक विकास भी क्षेत्रक विकास का एक महत्वपूर्ण प्रयोग है और ये क्षेत्रक दृष्टिकोण विकास नियोजन को नया महत्व प्रदान करता है । क्षेत्रीय नियोजन का उद्देश्य सहायक आगतों (इन्पूट) की व्यवस्था करके, स्थानीय साधनों का पूर्ण उपयोग करना होता है ।

भारत में विकास नियोजन, क्षेत्रों के क्रमश : व निरन्तर विकास के लिये अपनाया गया है । हमारे देश में विनियोग के विकेन्द्रीकरण के द्वारा क्षेत्रीय विकास का नियोजन अति महत्व का है । एक क्षेत्र के विकास का प्रयास कृषि, जलवायु अवस्थाओं के आधार पर अभित्रित क्षेत्रों को कार्यक्रमों के पेकेज देकर किया जाता है । सिंचित क्षेत्र व जल सुविधाओं के आधार पर हमारे देश के बहुत से क्षेत्रों में नदी घाटी परियोजनाओं को क्रियान्वित किया गया है । हाल में

क्षेत्रक विकास के दृष्टिकोण में एक क्षेत्र की समस्याओं को दूर करने के लिये विभिन्न योजनाओं के समन्वय के रूप में एक परिवर्तन आया है। पिछड़े हुए व कृषि जलवायु के अनुसार प्रतिकूल क्षेत्रों के आर्थिक स्थायीकरण के लिये वाटरशैड क्षेत्रक प्रबंधन के आधार पर विकास योजनाओं का समन्वय व क्रियान्वयन किया जाता है।

29.2 साधन विकास की योजनाएँ

"साधन" जलवायु व संस्कृति के अलावा प्रमुख कारणों में से एक है जो समाज या एक क्षेत्र के विकास में अग्रणी भूमिका निभाता है । नियोजकों का देश के विभिन्न क्षेत्रों के विकास करने में, एक क्षेत्र में साधनों का विकास करना या साधनों को उपलब्ध कराना, प्रमुख कार्य है। एक देश के विभिन्न क्षेत्र, प्राकृतिक व मानवीय दोनों प्रकार के साधनों के विभिन्न प्रकार व मात्राओं से सम्पन्न होते है । इस क्षेत्र में विकास के लिये इन उपलब्ध साधनों का उपयोगीकरण ध्यान देने का विषय है और साधनों के ईष्टतम उपयोग के लिये योजनाओं का निर्माण व क्रियान्वयन आवश्यक है । स्थानीय वातावरण की प्रकृति व आयाम क्षेत्रीय विकास की योजनाओं के लिये रचना व दिशा निर्देश निर्धारित करता है ।

29.2.1 संतुलित क्षेत्रीय विकास

संतुलित क्षेत्रीय विकास एक क्षेत्र के उपलब्ध साधनों के ईष्टतम उपयोगीकरण की माँग करता है जो फिर साधनों के विवेकपूर्ण उपयोगीकरण की आवश्यकता बतलाती हैं । एक क्षेत्र के उपलब्ध साधनों का उपयोग अधिक उत्पादकता से होना चाहिए तािक अधिकतम संभव लाभ प्राप्त किया जा सके । इसका तात्पर्य क्षेत्रीय साधनों के अविवेकी उपयोग को सीमित करना है । क्षेत्र की चालू मांग की पूर्ति के लिये इनका उत्पादकता से उपयोग होना चाहिए, और भविष्य की बढ़ी हुई मांगों की पूर्ति के लिये इन्हें बचा कर रखना चाहिए । यह उचित नियोजन से ही संभव है । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये साधनों के विकास की योजनाएँ भारी महत्व की हैं । संतुलित क्षेत्रीय विकास निश्चित ही एक आर्थिक मुद्दा नहीं बल्कि सामाजिक व राजनैतिक आवश्यकता का मुददा भी है । अनुकूल क्षेत्रों में जहां आर्थिक विकास व संकेन्द्रण हो चुका है वहां प्रवास की गंभीर सीमाएं हैं । मुख्यतया इसके एक नये जीवन सम्बन्धी वातावरण में सम्बन्ध स्थापित किया जाना है यह माना जाता है कि राष्ट्रीय विकास के वर्तमान स्तर पर पूर्ण संतुलित विकास प्राप्त करना संभव नहीं है, इसलिये आधारभूत उद्देश्य क्षेत्रों के बीच असमानता कम करना होगा। चूंकि क्षेत्र अधिकांशतः ग्रामीण है, इसलिये दिष्टिकोण कृषि विकास, कम से कम अल्पकालीन उद्देश्य होना चाहिए। दूसरी और कृषि विकास की व्यापक योजना आवश्यकतानुसार कुछ उद्योगों पर निर्भर करती है, जो कृषि का आधुनिकीकरण करेंगे।

29.2.2 क्षेत्रीय योजनाओं का समन्वय

एक व्यापक अर्थ में साधनों के विकास की योजनाओं में एक क्षेत्र के कुछ साधनों के बदले किसी अन्य क्षेत्र के कुछ अन्य साधनों के स्थानान्तरण के सम्बन्ध में निर्णय करना निहित है। यह प्रभावपूर्ण ढंग से विभिन्न क्षेत्रीय योजनाओं के प्रभावशाली समन्वय से प्राप्त किया जा सकता है, जिनका उद्देश्य क्षेत्र का तीव्र विकास करना है। राष्ट्रीय नियोजन प्रणाली

को इस प्रकार के समन्वय को स्वीकार करने में लचीला होना चाहिए ताकि आर्थिक वृद्धि व विकास की प्रक्रिया में क्षेत्रीय असमानताओं को कम किया जा सके ।

नियोजन तभी उपयोगी होता है जब इन योजनाओं को पूरा करने के लिये राजनैतिक साधन होते हैं । इसके अलावा सहयोग उन परिस्थितियों में अधिक प्रभावशाली होता है जहाँ सहयोगी पक्ष जानते हैं कि स्वार्थ कहाँ पर निहित हैं । इसलिए प्रभावशाली राज्यीय नियोजन, प्रभावशाली अन्तर्राज्यीय नियोजन व सहयोग से पूर्ववर्ती होना चाहिए । भारत जनाधिक्य व अधिक पिछड़ेपन सहित है जहां राज्य विविध प्रकार की भाषाओं व सांस्कृतिक समूहों का प्रतिनिधित्व करते हैं । और जहां केन्द्रीय सरकार एक नयनगोचज क्षेत्र पर एक राष्ट्र का निर्माण करने का प्रयास कर रही है वही क्षेत्रीय नियोजन में अन्तर्राज्यीय सहयोग का प्रयोग एक अदिवितीय स्थान रखता है ।

संतुलित क्षेत्रीय विकास की प्राप्ति के लिये प्रत्येक क्षेत्र की दीर्घ—कालीन व अल्पकालीन योजनाओं के समुह को क्षेत्रवार अन्तर्सबन्धित व समन्वित करना होता है । स्वाभाविक है कि, इसके प्रकार की योजनाओं के विकास के लिए नीतियों व कार्यक्रमों को ध्यान में रखना होगा, और उन्हें एक कार्यक्रम में रूपान्तरित करना होगा, तािक उन्हें क्रियान्वित किया जा सके । इस प्रकार सम्पूर्ण देश को शामिल करती हुई केवल क्षेत्रीय योजनाओं की श्रेणियाँ ही विकास स्तरों में विषमता को दूर करने व भविष्य में विकास दर प्राप्त करने में सहायक हो सकती है ।

29.3 क्षेत्रीय नियोजन

"एक क्षेत्र क्या है" । वास्तव में एक क्षेत्र पर तकनीकी, राजनैतिक व आर्थिक तत्वों को ध्यान में रखकर विचार किया जाना चाहिए । आर्थिक तत्व अधिक महत्वपूर्ण है जो एक क्षेत्र को दूसरे क्षेत्र से अलग करते है । आर्थिक क्षेत्र राज्यों के आकार से भी छोटे हो सकते है और ऐसे उदाहरण भी है जहां एक आर्थिक क्षेत्र एक से अधिक राज्यों में फैला होता है । तेलंगाना व रायलसीमा क्षेत्र जो आन्ध्र प्रदेश व उत्तरी बंगाल में आते हैं अपने आप में एक क्षेत्र है । इसी प्रकार अभिन्नता—योग्य अर्थ विकसित क्षेत्र है जो उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों व बिहार के उत्तरी पूर्वी जिलों में फैले हुए है।

29.3.1 विशिष्ट उद्देशीय नियोजन

एक क्षेत्र के विकास के लिये कार्यक्रमों के पेकेज उपलब्ध कराने वाला विशिष्ट उद्देशीय नियोजन क्षेत्रीय विकास के दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण होता है । पिछड़े हुए क्षेत्रों के नियोजित विकास कें लिये "बाधित क्षेत्रों को सहायता पहुं चाने के उद्देश्य से किया गया निवेश निम्न लागत के ग्रामीण श्रम एवं स्थानीय उपलब्ध साधनों पर आधारित होना चाहिए" । विभिन्न क्षेत्रों के विकास करने वाले विनियोग के चयन के कई विकल्प (प्रकार) है । इसके अतिरिक्त सड़को व ऊर्जा पूति के विकास के कारण देश का लगभग प्रत्येक क्षेत्र विविध प्रकार की उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन के योग्य हो गये द्वे । यह मुख्यतया स्थान सम्बन्धी आयामों से अलग विकास नियोजन के स्वरूप के कारण है ।

सामाजार्थिक समस्याएं स्थानीय स्तर पर ही स्पष्ट (संयोजित) होती है, और विकास नियोजन व नीतियां भी इसी स्तर पर पृथक हो गयी है । अधिकांश आर्थिक समस्याएं क्षेत्र विशिष्ट होती है और वातावरण काफी हद तक इस विशिष्टता ला प्रकृति निर्धारित करता है । इन समस्याओं के समाधान में राष्ट्रीय औसतों के आधार पर बने राष्ट्रीय नियोजन की तुलना में समन्वित रूप में प्रतिपादित उप राष्ट्रीय/क्षेत्रीय स्तर पर नियोजन अधिक प्रभावशाली हो सकता है । निम्न आय, उपभोग, बेरोजगारी निम्न उत्पादकता, वातावरण प्रदूषण, शिक्षा व स्वास्थ्य स्थिति से सम्बन्धित समस्याएँ विभिन्न क्षेत्रों में फैले हुए जन समूह के अधिक विशिष्ट होती है। इसलिए क्षेत्रीय समस्याओं को संयोजित करने क्षेत्रीय मुद्दों के समाधान के लिये उप राष्ट्रीय / क्षेत्रीय नियोजन अधिक प्रभावशाली है । यह निर्धनता व आय विषमता की समस्याओं के संघर्ष में राष्ट्रीय नियोजन का पूरक है, और विभिन्न स्थान सम्बन्धी स्तरों पर अधिक समन्वित व व्यवस्थित रूप में विकास आरम्भ करने के उत्प्रेरक (केटेलिस्ट) के रूप में कार्य करने का उद्देश्य रखता है ।

29.3.2 क्षेत्र सम्बन्धी दृष्टिकोण

क्षेत्रीय दृष्टिकोण विकास नियोजन को नवीन महत्व प्रदान करता है । यह विभिन्न क्षेत्रों की विशिष्ट समस्याओं के समाधान के लिये नियोजन में प्रावधान करना सुविधाजनक बनाता है । यह आर्थिक प्रक्रिया के नवीन प्रक्रिया पर आधारित विनियोग कार्यक्रमों का विकेन्दीकरण लाता है ।

क्षेत्रीय विकास नियोजन का उद्देश्य सहकारी आगतों की पूर्ति की व्यवस्था करके स्थानीय साधनों का पूर्ण उपयोगीकरण होना चाहिए । आगतों की पूर्ति से संबन्धित कमियों का पूर्व अनुमान लगाकर उन्हें दूर करने की व्यवस्था की जानी चाहिए ।

क्षेत्रीय विकास नियोजन के उद्देश्य व प्रणालियां समय के साथ परिवर्तित होती है । कृषि के आधूनीकरण पर महत्व उपयोगी होगा क्योंकि यह उर्वरक कारखाने गहरे जल कूप शक्ति जनित जुताई, सेवा सुविधाओं, विपणन प्रणाली व कीमत निर्धारण नीति की स्थापना को जोड़ती है । सुपरिभाषित क्षेत्रों के रूप में संतुलित क्षेत्रीय विकास योजनाएं, समायोजन व संशोधनों के द्वारा अल्प व दीर्ध कालीन क्रियान्वयन के लिये लचीला दीर्घकालीन योजनाओं की प्रकृति की होनी चाहिए । क्षेत्रीय नियोजन व विकास की सफलता काफी मात्रा में अन्तर्राज्यीय समन्वित नियोजन पर निर्भर करती है ।

29.4 आयोजना क्षेत्रों का विभाजन

आयोजना क्षेत्र का अभिनीकरण इसके विशेष साधनों समस्याओं व आवश्यकताओं की समरूपता से निर्देशित हो सकता है। इसके आकार का निर्धारण इसकी विकास की संभावनाओं से किया जा सकती है। एक क्षेत्र की सघन्नता एक भाग से दूसरे भाग के बीच उत्पादन के आगतों के बीच गतिशीलता की मान्यता रखती है। जब एक परियोजना क्षेत्र सुपरिभाषित सघन क्षेत्र तक सीमित है तो, इसमें पाये जाने वाले साधनों का श्रेष्ठतम संभव उपयोग किया जाना चाहिए। साधनों के अनावश्यक यातायात के रूप में बहुत कम होना चाहिए। नियोजन के निर्धारण के मानदंड निम्न बिन्दुओं तक घट कर रह जाते है—

- 1. समाजार्थिक विशेषताओं की विशिष्टता ।
- 2. एक क्षेत्र की सीमा स्वयं पर्याप्ति व स्स्थिर विकास की मान्यता होगी ।

3. घनता (Compectness) का निर्धारण आर्थिक क्रियाओं के समूह से होगा ।

आयोजन क्षेत्र के आलेखन के सूचक प्राकृतिक साधनों के स्वस्थ, जनसंख्या सम्बन्धी स्वरूप जनसंख्या का घनत्व, प्रति व्यक्ति आय आदि होंगे। एक क्षेत्र की अन्य क्षेत्रों से विशेष प्राकृतिक साधनों की प्रधानता व इसके उपयोग की सीमा से की जायेगी, जो अन्य क्षेत्रों में उपयोगीकरण के स्तर की तुलना में होगी। इसी प्रकार एक क्षेत्र की विशिष्ट जनांकीय विशेषताएं उस क्षेत्र के विकास की विशेष सांस्कृतिक समस्याओं को प्रमाणित करेगी। यदि किसी क्षेत्र की प्रति व्यक्ति आय राज्य की औसत आय या क्षेत्रीय औसत से बहुत कम है तो, यही क्षेत्र को अभिन्नता करेंगी।

29.4.1 कृषि सम्बन्धी अवस्थाएँ

क्षेत्रीयकरण अर्थात किसी राजनैतिक उद्देश्य के लिये राष्ट्र के विवेकपूर्ण विभाजन का महत्वपूर्ण पहलू इसकी क्रियावार विशेषताएं है । बहुत सी अर्थव्यवस्थाएं अपनी आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में अपनी विशषताओं से कृषि अर्थव्यवस्थाएं थी । अर्ध निकसित व विकासशील अर्थव्यवस्थाएं प्रधानतया कृषि (खेती) अर्थव्यवस्थाएं थी । यह मुख्यतया भूमि व जल संसाधनों की उपलब्धि व उनकी संभावनाएं है । कृषि व सिंचाई सुविधाओं सहित क्षेत्रों का सीमांकन किया जाता है और इन क्षेत्रों के नियोजित विकास के लिये प्रयास नदी घाटी परियोजनाओं व बहु उद्देशीय परियोजनाओं कं क्रियान्वयन के द्वारा किये जाते हैं । तत्व जो एक क्षेत्र के साधन विकास को प्रभावित करते है वे बोया हुआ शुद्ध स्रोत्र, दोहरी फसल के क्षेत्र, सिंचित क्षेत्र, एक बार से अधिक सिंचित क्षेत्र, फसल स्वरूप, कृषि उत्पादकता (फसलानुसार व कुल दोनों), विभिन्न प्रकार के श्रम की मजदूरी की दरें आदि । इस प्रकार क्षेत्रीयकरण भूमि व जल संसाधन संपन्नता पर आधारित होता है और क्षेत्रीय नियोजन कृषि व सिंचाई से सम्बन्धित साधनों के दक्ष प्रबंधन व विकास का उद्देश्य रखता है।

सामुदायिक विकास क्षेत्रकीय विकास का एक प्रयोग मात्र हैं । क्योंकि यह स्थानीय साधनों को विशेष महत्व देता है । यह क्षेत्र में सामाजिक उपिरव्यय (Over head) के निर्माण के लिए साधनों के एकत्रीकरण में मुख्य भूमिका निभा सकता है । यह आर्थिक परियोजना व स्थानीय लोगों के बीच एक कड़ी है, और सामूहिक क्रिया में लाभकारी परिणाम लाता है । सामुदायिक विकास कार्यक्रम में क्षेत्रकीय दृष्टिकोण अन्तर्निहित है । कृषि व सिंचाई परियोजनाओं के स्थान कृषि विकास के केन्द्रों के रूप में कार्य करते है । और वे वैज्ञानिक उत्पादन व सभ्य जीवन के सभी आवश्यक तत्वों को क्षेत्र की पहुँच के अन्दर लाते है । वे निकटवर्ती क्षेत्रों में सामुदायिक परिसंपत्ति के निर्माण में योगदान दे सकते है ।

29.4.2 जलवायु सम्बन्धी अवस्थाएँ

साधन विकास के विपरीत, साधनों की न्यूनता, अधिक विशेषतया उपजाऊ भूमि और जल संसाधनों की न्यूनता भी क्षेत्रीयकरण का आधार होती है । दूसरे शब्दों में कृषि की समस्याएं क्षेत्रों के बीच समानताएं दर्शाती है । क्षेत्रों की प्रतिकूल स्थित मानसून आकर्षित करने में बाधक होती है और इनमें वर्षा की कमी होती है । उदाहरणार्थ, राजस्थान में जैसलमेर जिले,

आन्ध्र प्रदेश में अनन्तपुर जिले, महाराष्ट्र में अहमदनगर जिले, और तिमलनाडू में रामनाथापुरम में बहुत कम वर्षा होती है । क्षेत्रों में होने वाली वर्षा के आधार पर उनका वर्गीकरण सूखे क्षेत्रों में जहां वार्षिक वर्षा 375 मिली मीटर तक होती है, और अर्ध शुष्क क्षेत्रों में जहां वार्षिक वर्षा 375 से 750 मिलीमीटर होती है, में किया जाता है ।

सूखे की स्थिति समय के साथ विकसित होती है जब एक क्षेत्र में मिट्टी की नमी और वाष्पीकरण के बीच गम्भीर असंतुलन पैदा होता है । वर्षा, तापक्रम, हवा, वाष्पीकरण मिट्टी की विशेषता व दशा, और फसल, विकास को प्रभावित करती है । इन क्षेत्रों में फसल स्वरूप, प्रतिबंधित होता है, प्रति हेक्टेअर उपज कम होती है उत्पादन व उत्पादकता निम्न रहती है, और कृषि अस्थिर होती है ।

एक क्षेत्र कीं प्रतिकूल जलवायु अवस्थाएं उस क्षेत्र की कृषि व उद्योग के विकास को बाधित करती है इन क्षेत्रों में जमीन के अन्दर जल स्त्रोतों के समाप्त होने से इन क्षेत्रों में चारे की कमी हो जाती है, जो डेयरी व भेड़ विकास क्रियाओं को प्रभावित करती है। कृषि व इससे सम्बन्धित क्रियाओं की निम्न स्थिति का परिणाम निम्न प्रति व्यक्ति आय व निम्न क्षेत्रीय आय होता है। क्षेत्रों के बीच इन विषमताओं को दूर करने के लिये कई क्षेत्र विशिष्ट व क्षेत्र लाभोंन्मुखी कार्यक्रम क्रियान्वित किये गये हैं। हाल ही में इन कार्यक्रमों से एक साथ लाभ उठाने के लिये इन सभी कार्यक्रमों के बीच समन्वय स्थापित करने के प्रयास किये गये थे। वाटरशैड विकास के द्वारा विशिष्ट क्षेत्रों में कृषि से सम्बन्धित सभी कार्यक्रमों के बीच समन्वय करना देश के क्षेत्रों के विकास की दिशा में एक कदम है।

29.5 नदी घाटी परियोजनाएं

आर्थिक विकास के स्तर में क्षेत्रीय विषमताओं में सुधार क्रमानुसार प्रक्रिया है, और यह उन क्षेत्रों में प्रारम्भ हु ई थी जिनमें विस्तार के लिये संभाव्य साधन उपलब्ध है, मगर जिनका दोहन नहीं किया जा सका है । अधिकांश स्थितियों में इसका अर्थ कृषि—विकास के लिये सिंचाई सुविधाओं का विस्तार व औद्योगिक विकास के लिये ऊर्जा व यातायात सुविधाओं का पर्याप्त प्रावधान करना है। इसके लिये एक बड़ी संख्या में सिंचाई व ऊर्जा परियोजनाएं सारे देश में स्थापित की जाती है । इनमें सर्वाधिक महत्व की नदी घाटी परियोजनाएं व बहु—उद्देशीय परियोजनाए है । ये उन क्षेत्रों में स्थित है जिनमें जन शक्ति व कच्चे माल के रूप में काफी साधन पाये जाते है । इन क्षेत्रों के भविष्य में विकास केन्द्रों के रूप में उभारने की संभावना होती है ।

नदी—घाटी परियोजनाओं व कार्यक्रमों का प्रतिपादन सभी राज्यों में कुछ क्षेत्रों को गहन विकास के अन्तर्गत लाना है । कृषि में अतिरिक्त उत्पादन इन कार्यक्रमों का उदेश्य है, और सिचाई सुविधाओं के कारण इनसे काफी परिणाम प्राप्त करने के अतिरिक्त प्रयास किये जाते है। इन कार्यक्रमों कों नई विधियों, प्रणालियों और काफी मात्रा में प्रयोगों का समर्थन होता है । जिन क्षेत्रों में नदी—घाटी परियोजनाओं के लिये अनुक्लता उपयुक्त नहीं है, वहां एक बड़े पैमाने पर लघु सिंचाई परियोजनाओं जैसे तालाब, कुएँ, नहरे और जहां भी संभव है, वहां जलकुप व लिफ्ट सिंचाई के विकास के लिये प्रबन्ध किये गये है ।

विकास के लाभ देश के प्रत्येक भाग में विभिन्न परियोजनाओं के द्वारा पहुं चाये जाते हैं । नदी घाटी परियोजनाऐ बहुत से राज्यों की योजनाओं के सर्वाधिक महत्व के भाग होते हैं और बहु उद्देशीय परियोजनाओं जैसे हीराकूंड, कोसी, चम्बल, रिहन्द, दामोदर घाटी, भाकरा नंगल, कोयना व नागार्जुन सागर आदि में भारी विनियोग किये गये है। ये व अन्य परियोजनाएं देश के विशाल क्षेत्रों के लिये आवश्यक थी, जिनमें से कुछ में कमियाँ या बेरोजगारी या जो अन्यथा निर्धनता पूर्वक विकसित थीं । कृषि विकास, शिक्षा व स्वास्थ्य सेवाओं के कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से सुदूर क्षेत्रों मे भी विकास के लाभ पहुंचाये गये है । कम विकसित क्षेत्रों, जैसे विदर्भ, मारथवाड़ा व उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में अतिरिक्त कार्यक्रम अपनाये गये है । इनमें बहु उद्देशीय विकास खण्ड और विनर्तित (विसकनेवाली) खेती की प्रणाली में सुधार के प्रयास शामिल है ।

नदी घाटी परियोजनाएं क्षेत्रीय विकास की केन्द्र बिन्दु होती है । यदि कुछ उनसे सम्बन्धिन व पूरक कार्यक्रम अपनाये जायें तो इनका लाभ अधिकांशतः उसी क्षेत्र की जनसंख्या को मिलता है जहां वे स्थित होते है । इसिलये प्रत्येक बड़ी परियोजना के आयोजन की एक आवश्यक विशेषता के रूप में उन्हें सम्पूर्ण क्षेत्र के समन्वित विकास के लिये केन्द्र बिन्दु मानते हैं । उदाहरणार्थ नवीन सिंचाई परियोजनाओं के इर्द गिर्द बहुत सी योजनाएं प्रारम्भ की जाती हैं, जिनका उद्देश्य सुधरी हुई कृषि, उद्यान विद्या, बाजार केन्द्रों व उनत प्रक्रिया और अन्य उद्योगों का विकास करना है ।

नदी घाटी परियोजनाओं से निरन्तर लाभ प्राप्त करने के लिये निदयों के जल पोषक क्षेत्रों का वनीकरण एवं भूमि उपयोग से सम्बन्धित उपाय आवश्यक है । ये कदम नदी घाटी परियोजनाओं के भंडारण जलाधार के जीवन को दीर्घ कालिक करने में, छोटे सिंचाई तालाबों की प्रभावपूर्ण कार्य प्रणाली, बाढ़ों को कम करने, भू—स्खलन को रोकने और इमारती लकड़ी व ईधन की पूर्ति बढ़ाने में सहायक होतें है । नदी घाटी परियोजनाओं के जल पोषक क्षेत्रों में भू—संरक्षण के उपाय भी कृषि के लिये भारी महत्व के होते है ।

29.6 वाटर शैड प्रबंधन कार्यक्रम

जैसे—जैसे आर्थिक विकास होता हैं और नदी घाटी परियोजनाएं व अन्य परियोजनाएं प्रारम्भ की जाती है तो वाटरशैड वेल के अधीन साधनों की संरक्षण प्रक्रिया, विकास व प्रबंधन को काफी महत्व दिया जाता है । वाटरशैड प्रबंधन कार्यक्रम प्रत्येक गांव के 500 हैक्टेअर क्षेत्र में क्रियान्वित किया जाता हैं । कृषि साधनों के संतुलित विकास के लिये आवश्यक है कि जन भागीदारी के आधार पर वृहद स्तर पर भू—संरक्षण व सूखी खेती के कार्य आरम्भ किये जायें पर्वतीय परिधि रेखा बांध (Contour bunding) के अलावा जिन कार्यक्रमों पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है, वे वर्षा के जल का संरक्षण, बेकार घास का नियंत्रण, पटीनुमा खेनी (फलस) और हरी खाद सहित जैविक खाद का समझदारी से उपयोग आदि है ।

वाटरशैड विकास कार्यक्रम भारी विनियोग के कारण देश के सूखा व अकाल संभावित जिलों के एक बड़ी संख्या के गांवों में फैले होंगे। सरकारी विभागों के द्वारा वाटरशैड कार्यक्रमों का क्रियान्वयन साथ ही गैर—सरकारी संस्थाओं, अर्थ—सरकारी संस्थाओं व निजी उधमों से भी सहायता प्राप्त करता है जो इसके पूरक के रूप में कार्य करते है । जिला परिषद-जिला ग्रामीण विकास ऐजेन्सियाँ भी जैसी भी स्थिति हो जिला स्तर पर इन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिये उत्तरदायी होती है । वाटरशैड कार्यक्रमों का उद्देश्य, ग्रामीण समुदाय का विकास करना है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वाटरशैड पर निर्भर है । इस उद्देश्य की प्राप्ति वाटरशैड के प्राकृतिक साधनों जैसे भूमि, जल, पौध संपदा के ईष्टतम उपयोग से हो सकती है, जो सूखे के प्रतिकूल प्रभावों को दूर करेगी और भविष्य के प्राकृतिक वातावरण (Ecological) में गिरावट व अन्य आर्थिक साधनों का विकास करना भी है ताकि बचत व आय वृद्धिजनितक्रियाओं को प्रोत्साहित किया जा सके ।

सूखा संभावित क्षेत्रकीय कार्यक्रम व मरु विकास कार्यक्रमों ने सन 1987 में वाटरशैड दिष्टिकोण अपनाया और सन 1989 में समिन्वित वाटरशैड विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया था। वर्तमान में क्षेत्र विशिष्ट व क्षेत्र लाभोमुखी कार्यक्रम वाटरशैड परियोजनाओं के अन्तर्गत आते है। दूसरे शब्दों में कृषि विकास क्रियाएं जैसे भू—संरक्षण, अवरोधक बाँध, छोटे सिंचाई कार्य, शुष्क भूमि खेती क्रियाएं, वनीकरण योजनाएं व लाभोमुखी संबंधित क्रियाएं जैसे डेयरी व भेड विकास क्रियाओं सिहत पशुपालन क्रियाओं को क्षेत्र की वाटरशैड सीमा में प्रोत्साहित किया जाता है।

वाटरशैड विकास योजना क्षेत्र की सिंचाई की समस्याओं को ध्यान में रखती है, जैसे सामान्य संसाधन, आधारभूत संरचनात्मक विनियोग जैसे अनाज काटने की व संग्रहण (Harvesting) प्रणालियाँ, एवं कार्य सम्बन्धी क्रियाओं का समग्र (व्यापक) प्रबंधन आदि । यह योजना मापने योग्य कार्य जैसे मैदानी बांधों की मिट्टी का कार्य नाला बांध परिचालन, तालाब अवरोधक बांध, विभिन्न प्रकार के वृक्षों सहित और अधिक भूमि को स्थायी तौर पर इसके अन्तिगत लाने के लिये पौघरौपड कार्यक्रम, भूमि उपयोग का मापने योग्य मिश्रण (मिक्स) जो न्यूज भूमि व जल संसाधनों का ईष्टतम सुस्थिर स्तरों तक उपयोग करता हो ।

29.7 सारांश

उपलब्ध साधनों के अधीन क्षेत्रीय विषमता कम करने के लिये देश के विभिन्न भागों में संतुलित विकास के लिये प्रत्येक संभव प्रयास किया जाना चाहिए । दूसरे शब्दों में एक क्षेत्र में इन साधनों को उसी क्षेत्र में उपयोगीकरण के लिये तथा क्षेत्रों के बीच इनके स्थानान्तरण के लिये एक सर्वसम्मत प्रयास किया जाना आवश्यक है । इसके लिये एक विशेष उद्देश्य से नियोजन जो एक क्षेत्र के विकास के लिये कार्यक्रमों का पैकेज दे, भारी महत्व का हो सकता है। क्षेत्रों का अभिन्नीकरण उनके विशेष साधनों, समस्याओं व आवश्यकताओं के आधार पर हो सकता है। स्थानीय वातावरण की प्रकृति व आयाम क्षेत्रीय विकास की योजनाओं की संरचना व दिशा निर्धारित करते हैं।

उपलब्ध व अदोहित स्थानीय साधनों का उपयोग चालू मांग की पूर्ति के लिये उत्पादकता से करना होता है, और भविष्य की बढ़ी हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उन्हें रिक्षित भी रखा जाता है। वह साधन विकास की योजनाओं की आवश्यकता को महत्व देता है। इन योजनाओं में साधनों के स्थानान्तरण से संबंधित निर्णय भी चिन्हित होंने चाहिए, जिन्हें

क्षेत्रों के तीव्र विकास के उद्देश्य की क्षेत्रीय योजनाओं के प्रभावी समन्वय से प्राप्त किया जा सकता है। सामाजिक समस्याओं को स्थानीय स्तर पर संयोजित किया जाता है और विकास योजनाएं व नीतियां भी उसी स्तर पर कार्यशील होती हैं। क्षेत्रीय दृष्टिकोण विभिन्न क्षेत्रों की विशिष्ट समस्याओं के अनुकूल नियोजन अपनाना सुविधाजनक बनाता है। कृषि एवं सिचाई सुविधाओं वाले क्षेत्रों की सीमा का निर्धारण किया जाता है और नदी—घाटी परियोजनाओं व बहु उद्देशीय परियोजनाओं के द्वारा इन क्षेत्रों के नियोजित विकास के प्रयास किये जाते है। कृषि में अतिरिक्त उत्पादन इन परियोजनाओं का उद्देश्य होता है। नदी घाटी परियोजनाएं विकास के केन्द्र बिन्दु की तरह कार्य करती है, और इन परियोजनाओं के लाभ अधिकांशतः उस जनसंख्या को प्राप्त होते है जिनमें वे स्थित होती है, जहां ये स्थापित होती है। वे लघु सिंचाई तालाबों के प्रभावी कार्यान्वयन बाढ़ों का प्रभाव कम करने, भू क्षरण को रोकने व भूमि की उर्वरता मे सुधार लाने में सहायक होते है।

प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों के आधार पर क्षेत्र अभित्रित किए जाते हैं जहां वर्षा कम होती है और जल संरक्षण संसाधन न्यून है । इन क्षेत्रों में सुस्थिर कृषि क्रियाओं के लिये वाटरशैड प्रबंधन कार्यक्रम क्रियान्वित किये जाते हैं, इनमें कई प्रकार के कार्य शामिल होते हैं जैसे भू—संरक्षण, अवरोधक बांध, वर्षा जल सुरक्षा कार्य, लघु स्त्रोत जैसे तालाबों व बांधों के रूप में सिंचाई के साधनों का विकास आदि । इसके अतिरिक्त रोजगार के अवसर एवं आय अर्जन के लिये कई लाभोन्मुखी योजनाएं संबन्धित क्रियाओं जैसे, डेयरी व भेड विकास के रूप में अपनायी जाती है । यह सभी कदम देश के विभिन्न क्षेत्रों के बीच विषमताएं कम करने में सहायक होते है ।

29.8 निबन्धात्मक प्रश्न

- 1. एक विकासशील अर्थव्यवस्था में साधन विकास की योजनाएं क्यों आवश्यक होती है?
- 2. संतुलित क्षेत्रीय विकास की योजनाओं को सुदृढ़ बनाने के विशिष्ट प्रयासों की रूपरेखा दीजिये।
- 3. आय विकास की योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिये क्षेत्रों को किस प्रकार अभिन्नित करते हो ?
- 4. क्षेत्रीय विकास की योजनाओं के स्वरूप के लिये कृषि—जलवायु संबंधी अवस्थाओं की भूमिका का परीक्षण कीजिये।
- "नदी घाटी परियोजनाएं जन जल संपन्न व संभाव्य क्षेत्रों के विकास के साधन है।"
 समालोचना कीजिये।
- 6. सूखा व अकाल क्षेत्रों में विकास प्रोत्साहित करने में वाटरशैड विकास योजनाओं के प्रभाव का मूल्यांकन कीजिये।

29.9 क्छ उपयोगी प्स्तकें

- 1. Mahesh Chand and V.K Puri: Regional Planning in India
- 2. Hirschman, A.O.: The Stretage of Economic Development
- 3. रमेश चन्द्र बंसल : भारत का भूगोल

4. T.C. Sharma and O. Coutinho: Economic and Commercial Geography of India

इकाई 30

जिला स्तर का विकेन्द्रित नियोजन

- 30.0 उद्देश्य
- 30.1 प्रस्तावना
- 30.2 परिभाषा
- 30.3 जिला नियोजन:
- 30.4 जिला नियोजन तथा growth foci पंचायत राज
- 30.5 जिला नियोजन व परियोजना नियोजन नगर नियोजन
- 30.6 सारांश
- 30.7 शब्दावली
- 30.8 क्छ उपयोगी प्स्तकें

30.0 उद्देश्य

राष्ट्रीय नियोजन "ऊपर से नीचे की ओर" का नियोजन होता है इसमें यह विश्वास निहित रहता है कि बड़े कार्य, बड़े निवेश व बड़ी परियोजनाओं के सुप्रंभाव जब समूर्ण देश को मिलते है तो नीचे तक भी जाते है (percolation effect) परन्तु जब भारत में गरीबी व बेरोजगारी बढ़ती रही व ग्रामीण विकास, स्थानीय जरुरतों के अनुसार नहीं हुआ तो "नीचे से ऊपर की ओर" नियोजन की जरुरत को माना। इस अध्याय में हम जिला नियोजन का अर्थ, उसका राष्ट्रीय, राज्यीय, अंचलक्षेत्रीय व बहु स्तरीय नियोजन से समन्वय का अध्ययन करेंगे।

इसके अतिरिक्त उसके लिए आवश्यक कदम उसका पंचायत राज से समायोजन उसके उपयुक्त परियोजना नियोजन उसके अन्तर्गत छोटे नगरों का नियोजन व सीमायें अध्ययन करेंगे:

30.1 प्रस्तावना

जिला नियोजन नया नहीं है वह चर्चा/अध्यंयन का विषय इसलिए है कि क अभी भी Pro-to-type या वांछित रूप में नहीं है ।

द्वितीय योजना में ही "ब्लाक डेवेलणेन्ट आफीसर्स नियुक्त हुए थे तथा उसके साथ-साथ "एफ्लेबान आफिसर्स" भी नियुक्त हुए थे 1952 का कम्यूनिटी डेवेलप्मेंट कार्यक्रम जिला विकासोन्मुख था ।

"समस्या यह है कि राज्यीय योजना को जिलों में तोइते रहे है ऊपर की योजना जिलों में टूटती है जिलों की योजना बन कर राज्य की योजना नहीं बनती " "दूसरी समस्या है साधनों की साधन राष्ट्र से, व राज्य से जिले में आते हैं अत: उनकी योजनाओं को पूरा करना ही जिला नियोजन का दायित्व बनता है। "तीसरी समस्या यह है कि जिला स्तर पर नियोजक नहीं है वे साधन नहीं जुटा सकते तथा लाभ लागत अनुमान या आदान—प्रदान सम्बन्ध नहीं समझते।

30.2 परिभाषा

जिला नियोजन Multi–Level Planning के जिला नियोजन के अनेक स्तर होते हैं तदनुसार नियोजन तब होता है परन्तु सभी स्तरों (Spatial levels)तथा क्षेत्रों के नियोजन में समन्वय व सहयोग होता है प्रतियोगिता नहीं (Territorial and sectoral planning criss—cross in intergrated) अंचल क्षेत्रीय नियोजन (regional planning) उस समय Multi–level बहु स्तरीय बनता है जब उसमें समन्वय हो निम्न स्तरीय नियोजन के लक्ष्य राष्ट्रव्यापी नहीं होते अगर एक बहुत बड़ी सिंचाई—बाँध योजना होती है तो वह होगी तो किसी जिले में, रेलवे प्रणाली जिला में निकलती है परन्तु वे जिला नियोजन के भाग नहीं होते । Multi level नियोजन में स्वतन्त्रता होती है अलगाव ही राष्ट्र के अन्दर राष्ट्र नहीं बन सकते है क्यूँकि खड़ी (vertical) तथा आड़ी (horizontal) कड़ियाँ (linkages) होती हैं । परन्तु जिला स्तर पर autonomy व autarky (स्वायतता व पूर्ण आत्मनिर्भरता कि बाहर से व्यापार ही न हो) नहीं होती ।

जिला नियोजन में जिले के संसाधनों तथा जिले की जनशक्ति के अनुकूलतम प्रयोग के प्रमुख उद्देश्य रहते हैं । जिला नियोजन में न्यूनतम आवश्यकता पूर्ति तथा गरीबी निवारण की location specific नीतियाँ लागू करना होता है ।

"District Planning is not single activity planning; it Is multi-department and all activety planning. How-Ever, it will not be a bad idea if in certain districts at solves on problem completely in five years and makes that districe cynosure of all eyes."

जिला नियोजन एक गतिविधि कार्य सम्पादन का नियोजन नहीं है, यह मानते है वह बहु—विभागीय व बहु गतिविधियों का नियोजन है । तजुर्बे के आधार पर अगर कोई एक समस्या का पूर्ण निराकरण पाँच वर्षों में करता है कि सभी की नजरें उस जिले की ओर उठें, तो यह कोई गलत विचार नहीं होगा कुछ अति साफ—स्थरे नियोजित गांव व कस्बे इसमें हो सकते है ।

अपने आप ये छोटे कस्बे व छोटे शहर गांवों के लिए विकास के modal points बन जायेंगे । संसाधनों का प्रश्न बड़ा हैं केन्द्रीय व राज्यीय नियोजन का जो भाग जिले को मिल रहा है वह प्रयोग करने के बाद स्व—साधन तो मात्र एक कार्य के लिए जुटाये जा सकते हों, बशर्ते कि फल प्रत्यक्ष रूप से सामने हो । सभी विभागों तथा अस्थायी कार्यक्रमों का धन जनता—जनप्रतिनिधि व सर्वोच्च व्यक्तियों की स्वीकृति से ही यह सम्भव है यह चिन्तन अलग है परन्तु अगर सभी लोग एक सा सोचें तो समझो कोई नहीं सोच रहा है एक सा सोचने के लिए दूसरा व्यक्ति गैर जरुरी है कहीं तो विलग कार्य करें।

इसके स्तर हैं जिला नियोजन कमेटी, ब्लॉक नियोजन कमेटी, ग्राम पंचायतें जो 20–30 गाँवों का प्रतिनिधित्व करें । हितग्राही 1. कृषक 2. छोटे कृषक 3. सीमान्त कृषक 4. हु नरमंद 5. भूमिहीन श्रमिक 6. दवारक श्रमिक 8. आदिवासी 9. पिछडे वर्ग हरिजन 10. सभी वर्गी के गरीब। सेल 1. कृषि 2. हार्टिकलचर 3. मवेशीपालन छोटे 5. क्टीर उद्योग 6. सिंचाई 4. उद्योग 8. शिक्षा 9. न्यूनतम 7. स्वास्थ्य

10. प्रोजेक्ट

फिसकल बेस साधन

सब कुछ दान व अनुदान पर नहीं चल सकता, स्वसाधन महत्वपूर्ण है वे सभी अतिरिक्त वास्तविक उत्पादन व उत्पादकता से आयेंगे विकेद्रीकरण की मांग व्यय में और आय की मांग केन्द्र से यह नहीं चलेगा । वह राजनीति जिसमें विकास का श्रेय स्वयं लें तथा परेशानी का जिम्मेदार केन्द्र को माने ठीक नहीं।

आवश्यकताएं

की समय सीमायें

डेरा बेस तथा कार्यक्रम आकडों के आधार पर भौतिक व मौलिक लक्ष्यों को समयबद्ध रूप से प्राप्त करना होगा अभी जिला राजनीतिज्ञ 50 साल में मात्र पीने के पानी का इन्तजाम नहीं कर पायें।

30.3 जिला नियोजन व विकेन्द्रीकृत नियोजन: जूरुरतें /कदम

विकेन्द्रीकृत नियोजन इसलिए जरुरी होता है कि केन्द्रीय नियोजन में

- (i) आंचलिक संसाधनों का ज्ञान नहीं होता
- (ii) आंचलिक गरीबों का निवारण नही होता तथा
- (iii) आंचलिक समस्याओं का निवारण नहीं होता तथा
- (iv) आंचलिक लोगों का सहयोग बड़ी योजनाओं में संभव नहीं होता, तथा बड़ी योजनाओं के लाभ छोटे लोगों तक नही पहुंचते।

उपर्युक्त के लिए अत:

(i) संसाधन सूचि Resource inventory बनानी चाहिए संसाधन तो हर जिले में होते हैं, खनिज का ही फर्क होता है कुछ जिलों में वन नहीं होते, परन्तु ज्यादातर में होते हैं । इन संसाधनों के भंडारों की पहले estimate या गणना करनी चाहिए फिर उनके अनुकूलतम दोहन की दर निकालनी चाहिए । इसके पश्चात इन्हें फिर से पैदा करने जैसे वनोपज के बारे में नियोजन होना चाहिए खनिज के बारे में तो यह नहीं हो सकता, परन्त् खनिज से पनपे wastelands बर्बाद भूमि को पूर्नस्थापित किया जाये। जर्मनी में इस तरह की भूमि में 173 भाग में पानी संचय कर झीलें व तालाब बनाते है; 1/3 में वृक्ष लगाते है तथा 1/3 भाग में मिट्टी डाल कर कृषि करते हैं । यह भाग बिखरे बिखरों में होते है, एक जगह

नहीं, परन्तु अनुपात 1/3 : 1/3 का बनाने का प्रयत्न रहता है । संसाधन सूचि में कृषि योग्य भूमि का फसलवार आँकलन उपयुक्तता के लिए होता है ।

इसी तरह सें पानी का गिरना, उसके बहाव की मात्रा, उसके संचय की सम्भावना, उसके जमीन के अन्दर की मालायें आदि का भी आकलन करते है ।

सभी संसाधनों की खोज जारी रहती है जिले वार, अंचल क्षेत्रवार जो संसाधन सूचियाँ बनायी जायें या जो बनती हैं उनसे मात्र जिला, नियोजन नहीं होता राज्य व देश के नियोजन में इन्हीं के जोड़ का प्रयोग होता है।

मानव संसाधन बेलेन्स शीट

यह सूचि अभी बनती नहीं है पर बनाई जानी चाहिए, व्यक्तियों की योग्यता / हुनर के अनुसार उन कालमों के विरुद्ध उनके रोजगार/व्यवसाय के स्तर तथा आय लिख सकते है इससे हम को mismatch पता चलता है अगर M.Sc.Chemistry बस चलाने का ड्राईवर है तो mismatch) तो है

सोवियत संघ में यह होता था । जिस हुनर के जितने व्यक्ति चाहिए वैसे ही पहले से तैयार करते थे गैर जरुरी शिक्षा व ट्रेनिग नहीं; तथा कोई व्यक्ति बेरोजगार नहीं वहाँ पर वोडका की शराब खोरी ने उत्पादन घटाया और युद्ध का साम्यवाद फेल हो गया ।

अतः सूचियों रुक्ष रूप में बनायी जा सकती है

ये लिंग–आयु के अनुसार बनती है इन्हें बाद में region, sectors, activities, functions तथा occupations के अनुसार जिला, वृहद अंचल क्षेत्र, राज्य व देश के लिए compile कर लेते हैं या जोड़ लेते हैं ये तालिकायें criss–cross करती है अन्ततः जोड़ बराबर होते है ।

Prime-moving activities अग्रगामी गतिविधियों की पहचान

हर जिले में कितपय अग्रगामी गितविधियाँ पता लगाई जा सकती हैं कही गन्ना उगाना व शक्कर व गुड़ बनाना, कहीं जूट उगाना तथा तत्सम्बन्धी वस्तुएं बनाना, कहीं जड़ी–बूटियाँ उगाना, कहीं फल वृक्ष लगाना, कहीं रेशम उद्योग पनपाना, कहीं बहू मूल्य पत्थर निकालना व उन्हें तराशना आदि आवास सुधार तहत habitat improvement के मॉडल ले सकते हैं हर जिले का एक बड़ा गाँव अगर पक्के मकानों का हो, जिसमें अन्दरुनी शौचालय सांकिपट या sewerage के हों, जहाँ पक्की गिलयाँ व गाँव के सामने की सड़क बगैर गढ़े की हो, जहाँ मवेशी अलग बंधे जहाँ सिंचाई उन्नत हो जहाँ स्कूल तथा प्राइमरी हेल्थ सेंटर के भवन हों आदि बनाया जा सकता है।

ऐसे आदर्श गांव ग्रामीण स्वयं, सरकारी मदद से बना सकते हैं Denmark ने DANIDA प्रोजेक्ट में ऐसी कल्पना के गांव विकसित करने में मदद दी। चीन में ऐसा किया गया ये गांव सभी के लिए प्रेरणा व नकल के स्त्रोत हो सकते है इनके निर्माण में रोजगार व आय सृजन भी होता है इन्हें आस पास में मिलने वाली सामग्री से ही बनाना चाहिए

Infrastructure development बिजली, पानी, संचार, बैंकिंग, यातायात, परिवहन, स्वास्थ्य व शिक्षा की सुविधायें तो स्वयं आती हैं । जरुरत इस बात की रहती है कि वे जिला योजनाओं के अनुरुप हों तथा इतनी हों कि लोगों को प्रेरणा मिले व सहू लियत हो कि वे उत्पादक निवेष बढाये।

जिला नियोजन के लक्ष्य

देश के नियोजन की भांति नहीं हो सकते -

- 1. यह जिले को आत्मिनिर्भर इस तरह बनाने का लक्ष्य नहीं रख सकता कि वह आत्मिनिर्भर हो जाये परन्तु लक्ष्य यह हो सकता है कि जिला जरुरत का अनाज उगाये व बहुत कुछ आधिक्य के रुप में उगाये तभी तो उसे बेचकर गैर—अनाज की जरुरतों के लिए क्रय शक्ति प्राप्त कर सकते है।
- 2. District planning is very specific to desisious about locational of non-agricultural facilities. कृषि के अतिरिक्त उद्योगों व सेवाओं की स्थापना के सम्बन्ध में यह नियोजनअति महत्वपूर्ण है।
- 3. एक जिला आदर्श मानकर, उसकी बराबरी में आना एक लक्ष्य हो सकता है । शुरु में यह जिला आसपास का हो सकता है, बाद में आदर्श जिला राज्य का हो सकता है । अन्तत : देश का सर्वोत्तम हो सकता है । इस प्रकार के नियोजन से सभी जिले समान तो नहीं हो सकते परन्तु अन्तर कम हो सकते है फिर संसाधनों से स्थापित अन्तर तो रहेंगे ही ।
- 4. जिले में कृषि आदान का उत्पन्न करना (सिंचाई सुविधायें बढ़ाना, कम्पोस्ट खाद बनाना, उन्नत बीज स्वयं उगाना बाइ के लिए कांटेदार झाड़ियों का प्रयोग करना) एक प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए ।
- 5. साख, उर्वरक, मशीनें, तकनीकि ज्ञान व बाजार सुविधायें विकसित करना इसके बाद का लक्ष्य होना चाहिए ।
- 6. जिले में शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, परिवहन व संचार की क्या सेवायें राज्य स्तर से लेनी है इनके स्थान आंकना व लेना इसके बाद का लक्ष्य होना चाहिए।
- 7. जो कार्य जिला नियोजक ऊपर से सुविधायें व धन लेने में करते है वहीं उन्हें ब्लाक स्तर के तन्त्र को देना चाहिए । उन्हे तैयार करना चाहिए । गांवों ब्लाक जिला इन सभी में अगली–पिछली विकास कड़ियाँ सृजन करनी होंगी । ग्रामीण व शहरी नियोजन में समन्वय भी रखना होगा ।
- 8. परियोजनायें जिले के संसाधनों, वातावरण के उपयुक्त व वित्तीय साधनों के अन्दर होनी चाहिए ।
- 9. एक अच्छी रिहायशी बस्ती व सुविधाओं सिहत ब्लाक स्तर के सभी कर्मचारियों को उपलब्ध रखने का लक्ष्य होना चाहिए ।
- 10. निम्न जिला स्तरीय नियोजन कमेटी बनाये रखने का लक्ष्य होना चाहिए।
 - 1. मंत्री/एम. एल .ए
 - 2. कलेक्टर

- 3. उपकलेक्टर
- 4. जिला कृषि अधिकारी
- 5. जिला स्वास्थ्य अधिकारी
- 6. कांलेज प्रिंसीपल
- 7. अर्थशास्त्र प्रोफेसर
- 8. जिला वन अधिकारी
- 9. जिला मतस्य अधिकारी
- 10. जिला मंत्री (सिंचाई, सड़क, भवन)
- 11. जिला शिक्षा अधिकारी
- 12. जिला पशु अधिकारी
- 13. नगर निगम अधिकारी
- 14. जिला पंचायत के लोग
- 15. सहकारिता प्रतिनिधि व अधिकारी
- 16. जिला बिजली अधिकारी
- 17. जिला उद्योग अधिकारी
- 18. जिला लीड बैंक अधिकारी
- 19. निजी क्षेत्र के उदयोगपति
- 20. अन्य

30.4 Growth foci के अनुसार जिला नियोजन तथा उन्हें विकसित भी करना

जिले के गांवों व कस्बों तथा बड़े शहरों में एक पद श्रेणी—श्रंखला होती है, जो छोटे व बड़े होने तथा केन्द्रीय व छोर के क्षेत्रों पर होने से सम्बन्धित है। इनकें बीच आर्थिक व्यापार व उत्पादन की कड़ियाँ बढ़ानी होती है।

- 1. हर 5–6 से लेकर 10 गांवों के एक गांव को केन्द्रीय ग्राम के रूप में विकसित करना चाहिए जहाँ हरे समय पहुँचा जा सके।
- एक 5000 से ऊपर के गाव/कस्बे को Service centre या सेवा केन्द्र के रूप में विकसित करें जो समान फासले से कम से कम सकल 20000 से 30000 की आबादी के चारों ओर के गांवों को सेवायें प्रदान करे ।

यहाँ बाजार, भंडारण तथा repairs (चीजों को सुधारने) की सुविधायें हों । यही पर बैकिंग, स्कूल, दवाई-इलाज, पोस्ट ऑफिस की सुविधायें भी हों । { तहसील-ब्लाक-मुख्यालय }

3. विकास केन्द्र

यहाँ पर Processing units होनी चाहिए, जैसे गल्ला क्रय केन्द्र और दाल मिल, चावल मिल, गना रस निकालने के केन्द्र, जिनिंग मिल आदि । यह जिला मुख्यालय कतिपय उद्योगों सहित अवश्य होना चाहिए, चाहे वह एक तेल मिल या कोई भी कृषि उत्पाद Processing units हो । जिला मुख्यालय के बाजार व प्रशासन तो होंगें ही । Growth point को अन्दरूनी क्षेत्र का पोषण करना चाहिए, शोषण नहीं और यह बात तब भी रहनी चाहिए जबिक Growth points उन्नत होकर Growth Centre बन जायें । यहाँ से गांव वाले विचार तथा विकास की चाह भी लेकर जायें, मात्र वस्तु व सेवा ही नहीं हर क्रिया में Field tested methodologies या अनुभव आधारित ब्यूह रचनायें व रीतियाँ दुहराना/कुछ बदलकर (replicate or adapt न कि adopt) लागू करना चाहिए । कृषि विकास तथा भूमि पर आधारित गतिविधियों को चलाना महत्वपूर्ण है परन्तु विकास प्रक्रिया उससे आगे जाती है ।

गरीबों का "सामान्यीकरण" सतत होता रहता है, जिला नियोजन को इस प्रक्रिया को रोकना है । अब चुिकं बाजार प्रक्रिया का प्रभाव प्रबल है अतंः बाजार में मांग व पूर्ति की स्थितियों से समन्वय करके कार्य करना चाहिए । यह बात फसल संरचना तथा कौशल की वस्तुओं के साथ विशिष्ट रूप से लागू होती है । Dantwala Committee ने लिखा था कि नियोजन के निवेशों से ग्रामीण विकास केन्द्र विकसित होने चाहिए । जिला नियोजन में साधनों का प्रयोग व उससे भी महत्वपूर्ण साधनों का विकास करना है । जिला नियोजन से नीचे नियोजन सम्भव नहीं यदयपि ब्लाक एक महत्वपूर्ण अंग बनता है ।

जिला स्तर का नियोजन द्वितीय योजना से ही नियोजन का अंग रहा है परन्तु वह इस रूप से उभर कर नहीं आया कि जिला नियोजन ग्रामीण विकास को ऊपर ले जाये। ऊपर से संयोग से उतरने वाले लाभों ने जरूर कुछ जिलों की काया पलट की है।

पंचायत व जिला नियोजन

पंचायत राज भी द्वितीय योजना से साथ है भले ही उसका पूनर्जागरण आद्यतन नजर आये । भारत में adhoc कार्यक्रमों को जिलों व ब्लाकों में विशेष रूप से चलाया गया (देखिए अलग पाठ में 54 कार्यक्रम), भारत की छठी योजना में जिला योजना पर यह लिखा

अभी जब प्लानिंग कमीशन राज्यों से जिला स्तर नियोजन के लिए कहता है तो राज्य हर कार्यक्रम को, बजट प्रावधानों को जिलेवार तोड़ देते हैं। योजना ऊपर से बनकर नीचे तोड़ कर बतलाते हैं, नीचे से बनाकर ऊपर नहीं जोड़ते। विभागीय कार्यक्रमों से ये जिले की योजनायें कोई जिला नियोजन नहीं। सभी कुछ टूटा—टूटा है, (It is a little more than a rather disgointed exercise in for mulating and implementing such schemes through a multiplicity of departments.)

The district plan should encompass the total activity in the district; plan and non-plan, a conventional distinction has no place in district planning and should vanish.

जिला नियोजन में जिले की योजना तथा योजनायें सभी विकास क्रियायें आनी चाहिए । अलग-अलग क्रियाओं में कोई भेद नहीं होना चाहिए । ऐसे समस्त भेदों को समाप्त करना चाहिए । हर जिले में कुछ तो जिला विशिष्ट होना चाहिए यह काफी नही; बहुत कुछ जिला विशिष्ट होना चाहिए ।

30.5 जिला नियोजन : बड़ी व छोटी परियोजनायें तथा उनके लाभ-लागत अनुमान

हम राष्ट्रीय व राज्यीय परियोजनाओं का यहाँ अध्ययन नहीं कर रहे है । ऐसी बड़ी योजना के प्रभाव देश व्यापी होते हैं । कोई बन्दरगाह, रेलवे लाइन, सिंचाई बांध, इस्पात का कारखाना किसी न किसी जिले में होता है परन्तु वह जिला नियोजन का भाग नहीं होता । हम जिला परियोजना उसे कहेंगे जो जिले से कच्चा माल व श्रमिक ले, जिसके उत्पाद जिले में उत्पादन दे व कुछ निर्यात से आय बढ़ाये ।

परियोजना वह अच्छी जो कम लागत में ज्यादा लाभ दे । कम से कम समय में लाभ देना शुरू कर दे (gestation period short) तथा जो प्रदूषण आदि जैसे दुष्प्रभावव न छोड़े । सभी में निम्न बातों को ध्यान में रखना होता है —

- (अ) विकास का अर्थशास्त्र भावी लाभों को discount करता है। रू. 110 का 1 वर्ष बाद का लाभ वर्तमान में 10% ब्याज दर पर आज के रू. 100 के बराबर है। दो वर्ष का 121 रू तीन का 133 रू. चार वर्ष का 146 रू. सभी आज के रू. 100 के बराबर है। अर्थात भावी लाभ इन मामलों से ऊँचे हों।
- (ब) आज का पर्यावरण अर्थशास्त्र वर्तमान को discount करता है, अर्थात आज अधिक विकास के लिए भविष्य के संसाधन न नष्ट हो जायें.।

UNO ने सिफारिश की कि जनकल्याण योजनाओं के लाभों को वहाँ लगाकर न आका जाये।

जिला नियोजन में नगरीय नियोजन का समावेश

बहु धा जिला नियोजन को कृषि नियोजन का ग्रामीण नियोजन समझा जाता है। जिला नियोजन में भी यह प्रयास किया जाना अनिवार्य है कि छोटे कस्बों की जिन्दगी कैसे उन्नत हो तािक वे बड़े शहरों व गांवों के बीच conduit का या मध्यस्त का कार्य करें। अभी ये कीचड़ भरे व गन्दे है जिनका core मध्य तो सम्भाला हुआ रहता है और Periphery या छोर के मोहल्ले गंदे रहते है। गरीबों के क्षेत्र आज भी जाित आधार पर है। सुअरों के बाड़े न होने से आज समस्त शहरों में इनका प्रकोप है। { देखिए नगर नियोजन पर पृथक पाठ-पेपर } नगर नियोजन प्लान तथा वास्तविक विकास अलग होते है। Social aspects are neglected in district or city / town planning. जिला नियोजन मे नगर नियोजन के सामाजिक पहलुओं का ध्यान रखा जाना चाहिए। गरीबों को मकान सस्ता पर यातायात महंगा पड़ता है क्योंकि वे

सम्पूर्ण C-B Analysis मय छाया मूल्यों के यहाँ नहीं लिखा है। कार्य स्थल पर दूर से आते है। आज जनसंख्या भार इतना है कि अगर रेलवे किसी एक जगह अपनी पटरियों के वासियों को "गोद लेकर" रिहायश सुधारें तो सारे गरीब अन्य स्थानों पर और पहुं चेगें। जिला नियोजन में कुछ pilot projects ऐसे होने चाहिए जो सफलता के द्रष्टान्त बने तथा जिन्हें अन्य नकल करें। EWS (economically weaker section) का जो IAY इन्द्रिरा आवास योजना कार्यक्रम बना है वह अगर एक जिले में सभी की समस्या हल कर दे तो अवश्य इसको लोग दुहरायेंगे। शासन की असफलतायें अब इस ओर इंगित करती है कि या तो शासकीय तब में आमूल परिवर्तन हो या N.G.Os. नान गवर्नमेंट आर्गेनाइजेशन रिहायश नियोजन को कही अपनायें।

30.6 सारांश

- जिला परियोजना व स्कीमों को समस्या निवारक होना चाहिए।
- उनकी समस्त लागतें, अवसर लागत सहित, न्यूनतम होनी चाहिए।
- वस्तु उत्पादन की किस्म में कमी नहीं होनी चाहिए, प्रति यूनिट लागतें कम होनी चाहिए।
- वस्तुएँ बाजार मूल्य व मांग को संतुष्ट करें।
- स्कीम/परियोजना जिले में Waterharvesting, फल उगाना, कृषिउत्पादन, पशुउत्पादन आदि सभी–कीं उत्पादकता बढायें।
- जिनसे व्यापार न करने की सेवायें सृजित हों वे अधिकतम सामाजिक लाभ दें, व नकल की प्रेरणा दें।
- परियोजनायें हानि में न चलें; नगदी की आवक ज्यादा रहे तथा रोजगार व आय का सृजन गुणक रूप से हो।
- आर्थिक रूप से सक्षम, दीर्धकाल तक चल सकने वाली तथा, दीर्धकालिक लाभ देने वाली स्कीमें नियोजन में रहें।
- तकनीकी-आर्थिक feasibility, रिपोर्ट बनाकर ही परियोजनायें शुरू हो ।
- परियोजनायें उत्पादन बढ़ायें परन्तु पिछड़े वर्गों, आदिवासियों व हरिजनों की भागीदारी बढ़ाकर असमानताओं पर प्रहार करें, उन्हें कम करें ।
- परियोजनाओं का monitoring तथा मूल्यांकन तथा सामाजिक "आहित" होना चाहिए ।
- भ्रष्टाचार झिरने पूरी तरह बन्द करने का इन्तजाम होना चाहिए ।
- आन्तरिक बचतों व पूंजी निर्माण तथा स्वस्फूर्त निवेश को बढ़ाने वाली परियोजनायें होनी चाहिए ।
- खड़ी व आड़ी आर्थिक गतिविधियाँ बढ़नी चाहिए ।
- गरीबी की रेखा के नीचे तथा महिलाओं व बच्चों के विशेष कार्यक्रम जिला नियोजन का
 Core होना चाहिए ।

30.7 शब्दावली

नियोजन : कम से कम साधन लगाकर अधिकतम लाभ प्राप्त करना, एक

समय

Planning : बद्ध कार्यक्रम के अन्तर्गत बाहु ल्य घटक का सघन प्रयोग कर

अन्तत : उत्पादन, उत्पादकता, रोजगार, आन्तरिक एवं बाहय

आय बढ़ाने –का योजनाबद्ध कार्यक्रम।

बहु स्तरीय नियोजन : केन्द्र, राज्य, वृहद अंचल क्षेत्र व जिला स्तरीय समविन्त परन्तु

कुछ

Multi-Level Planning : स्वास्थ्य नियोजन भी ।

अंचलक्षेत्रीय नियोजन : यह एक बड़े या मध्यम क्षेत्र का नियोजन हो सकता है जो

जरूरी नहीं

Regional planning : कि प्रशासनिक सीमाओं को माने जैसे कोयल बेल्ट का, बड़ी

सिंचाई योजना के कमान्ड क्षेत्र का, या वनों का नियोजन।

जिला नियोजन : मुख्य लक्ष्यः राज्यीय योजन से सभी जिलों की भागीदारी;

दूसरा

District planning : मुख्य जिले के साधनों व जरूरतों को देख कर समस्या उसूलन

तथा पिछड़ेपन को (backlog) पाटना या कम करना ।

विकेन्द्रित नियोजन : लक्ष्य व साधन विकेन्द्रित स्तर पर हों, परन्त् regions are

not Decentralised Planning nations within the

nation, अतः पूर्ण स्वायत्तता नही।

30.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1 भारत की पंचवर्षीय योजनायें

2 Sudip Mandal : District Planning.

3 O.S. Shrivastava: Economics of growth, Development and planning.

Yojna के विभिन्न अंक हमेशा हर वर्ष इस पर पेपर प्रकाशित करते रहे है । उनका सार भी इस इकाई में है ।

आप चाहें तो अपने जिले के संसाधनों व समस्याओं को ध्यान में रखकर कार्यक्रम बनाये । उनको एक समयकाल में करने का कार्यक्रमा/योजना बनायें । उनकी लागतें वर्तमान मूल्यों पर आंकने की कोशिश करें । कुछ सम्बंधित व्यक्तियों से interact करें । कतिपय व्यवहारिक अभ्यास भी लाभ दायक होगें ।

* आपको तो वैसे परीक्षा में अकादमिक academic उत्तर ही देना है । आप चाहें तो अपने जिले की योजना लेकर उसका परीक्षण व समालोचना कर सकते है। यें चीजें परीक्षा से परे की भी है ।

इकाई 31

भारत में क्षेत्रीय विकास योजनाएं

इकाई की रूपरेखा

- 31.0 उदेश्य
- 31.1 प्रस्तावना
- 31.2 सूखा आशंकित क्षेत्र-कार्यक्रम
 - 31.2.1 भूमिका
 - 31.2.2 कार्यक्रम का प्रारम्भ
 - 31.2.3 कार्यक्रम के उद्देश्य
 - 31.2.4 कार्यक्रम के विवरण
 - 31.2.5 कार्यक्रम की प्रगति
 - 31.2.6 कार्यक्रम का मूल्याचंकन
- 31.3 मरूस्थल विकास कार्यक्रम
 - 31.3.1 भूमिका
 - 31.3.2 कार्यक्रम का शुभारम्भ एवं इसके उद्देश्य
 - 31.3.3 कार्यक्रम का क्रियान्वयन
 - 31.3.4 कार्यक्रम की उपलब्धियाँ
 - 31.3.5 कार्यक्रम का मूल्यांकन
- 31.4 पर्वतीय क्षेत्र विकास योजनाएं
 - 31.4.1 भूमिका
 - 31.4.2 कार्यक्रम की रूपरेखा
 - 31.4.3 कार्यक्रम के उद्देश्य
 - 31.4.4 कार्यक्रम की व्यूह रचना
 - 31.4.5 कार्यक्रम की उपलब्धियाँ
 - 31.4.6 कार्यक्रम का मूल्यांकन
- 31.5 जनजाति क्षेत्रीय विकास योजनाएं
 - 31.5.1 भूमिका
 - 31.5.2 योजना की व्यूह रचना
 - 31.5.3 योजना का शुभारम्भ
 - 31.5.4 योजना का क्रियान्वयन
 - 31.5.5 योजना की उपलब्धियाँ
 - 31.5.6 योजना का मूल्यांकन
- 31.6 सारांश

- 31.7 शब्दावली
- 31.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

31.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य छात्रों को भारत में विशिष्ट क्षेत्रों के विकास के लिए जो विशेष योजनाएं पृथक—पृथक रूप से क्रियान्वित की जा रही है उनसे परिचित कराना है । इससे छात्रों को यह भली—भांति विदित हो जायेगा कि इन विशिष्ट क्षेत्रों के विकास के लिए भारत सरकार द्वारा क्या प्रयास किये जा रहे है तथा वे कहां तक सफल हुए है ।

31.1 प्रस्तावना

भारत में क्षेत्रीय विकास की जो विशेष योजनाएं प्रारम्भ की गई है उनमें प्रमुख योजनाएं सूखा आशंकित क्षेत्र, मरूस्थलीय क्षेत्र, पर्वतीय क्षेत्र एवं जनजाति क्षेत्र के विकास से सम्बन्धित है। इन क्षेत्रों से सम्बन्धित योजनाएं नियमानुसार है:

- 1. सूखा आशंकित क्षेत्र कार्यक्रम
- 2. मरूस्थल विकास कार्यक्रम
- 3. पर्वतीय क्षेत्र विकास योजनाएं
- 4. जनजाति क्षेत्रीय विकास योजनाएं

31.2 सूखा आशंकित क्षेत्र-कार्यक्रम (Drought prone Area programme)

31.2.1 भूमिका

भारत में वर्षा को "मानसून का जुआ" कहकर सम्बोधित किया गया है । इसका कारण यह है कि भारत में वर्षा अनिश्चित तथा अनियमित है । इससे देश का बहुत सा भौगोलिक क्षेत्र सूखे की चपेट में रहता है जिससे कृषि उत्पादन एवं पशुधन की हानि के साथ ही वहां के निवासियों को भीषण संकट का सामना करना पड़ता है । भारतीय सिंचाई आयोग 1972 ने सूखा के सम्बन्ध में निमांकित क्षेत्र एवं जनसंख्या को सूखाग्रस्त निरूपित किया था :

तालिका 31.1 भारत मे सूखाग्रस्त क्षेत्रफल एवं जनसंख्या

| | | ** | | |
|--------------|----------|--------------------|----------------------|---------------|
| राज्य | जिलों की | तहसीलों/ ताल्लुकों | भौगोलिक क्षेत्र (000 | जनसंख्या 1961 |
| | संख्या | की संख्या | हैक्टेयर्स) | (000 में) |
| आन्ध्रप्रदेश | 7 | 60 | 9700 | 9410 |
| गुजरात | 11 | 60 | 7070 | 5480 |
| हरियाणा | 3 | 6 | 810 | 1490 |
| मध्यप्रदेश | 9 | 24 | 4090 | 3070 |
| महाराष्ट्र | 9 | 45 | 6250 | 6930 |

| कर्नाटक | 12 | 88 | 10350 | 11580 |
|----------|----|-----|-------|-------|
| राजस्थान | 9 | 19 | 7480 | 2760 |
| तमिलनाडु | 7 | 24 | 3980 | 7360 |
| योग | 67 | 326 | 49730 | 48080 |

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत का लगभग 16 प्रतिशत क्षेत्रफल (अब इसे 20 प्रतिशत आका गया है) तथा 11 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या (अब इसे 12 प्रतिशत आकी गयी हैं) सूखे की चपेट में है।

वर्गीकरण की दृष्टि से सूखाग्रस्त क्षेत्र को निर्जल क्षेत्र, अर्द्ध—निर्जल क्षेत्र, शुद्ध—उपनम क्षेत्र तथा उपनय क्षेत्र में विभाजित किया जा सकता है। एक अनुमान के अनुसार देश में लगभग 79 प्रतिशत क्षेत्रफल (26 करोड़ हैक्टेयर) सूखाग्रस्त क्षेत्र है।

अकाल कीं विभीषिका से निपटने के लिंए सरकार को पर्याप्त व्यय करना पड़ता है। वनों को अंधा—धुंध कटाई तथा अत्यधिक चराई के कारण जहां एक ओर पर्यावरणीय प्रदूषण से भू—क्षरण हु आ है वही दूसरी और भूमि की उर्वरता में कमी आई है। ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण एवं भीषण स्थिति से निपटने के लिए सरकार ने सूखा आशंकित क्षेत्र कार्यक्रम की आधारशिला रखी है।

31.2.2 कार्यक्रम का प्रारम्भ

सूखा आशंकित क्षेत्र कार्यक्रम वर्ष 1973 से प्रारम्भ किया गया है। वर्षा का स्वरूप, अकाल का प्रभाव एवं सिंचाई व्यवस्था आदि को ध्यान में रखते हुए 13 राज्यों के 74 जिलों के 615 विकास खंडों को प्रारम्भिक रूप से सूखाग्रस्त क्षेत्र घोषित कर इस कार्यक्रम में सम्मिलित किया गया है। इन क्षेत्रों में हमारे देश की 12 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। इन क्षेत्रों में प्रमुखतः काली एवं लाल मिट्टी पायी जाती है जिसमें पोषक तत्वों का अभाव होता है। अधिकांश क्षेत्र पठारी होने से मिट्टी उथली होती है। काली मिट्टी के सूखने पर दरारें पड़ जाती हैं तथा लालु मिट्टी सुगमतापूर्वक बह जाती है। सूखे की सम्भावना वाले चुनिंदा क्षेत्रों में यह कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया था। इसका प्राथमिक ध्येय इन क्षेत्रों में भूमि, जल एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित विकास करके पर्यावरणीय संतुलन को बहाल करना है। कार्यक्रम हेतु वित्त की व्यवस्था केन्द्र व सम्बन्धित राज्य द्वारा 50 : 50 के अनुपात में की जाती है।

31.2.3 कार्यक्रम के उद्देश्य

इस कार्यक्रम के उद्देश्य नियमान्सार है:-

- (1) अकाल की गहनता को कम करके धीरे-धीरे समाप्त करने के प्रयास करना।
- (2) सूखाग्रस्त क्षेत्र में उपलब्ध समस्त संसाधनों जैसे भूमि, जल, पशुधन एव मानवीय संसाधनों का अनुकूतम प्रयोग करना।
- (3) ग्रामीण गरीबों को जौ कि सूखा से सबसे ज्यादा प्रभावित होते है उनके जीवन की दशाओं को सुधारना अर्थात् उनकी आय को स्थिर करना

- (4) पर्यावरण में संतुलन बनाये रखना जिस हेतु सामाजिक वानिकी, चरागाहों का विकास आदि के कार्य करना।
- (5) सूखे से पीड़ित लोगों के लिए सहायक उद्योग धन्धों का विकास, पशुपालन और दुग्धोपालन, आधारभूत संरचना का विकास, पीने के पानी की व्यवस्था—, ग्रामीण विद्तीकरण और ग्रामीण सड़कों के निर्माण जैसे कार्य प्रारंभ करना।
- (6) फसलों के प्रारूप की पुनर्सरचना तथा सस्य विज्ञान में परिवर्तन, एवं,
- (7) मिटटी तथा आर्द्रता—रक्षण के उपाय। उपरोक्त लक्ष्यों के संदर्भ में कार्यक्रम के तीन मुख्य अवयव इस भांति है:—
- (अ) भूमि विकास तथा भूमि को समतल बनाना।
- (ब) जल संचय और भंडारण के साधनों का निर्माण, सूखा अवरोधक बीज तथा उर्वरकों का प्रयोग और
- (स) विशिष्ट उपकरणों व तकनीकों का प्रयोग

31.2.4 कार्यक्रम का विवरण :

एक टास्क फोर्स सन 1980 में इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन के अध्ययन हेतु स्थापित की गयी थी। सन 1982 में इस टास्क फोर्स ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुए कहा कि इस कार्यक्रम का क्षेत्रफल बढ़ाया जाये तथा यह कार्यक्रम अधिक प्रभावी ढंग से कार्य करें। इस कार्यक्रम का मूलाधार सूखा आशंकित क्षेत्र में परिस्थितिकीय संतुलन (ecological balance) को नियमानुसार बनाये रखना है –

- (1) सिंचाई संसाधनों का विकास एवं प्रबंधन
- (2) भूमि एवं आर्द्रता का अनुरक्षण तथा वनारोपण के कार्यक्रम
- (3) फसली प्रारूप की पुनर्संरचना एवं चरागाहों का विकास
- (4) पश्पालन का विकास

इस कार्यक्रम की मूल व्यूह—रचना अच्छी वर्षा के काल में उपज को अधिकतम करना तथा वर्ग की आपर्याप्तता पर हानि को न्यूनतम करना है । इसे मिट्टी तथा आर्द्रता की अनुरक्षण निधियों को वैज्ञानिक आधार पर अपनाकर प्राप्त करना है तािक भूमि पर गिरने वाली प्रत्येक बूंद का प्रयोग हो सके । इस हेतु कम अविध में पक कर तैयार होने वाली फसलों तथा सूखा अवरोधक बीजों के प्रयोग को प्रोत्साहित किया जाता है तािक सूखे की स्थिति में हािन को कम से कम किया जा सके । इसमें किसानों को सहायक उद्योगों को अपनाने के लिए प्रेरित किया जाता है तािक किसानों को पूरक आय प्राप्त हो तथा कृषि पर उनकी निर्भरता को कम किया जा सके ।

किसानों को उनके उत्पादन की उनके दरवाजे पर ही अच्छी कीमतें दिलाने के लिए आने वाली सभी कठिनाइयों को दूर कर सहायक क्रियाओं को विकसित किया जाता है जैसे — प्रसाधन विपणन आदि । इसमें आधारभूत स्तरों पर योजनाएं बनाई जाती है तथा क्षेत्राधिकारियों को जलवायु की दशाओं के अनुकूल योजना बनाने के लिए प्रशिक्षित एवं प्रोत्साहित किया जाता

हैं । इस कार्यक्रम को एकीकृत भी किया गया है । प्रत्येक क्षेत्र—स्तर पर वित्तीय संस्थाओं के मध्य भी समन्वय स्थापित किया जाता है । इस अनूठे कार्यक्रम को प्रशिक्षण एवं व्यावहारिक अनुसंधान से भी जाड़ा गया है । जिला स्तर पर समन्वय के अतिरिक्त राज्य तथा केन्द्रीय स्तर पर भी विभिन्न विभागों के साथ प्रभावी समन्वय स्थापित किया जाता है ।

इस कार्यक्रम के लिए आयोजनों तथा प्रशिशण के संदर्भ में सूखा अवरोधक बीजों की उन्नत प्रजातियों, उपकरणों और तकनीकों को विशाल पैमाने पर संभव बनाने के लिए विस्तार सेवा, पूर्ति और सोपने की पर्याप्त व्यवस्था को क्रियान्वित किया जायेगा । फसलों के लिए पर्याप्त लाभकारी मूल्यों की पूर्व घोषणा, और उनके क्रय किये जाने की तथा ऋण वसूली संबंधी प्रबंधन को भी कार्यान्वित किया जायेगा । सूखाग्रस्त क्षेत्रों में रोजगार और आय बढ़ाने की दृष्टि से कुटीर और लघु उद्योगों को बढ़ावा दिया जायेगा । फलदार वृक्ष, पृष्पों के बगीचे, चरागाह आदि के वृहद कार्यक्रमों के द्वारा रोजगार प्रदान करने तथा पर्यावरण को सुधारों के कार्यक्रमों को भी प्राथमिकता दी जायेगी । सातवीं पंचवर्षीय योजना में सूक्ष्म जल शेड्स की नीति को पहले से ही क्रियान्वित किया जा चुका है ।

31.2.5 कार्यक्रम की प्रगति

वर्तमान में यह कार्यक्रम 13 राज्यों के 96 जिलों के अन्तर्गत आने वाले 627 ब्लाकों में चलाया जा रहा है तथा इसके अन्तर्गत कुल क्षेत्र 553 लख हेक्टेयर है जिसकी जनसंख्या (1981 की जनगणना के अनुसार) 707.5 लाख है। अब इस कार्यक्रम का विस्तार करके इसे 147 जिलों के 943 ब्लाकों में कार्यान्वित किया जायेगा। वर्ष 1993–94 के लिए इस कार्यक्रम हेतु 153.34 करोड़ रु0 की राशि का आवंटन किया गया। 1973–74 से लेकर मार्च 1993 तक इस कार्यक्रम के तहत कुल 1429 करोड़ रु0 व्यय किये जा चुके है। यह कार्यक्रम ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा चलाया जा रहा है। वर्ष 1992–93 में इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्राविधिक आकड़ों के अनुसार निमांकित प्रगति दर्शायी गयी है—

तालिका 31.2

| | | 00 हेक्टेयर्स में |
|----|------------|-------------------|
| 1. | भूमि विकास | 978.02 |
| 2. | जल संसाधन | 157.81 |
| 3. | वनारोपण | 648.10 |

(आन्ध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, हरियाणा, जम्मू एवं काश्मीर, कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, एवं पश्चिमी बंगाल नामक 13 राज्यों में यह कार्यक्रम संचालित किया जा रहा है।)

31.2.6 कार्यक्रम का मूल्यांकन

अब इस कार्यक्रम का मूल्यांकन लोकसभा की सार्वजनिक लेखा समिति करने लगी है। इस कार्यक्रम के मूल्यांकन में निमांकित तथ्यों पर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया है:—

- (1) इस कार्यक्रम को आवंटित कोषों का लगभग 72 प्रतिशत का ही उपयोग हो पाया है।
- (2) कुछ राज्यों में सूखाग्रस्त ऐजेन्सियों की स्थापना अवश्य की गई है किन्तु इन्हें समुचित अधिकार नहीं दिये गये है।
- (3) कार्यक्रम तैयार करते समय क्षेत्र विशेष की आवश्यकताओं तथा साधनों की उपलब्धता पर ध्यान नहीं दिया गया है।
- (4) कार्यक्रम को सम्पन्न करने में अनावश्यक देरी हुई है जिससे वांछित लाभ लक्ष्य समूह तक नहीं पहुंच पाये हैं।
- (5) कुछ आगतो (inputs) के अभाव तथा वित्तीय सस्थाओं से पर्याप्त नहीं मिलने से कार्यक्रम की गति धीमी हुई है।

बोध प्रश्न- 1

- (अ) सूखा आशंकित क्षेत्र कार्यक्रम किस वर्ष मे प्रारंभ किया गया था?
- (ब) इस कार्यक्रम के उद्देश्य बताइये
- (स) इस कार्यक्रम को समझाइए
- (द) इस कार्यक्रम की प्रगति बताते हुये इसको मूल्यांकित कीजिए

31.3 मरूस्थल विकास कार्यक्रम

Desert Development programme

31.3.1 भूमिका

भारत में मरूस्थलीय क्षेत्रफल काफी विस्तृत है एवं यह मरूस्थल धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है। इसे 'महान भारतीयमरूंस्थलं (The Great Indian Desert) के नाम से पुकारा जाता है। तथा राजस्थान के पश्चिमी भाग तथा गुजरात एवं हरियाणा में यह फैला हुआ है जिसका अनुमानित क्षेत्रफल 2,34,895 कि.मी. है। इसकी अवस्थिति को निम्नांकित तालिका में प्रस्तुत किया गया है:—

तालिका 31.3

| प्रदेश | जिले | जिलों के नाम |
|----------|------|--|
| राजस्थान | 11 | बीकानेर, जैसलमेर, बाइमेर, जोधपुर, नागौर, चुरू, |
| | | पाली– जालौर, (8 प्रमुख जिले) तथा गंगानगर, |
| | | झुनझुनू एवं सीकर। |
| गुजरात | 2 | मेहसाना एवं बानसकंठ |
| हरियाणा | 3 | भिवानी, हिसार एवं रोहतक। |

विगत 50 वर्षों में यह मरूस्थल आधा मील (0.8 किमी.) प्रति वर्ष की गति सें बढ़ रहा है तथा 13000 हेक्टेयर उपजाऊ भूमि प्रति वर्ष इसकी चपेट में आ जाती है। अतः हमारे सामने मरुस्थलीय क्षेत्रफल के प्नर्स्थापना की समस्या बहुत विकट है।

कृषि राष्ट्रीय आयोग (The National Commission on Agriculture) की अनुशंसाओं के अनुरूप वर्ष 1977–78 से एक मरूस्थल विकास कार्यक्रम को क्रियान्वित किया गया। इसका प्रमुख उद्देश्य मरूभूमि को बढ़ने से रोकने, मरूभूमि में सूखे के प्रभावों को समाप्त करना, प्रभावित क्षेत्रों में परिस्थितिकीय (ecological) संतुलन बहाल करना व इन क्षेत्रों मे भूमि की उत्पादकता तथा जल-संसाधनों को बढ़ाना है। यह कार्यक्रम शत-प्रतिशत केन्द्रीय सहायता के आधार पर क्रियान्वित किया जा रहा है।

यह कार्यक्रम गर्म मरूक्षेत्र के अन्तर्गत राजस्थान के 11 जिलों, हरियाणा के 4 जिलों तथा गुजरात के तीन जिलों तथा ठंडे मरू–क्षेत्र के अन्तर्गत जम्मू एवं कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश के कुछ भागों कों सम्मिलित किया गया है।

31.3.2 कार्यक्रम का शुभारम्भ एवं इसके उद्देश्य

प्रारंभिक चरण में इस कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्नांकित प्रमुख क्रियाएं प्रारंभ की गई:—

1 संरक्षित-पट्टी वृक्षारोपण (Shelter-belt plantation) पर विशेष बल प्रदान करते हुये वनारोपण (Afforestation), घास भूमि विकास (Grass land development), एवं रेतीले टीलों का स्थिरीकरण (Sand dune stabilization)

- 2 भू-जल (ground water) विकास एवं उसका प्रयुक्तीकरण
- 3 जल फसलीकरण संरचनाओं (Water hervesting structures) का निर्माण।
- 4 ट्यूब वैलस एवं पम्प सेटों को ऊर्जा प्रदान करने हेतु विद्युतीकरण एवं
- 5 कृषि, बागवानी एवं पश्पालन विकास।

स्खा आशंकित क्षेत्र कार्यक्रम एवं मरूस्थल विकास कार्यक्रम के टास्कफोर्स (Task Force on D.P.A.P. & D.D.P) ने सन 1982 में इस कार्यक्रम का पुनरावलोकन करते हु ये बताया था कि मरूस्थल विकास कार्यक्रम (D.D.P.) का उद्देश्य स्खा आशंकित क्षेत्र कार्यक्रम (D.P.A.P) के समान होना चाहिए एवं तदोपरांत कुछ परिवर्तन (modification) भी सुझाये गये । इस समय इस कार्यक्रम में मरूस्थल एवं ईधन हेतु प्रयुक्त लकड़ियों के उगाने पर विशेष बल दिया गया है । इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 126 विकास खन्डों को छठी पंचवर्षीय योजना में सिम्मिलित किया गया था तथा सातवीं पंचवर्षीय योजना में 5 विकास खन्डों को और जोड़ा गया । सातवीं योजना में सीमावर्ती क्षेत्रों के विकास का एक नया कार्यक्रम इसमें और जोड़ा गया है । आठवीं पंचवर्षीय योजना में भी कार्यक्रम को चालू रखा गया है ।

31.3.3 कार्यक्रम का क्रियान्वयन

कार्यक्रम के क्रियान्वयन के लिये किये जाने वाले वित्तीय आवंटन में 1993–94 में पर्याप्त वृद्धि भी की गई है । 1993–94 में गर्म मरूस्थलीय क्षेत्रों में प्रति एक हजार वर्ग कि. मी. क्षेत्र के लिए 36 लाख रूपये का आवंटन किया गया है । किन्तु किसी भी जिले के लिये अधिकतम आवंटन. 7 .5 करोड़ रू. का हो सकता था । इसी प्रकार ठंडे मरूस्थलीय क्षेत्रों में

हिमाचल प्रदेश को 1.50 करोड़ रू. प्रति जिले तथा जम्मू एवं कश्मीर को 2.25 करोड़ रू. प्रति जिले के आधार पर आवंटन किया गया था ।

यह कार्यक्रम देश के पांच राज्यों के 21 जिलों के 131 विकास खन्डो में चलाया जा रहा था । दिसम्बर 94 को सरकार ने इसका विस्तार करके इसे 36 जिलों के 224 विकास खन्डों में कार्यान्वित करने का अनुमोदन कर दिया है ।

यह कार्यक्रम ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा चलाया जा रहा है । 1993–94 में राज्यों को 74. 25 करोड़ रू. देने का प्रावधान था । 1977–78 से मार्च 93 तक 447.65 करोड़ रू. इस कार्यक्रम के तहत व्यय किये जा चुके है । वर्तमान में इस कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य मरूभूमि विस्तार प्रक्रिया नियंत्रण एवं पर्यावरणीय संतुलन बनाये रखना है ।

31.3.4 कार्यक्रम की उपलब्धियाँ

मरूस्थल विकास कार्यक्रम का राज्यवार प्रावधिक व्यय एवं भौतिक उपलब्धियाँ निमांकित तालिका में दर्शायी गयी है :—

1992-93 की भौर्तिक उपलब्धियाँ (00 प्रावधिक व्यय क्र. राज्य हैक्टेयर्स में) भूमि विकास जल संसाधन वनारोपण 1992-93 (लाख रू. में) गुजरात 208.82 5.48 4.55 13.55 1 हरियाणा 469.30 0.00 21.01 17.85 2 हिमाचल प्रदेश 3 228.91 1.91 14.49 5.62 294.45 जम्मू एवं 2.02 3.03 3.26 कश्मीर राजस्थान 3650.47 18.80 66.07 5 54.26 योग 4851.95 49.30 115.22 67.38

तालिका 31.4

31.3.5 कार्यक्रम का मूल्यांकन

इस प्रकार स्पष्ट हैं कि सन 92–93 में इस कार्यक्रम में राज्यों पर केन्द्र सरकार द्वारा 48.52 करोड़ रु. प्रावधिक रूप मे व्यय किये गयें तथा राज्य वार भूमि विकास, जल संसाधन एवं वनारोपण की भौतिक उपलब्धियाँ उपर्युक्त तालिका में दर्शायी गयी है । यह कार्यक्रम अभी सीमित सफलता ही प्राप्त कर सका है ।

इस कार्यक्रम का प्रमुख भाग मृदा एवं भूमि विकास, जल एवं नमी संरक्षण, वनारोपण एवं चारागाह विकास रहा है । तथा कम से कम वार्षिक आंवटन का 75 प्रतिशत भाग इस प्रमुख भाग परिव्यय करने का प्रावधान हैं ।

स्वाध्यायी प्रश्न -

(अ) मरुस्थल विकास कार्यक्रम किस वर्ष में प्रारंभ किया गया था?

- (ब) इस कार्यक्रम के उदेश्य बताइए?
- (स) इस कार्यक्रम को देश में किस प्रकार कार्यान्वित किया गया है?
- (द) कार्यक्रम की प्रगति बताते हुए इसको मूल्यांकित कीजिए?
- 31.4 पर्वतीय क्षेत्र विकास योजनाएं (The Hill Areas Development Plans)

31.4.1 भूमिका

भारत में पर्वतीय क्षेत्रों का विस्तार 20 प्रतिशत क्षेत्रफल में है एवं इन क्षेत्रों में लगभग 9 प्रतिशत जनसंख्या निवास करनी है । इन पर्वतीय क्षेत्रों के द्वारा मानव को जीवन—दायनी संसाधनों की आपूर्ति की जाती है । तटोपरांत भी ये क्षेत्र अत्यन्त पिछड़ी अवस्था में है । इन क्षेत्रों की प्रमुख समस्या सर्वागीर्ण, निरन्तर एवं स्वचलित विकास (Sustainable Development) की है । इन क्षेत्रों की सामान्य समस्याओं में पर्यावरणीय विषमताएं, वनों का विनाश एवं परिवहन तथा संचार साधनों की अपर्याप्तता हैं । इन क्षेत्रों के संतुलित सामाजिक आर्थिक विकास का उत्तरदायित्व राज सरकारों का है ।

पर्वतीय क्षेत्रों का विकास हमारी प्रारंभिक पंचवर्षीय योजनाओं में विशेष विकास परियोजनाओं के माध्यम से सदैव ही जुड़ा रहा है। पर्वतीय क्षेत्र विकास की ये विशेष विकास परियोजनाएं सर्वप्रथम भारत—जर्मन सहायता कार्यक्रम के अन्तर्गत क्रियान्वित की गई थी। ये परियोजनाएं विशेषतः हिमाचल प्रदेश के मण्डी एवं कांगड़ा जिलों, उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा जिले तथा तमिलनाडू के नीलगिरि जिले में अवस्थित थी। इन परियोजनाओं की सफलता से प्रभावित होकर पर्वतीय क्षेत्रों में समन्वित कृषि विकास के लिए चौथी पंचवर्षीय योजना में पूर्णत: घरेलु स्त्रोतों से दो केन्द्रीय क्षेत्र परियोजनाएं स्वीकृत की गई। इन योजनाओं का प्रमुख उद्देश्य कृषि, बागवानी, पशुपालन, प्रोसेसिंग एवं विपणन सुविधाओं संबंधी आधारभूत संरचनाओं का समन्वित विकास करना था।

31.4.2 कार्यक्रम की रूपरेखा

उपर्युक्त योजनाओं की सफलता से, पांचवीं पंचवर्षीय योजना में प्रारंभ से ही एक विशेष कार्यक्रम जो वर्ष 1974–75 में क्रियान्वित किया गया था उसे पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम (The Hill Area Development)के नाम से समाहित किया गया । पांचवी योजना में कार्यक्रम को पृथक से सम्मिलित करने का प्रमुख कारण यह था कि पर्वतीय क्षेत्र देश में सामाजिक आर्थिक पुनर्निर्माण में विशेष समस्याएं उपस्थित करते थे। अतः पांचवी योजना में इस कार्यक्रम को हितग्राही लाभान्वित कार्यक्रम के रूप में सम्मिलित किया गया।

पर्वतीय क्षेत्रों का वर्गीकरण

इन पर्वतीय क्षेत्रों को प्रमुखतः दो श्रेणियों में बाँटा गया है -

- 1 पर्वतीय राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश
- 2 निर्दिष्टित पर्वतीय क्षेत्र

पर्वतीय राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, सिक्किम, मणिपुर, मेघालय, नागालैंड, त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश एवं मिजोरम आते है।

निर्दिष्ट पर्वतीय क्षेत्रों (Designated Hill Areas)में निम्नांकित क्षेत्रों को सिम्मिलित किया गया है :-

- 1 आसाम के दो पर्वतीय जिले–उत्तरी कचार एवं कर्वी आगलोंग
- 2 उत्तर प्रदेश के आठ जिले-देहरादून, पौरी गढ़वाल, तेहरी गढ़वाल, चमौली, उत्तरकाशी, नैनीताल, अल्मोड़ा एवं पिथोरागढ।
- 3 पश्चिमी बंगाल के दार्जिलिंग जिले के प्रमुख भाग।
- 4 तमिलनाइ का नीलगिरी जिला एवं
- 5 पश्चिमी घाट के 163 ताल्लुकाज (महाराष्ट्रके 62, कर्नाटक के 40, तमिलनाडु के 29, केरल के 29 एवं गोआ के 3 ताल्लुकाज)

इन पर्वतीय क्षेत्र विकास योजनाओं का प्रमुख जोर राज्यों में पिछड़े हु ये पर्वतीय क्षेत्रों की पहचान तथा उनके विकास के लिये पृथक से उपयोजना का निर्माण था। इस हेतु प्रारंभिकचरण में हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश एव तिमलनाडु में पाइलट प्रोजेक्टस चलाये गये थे। इनके अन्तर्गत कृषि, पशुपालन, बागवानी, भूमि विकास एव मृद्रा संरक्षण, लघु सिंचाई के साधन तथा आधार भूत संरचना का समेकित विकास था। इस क्षेत्र के लिये खाद्य, ईंधन., चारा, ऊर्जा, स्वास्थ्य, शिक्षा एवं पीने के पानी की व्यवस्था भी किए जाने का निर्णय लिया गया था।

31.4.3 कार्यक्रम के उद्देश्य

सातवीं एवं आठवीं पंचवर्षीय योजना में सामाजिक—आर्थिक संवृद्धि, आधारभूत संरचना का विकास एवं परिस्थितिकीय (ecology) को प्रोन्नत करने के तीन मानदंडों को समाहित कर पर्वतीय क्षेत्र विकास की योजनाओं को क्रियान्वित किया गया है :—

- 1 सामाजिक-आर्थिक विकास
- 2 आधारभूत-संरचना का विकास एवं
- 3 परिस्थितिकी (Ecology) की प्रोन्नति ।

समाजार्थिक परिवर्तन (Socio-economic transformation) से संबंधित अनेक विशेष समस्यायें पर्वतीय क्षेत्रों में पाई जाती है। समेकित क्षेत्रीय विकास दृष्टिकोण को कुछ पर्वतीय क्षेत्रों में क्रियान्वित किया गया है। इस कार्यक्रम का प्रमुख जोर राज्यों में पिछड़े क्षेत्रों की पहचान रहा है जहाँ वे पर्याप्त मात्रा में उपस्थित है तथा इन क्षेत्रों के विकास के लिए पृथक से उपयोजना का निर्माण करना है। हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश एवं तमिलनाडु में पाइलट परियोजनाओं (Pilot Projects) को प्रारंभ किया गया। इन परियोजनाओं की प्रधान ब्यूह रचना कृषि का समेकित विकास रहा है जिसमें कृषि, पशुपालन, बागवानी, भूमि विकास एवं मृदा संरक्षण, लघु सिंचाई एवं बुनियादी आधार-भूत संरचनात्मक स्विधाएं प्रदान करना रहा है।

31.4.4 कार्यक्रम की व्यूह रचना

पर्वतीय क्षेत्र विकास योजनाओं की व्यूह-रचना नियमान्सार है -

- 1 वैकल्पिक ऊर्जा नीति वनों की कटाई रोकने के लिये यह आवश्यक है कि इस हेतु इन क्षेत्रों में वैकल्पिक ऊर्जा साधनों जैसे विदद्त, कैरोसिन, गैस आदि की आपूर्ति की जायेगी।
- 2 **चारागाह भूमि विकास —** जलाने की लकड़ी एवं चारे की नियमित आपूर्ति हेतु चारागाह भूमि का विकास किया जायेगा ।
- 3 स्वास्थ्य एवं शिक्षा— इस कार्यक्रम के अन्तर्गत स्वास्थ्य, चिकित्सा एवं शिक्षा के प्राथमिक स्तर की व्यवस्था की जायेगी।
- 4 भू-प्रयुक्तिकरण, झूम खेती (परिवर्तनशील खेती) के नियंत्रण एवं वनारोपण के विभिन्न कार्यक्रम इन क्षेत्रों में आयोजित किये जायेंगे ।
- 5 बागवानी, पैकिंग सामग्री एवं पशुपालन संबंधी विभिन्न कार्यक्रम इन क्षेत्रों में आयोजित किये जायेंगे ।
- 6 औद्योगिक, यातायात एवं संवाद-वाहन का यथोचित विकास इन क्षेत्रों में किया जायेगा।
- 7 **उपयुक्त प्रौद्योगिकी** इन क्षेत्रों के लिये उपयुक्त प्रौद्योगिकी निर्मित की जाकर इसको क्रियान्वित किया जायेगा ।

सन 1974–75 से जो पश्चिमी घाट विकास कार्यक्रम प्रारंभ किया गया था उसके अन्तर्गत पारिस्थितिकीय संतुलन, जीव–संबंधी विविधता, मानव द्वारा पर्यावरणीय प्रदूषण का नियंत्रण तथा इसके प्रति जन जागरण एवं शिक्षा संबंधी विभिन्न कार्यक्रम निर्धारित किये गये थे।

31.4.5 कार्यक्रम की उपलब्धियां

उपर्युक्त कार्यक्रमों पर विशेष केन्द्रीय सहायता में से जो वर्ष 1991–92 में जो व्यय किया गया तथा तत्संबंधी वर्ष 1992–93 हेतु आवंटन तथा वर्ष 1993–94 हेतु प्रस्तावित आवंटन निम्नान्सार हैं–

तालिका 31.5

| का | र्यक्रम | | | व्यय | आवंटन | प्रस्तावित आवंटन |
|-----|-----------|---------|-------|-----------|-----------|------------------|
| | | | | (1991–92) | (1992–93) | (1993–94) |
| | | | | | | (करोड़ रू. में) |
| 1 | पर्वतीय | क्षेत्र | विकास | 231.45 | 251.79 | 277.78 |
| | कार्यक्रम | | | | | |
| 2 | पश्चिमी | घाट | विकास | 27.35 | 38.20 | 42.22 |
| | कार्यक्रम | | | | | |
| योव | П | | | 258.80 | 290.00 | 320.00 |

31.4.6 कार्यक्रम का मूल्यांकन

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि पर्वतीय विकास योजनाएं पर्याप्त रूप से सफल रही है।

स्वाध्यायी प्रश्न :-

- (अ) पर्वतीय क्षेत्र विकास योजनाएँ किस वर्ष से प्रारंभ की गई थी?
- (ब) इस कार्यक्रम के उद्देश्य बताइए।
- (स) इस कार्यक्रम की ब्यूह रचना बताइए।
- (द) इस कार्यक्रम की उपलब्धियाँ बताइए। ।

31.5 जनजाति क्षेत्रीय विकास योजनाएं

(TRIABAL AREA DEVELOPMENT PLANS)

31.5.1 भूमिका

इसमें लेश मात्र भी संदेह नहीं हो सकता है कि भारत में जनजाति जनसंख्या देश की प्राचीनतम जनसंख्या है। देश में जनजाति जनसंख्या 38 करोड़ है जो कि देश की कुल जनसंख्या का 6.94 प्रतिशत है। यहाँ पर यह उल्लेख करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि कुल जनजाति जनसंख्या में से 3.67 करोड जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है अर्थात 96 प्रतिशत जनजातियाँ ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती हैं तथा केवल 13 लाख जनजाति जनसंख्या नगरों में रहती है (अर्थात केवल 4 प्रतिशत जनसंख्या नगरों में निवास करती है)। ये जनजातियाँ सदियों से जंगलों एवं पहाड़ी क्षेत्रों में प्रमुखत: निवास करती है तथा इनको आदिम–जाति के नाम से भी जाना जाता है जो इस तथ्य का बोध कराता है कि इनके विकास एवं कल्याण का कार्य अत्यन्त कठिन है। मुख्यतः ये जनजातियाँ बिहार, उड़ीसा, राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र तथा पश्चिमी बंगाल में भारी मात्रा में संकेन्द्रित है। देश की कुल जनजाति जनसंख्या का 87.8 प्रतिशत भाग इन राज्यों में निवास करता है। असम, मणीप्र, त्रिप्रा, मेघालय, नागालैन्ड, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, लक्षदवीप, दादरा व नगर हवेली ऐसे आदिवासी क्षेत्र है जो कि सुदूर फैले हू ये है तथा इनके लक्षण एवं समस्याएँ अत्यन्त जटिल है। सघन क्षेत्र में रहने वाली जनजातियों के तथा उनके सन्निकट क्षेत्रों में निवास करने वाली जनसंख्या के जीवन-स्तर में अनेक असमानतायें परिलक्षित होती है। कृषि के तरीकों एवं उत्पादकता तथा आध्ननिक प्रौदयोगिकी को अपनाने, कृषि–जोतों का आकार,– प्रति व्यक्ति आय, बेरोजगारी का स्तर तथा सहायक धन्धों की उपलब्धता में यह अन्तर अत्यन्त ही स्पष्ट-रूप से दृष्टिगोचर होता है। यहाँ पर वर्ष में मानव शक्ति का प्रभावी प्रयोग बहुत कम हो पाता है।

देश के विभिन्न भागों में जनजातियाँ अनेक समस्याओं से ग्रसित है। इनमें से प्रमुख झूम खेती, लघु वन उपज की प्राप्ति तथा आवश्यक वस्तुओं के विक्रय में मध्यस्थों तथा व्यापारियों द्वारा शोषण, भू–हस्तांतरण, ऊंची व्याज की दरें, भयंकर ऋणग्रस्तता, त्रुटिपूर्ण वन– नीतियां आदि है। इन जनजातियों का जीवन–निर्वाह एक समस्या का स्वरूप धारण कर लेता है।

इन समस्याओं के साथ ही जनसंख्या वृद्धि की ऊंची दर, कृषि जोतों का छोटा आकार, साक्षरता की कमी, वन—संपदा का तीव्र हास, आधार—भूत संरचना का अभाव एवं सामाजिक सेवाओं के निम्न स्तर की अनेक समस्याएं जनजाति क्षेत्रों में सदैव विद्यमान रहती है। जनजातियों की एक ऐसी श्रेणी भी है जो बलपूर्वक बेदखली तथा औद्योगिक एवं सिंचाई परियोजनाओं के कारण अपने निवास स्थानों से पृथक हो गई है । इन अनेकानेक भांति की समस्याओं के कारण जनजाति के क्षेत्रीय विकास का कार्य अत्यन्त गंभीर तथा कठिन रूप धारण कर लेता है।

अतः एक ऐसी प्रभावशाली नीति की इन क्षेत्रों के लिए आवश्यकता है जो उनके प्राकृतिक संसाधनों को विकसित करे और उनके उत्पादक आर्थिक जीवन में सहायक सिद्ध हो । जन जातियों का आर्थिक जीवन शोषण मुक्त रहे तथा उनके धार्मिक एवं सामाजिक जीवन में कोई अवरोध उत्पन्न नहीं करे । अत : विकासीय कार्यक्रमों को निमांकित भागों में बांटकर तैयार करना चाहिए :

- 1. यातायात एवं संवाद-वाहन
- 2. शिक्षा एवं संस्कृति
- 3. जन-जातीय अर्थव्यवस्था का विकास एवं
- 4. स्वास्थ्य, आवास एवं जल आपूर्ति ।

31.5.2 योजना की व्यूहरचना :

उपर्युक्त समस्याओं को दृष्टिगत रखते हुए भारत में जो जनजाति क्षेत्रीय योजनाएं बनाई गई है उनमें व्यूहरचना के निम्न उद्देश्य निर्धारित किये गये है :

- 1. गरीबी तथा बेरोजगारी में प्रभावी कमी लाना,
- 2. न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के माध्यम से जीवन-स्तर को स्धारना
- 3. आय तथा धन की असमानताओं में कमी करना,
- 4. जनजाति क्षेत्र के लिए सम्भाव्य का पूर्ण रूप से विदोहन करना,
- 5. जनजाति क्षेत्रों में आधारभूत आर्थिक संरचना को विकसित करना,
- 6. व्यक्तिगत परिवारों को लक्ष्य बनाकर जनजाति का विकास करना
- 7. शिक्षा एवं प्रशिक्षण के माध्यम से मानवीय साधनों का विकास करना
- 8. सहकारिताओं के माध्यम से साख एवं विपणन केन्द्रों का विस्तार करना, तथा
- 9. जनजातियों को शोषण से मुक्ति दिलाना ।

31.5.3 योजना का शुभारम्भ:

जनजाति विकास योजनाओं का प्रारम्भ भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भिक वर्ष 1950–51 से ही कर दिया गया था । प्रारम्भिक योजनाओं में जनजातीय क्षेत्रों में सड्कों के विकास, शिक्षा हेतु पाठशालाओं व छात्रवृतियों, पुस्तकों एवं छात्रावासों की व्यवस्था, सामुदायिक केन्द्रों का निर्माण, झूम खेती को समाप्त करने के लिए जनजातियों को उर्वरा भूमि, बैलो, खेती के औजारों, बीज, वित्त आदि की सहायता, जंगलों की कटाई पर रोक एवं वन—श्रम

सहकारी सिमितियों की व्यवस्था, ऋणग्रस्तता को कम कर बहु—उद्देशीय सहकारी सिमितियों का निर्माण, कुटीर एवं सहायक उद्योगों (मधु—मक्खी पालक, डिलया निर्माण, रेशम उद्योग, कर्ताई व बुनाई, खजूर गुड़ का निर्माण आदि) की स्थापना, शुद्ध जल, पोषक भोजन एवं चिकित्सा सुविधाएं, जनजाति शोध संस्थाओं का विकास, सामुदायिक विकास एवं विकास खण्डों का इन क्षेत्रों में प्रसार आदि के कार्यक्रमों को सिम्मिलित किया गया है।

31.5.4 योजना का क्रियान्वयन :

उपर्युक्त कार्यक्रमों की समीक्षाओं में यह परिलक्षित हुआ कि ये कार्यक्रम तदर्थ आधार पर बनाये जाने थे तथा इनमें दीर्घकालीन पीरिप्रेक्ष्य का सर्वथा अभाव रहता था एवं सम्पूरक योजनाओं के माध्यम से इन जनजातियों के लिए आवंटित धन राशि का प्रयोग सामान विकास धनराशि के रूप में स्थानापन्न कर लिया जाता था । यही कारण है कि इन योजनाओं में पर्याप्त धनराशि व्यय करने के उपरांत भी जनजातियों की स्थिति पूर्ववत बनी रही ।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में उपर्युक्त कारणों से एक नई व्यूहरचना का प्रस्फुटन हुआ। इस व्यूहरचना के अन्तर्गत सामान्य क्षेत्रों से लाभों के प्रवाह को पिछड़े एवं जनजातीय क्षेत्रों की ओर सुनिश्चित किया गया। राज्य सरकारों से यह अनुरोध किया गया कि वे धनराशियों को जन—जातियों की जनसंख्या के अनुपात मे पहचाने हुए कार्यक्रमों के लिए उपलब्ध करायें एवं यथा सम्भव पिछड़े एवं जनजाति क्षेत्रों की आवश्यकतानुसार कार्यक्रमों को रूपांतरित करें। इस ब्यूहरचना के अनुसार 16 राज्यों एवं 2 संघ शासित प्रदेशों में पृथक — उप योजनाओं के माध्यम से कार्यक्रमों का क्रियान्वयन प्रारम्भ विशेषत : उन क्षेत्रों में किया गया जहां जनजातियां प्रमुखत : संकेन्द्रित है।

यद्यपि पृथक जन जाति उपयोजना से जन जाति के क्षेत्रों में विकास की एक लहर का सूत्रपात हुआ फिर भी हमारी सातवीं योजना में जनजाति की क्षेत्रीय विकास की समस्याओं को प्रभावी रूप से हल करने के लिए निम्नांकित लक्ष्य निर्धारित किये गये :

- 1. आधारभूत संरचना के अंतरालों को दूर करना,
- 2. परिवारोन्मुख योजनाओं पर ध्यान केन्द्रित करते हुए गरीबी को दूर करना,
- 3. शोधन के विरुद्ध संरक्षण,
- 4. अधिक मूल्य वाली फसलें उगाना (चाहे उत्पादन कम ही हो), रेशम के कीड़े पालना, सोयाबीन तथा कैसहार जैसी नमी फसलें उगाना, फलों की सघन खेती, तकनीक हस्तांतरण हेत् सामाजिक चेतना का प्रयोग तथा विशाल स्तर पर बेर लगाना,
- 5. परत भूमि पर वृक्षारोपण करना,
- 6. पशु प्रजनन में सुधार एवं
- 7. गाइनस कीड़ों का उन्मूलन

इस प्रकार सातवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत तमाम जनजाति परिवारों को विभिन्न लाभ भोगी योजनाओं द्वारा लाभान्वित करने का लक्ष्य रखा गया । इस योजनावधि में पूर्व की योजनाओं से काफी अधिक धनराशि जनजाति उपयोजना क्षेत्र में विभिन्न विकासीय योजनाओं के लिए आवंटित की गई ।

आठवीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत जनजाति क्षेत्रीय उप—योजना के निम्नांकित पहलुओं पर विशेष बल दिया गया —

- 1. जनजाति विकास क्षेत्र विभाग में योजनाओं के उत्तम क्रियान्वयन के लिए अधिकारियों का विशिष्ट रूप से चयन करना,
- 2. राज्य योजना कोषों की बचतों के माध्यम से जनजाति विकास योजनाओं की पूरकता की अनुपालना को स्निश्चित करना।
- 3. जनजाति क्षेत्र में आश्रम विद्यालयों तथा छात्रावासों को चलाने के लिए उच्च विनियोग की व्यवस्था करना,
- 4. जनजाति जनसंख्या के आर्थिक उत्थान हेतु नव प्रवर्तन योजनाओं को चालू करना,
- 5. खण्ड स्तर पर अधारभूत संरचना का समानीकरण करना,
- व्यावसायिक प्रशिक्षण, पूर्व सेवा प्रशिक्षण, प्रतिकारी प्रशिक्षण, ग्रीष्म कालीन प्रशिक्षण तथा
 अन्य प्रशिक्षणों के माध्यम से मानव संसाधनों का सम्चित विकास करना,
- 7. चेतना कैम्प, पद-यात्राओं तथा दूसरे माध्यमों से जन-जाति के लोगों में सामाजिक तथा आर्थिक चेतना उत्पन्न करना,
- 8. लिफ्ट सिंचाई, कुओं के गहरीकरण, डीजल पम्पों के वितरण आदि के द्वारा सिंचाई सुविधाएं प्रदान करना,
- 9. कृषि में अधिक उत्पादन के स्थान पर अधिक मूल्य वाली फसल तकनीक को अपनाना,
- 10. पशुओं की नस्ल सुधारना,
- 11. जनजातीय लोगों को स्थानीय व्यापारियों तथा साह् कारों के शोषण से बचाना तथा
- 12. जन-जातीय परिवारों के आकार मानदण्डों को कम करना ।

31.5.5 योजना की उपलब्धियां :

यह योजना वर्तमान में 20 राज्यों एवं समस्त संघीय क्षेत्रों में 193 समन्वित आदिवासी योजना प्रयोजनाओं (Integrated Tribal Development programmes), 249 परिवर्धित क्षेत्रीय योजना एप्रोच पाकेटस (Modified Area Development Approach pockets), 77 आदिवासीय सघन समूहों (Clusters of Tribal Concentration) एवं 74 परम्परागत आदिवासी समूह प्रयोजनाओं (Primitive Tribal Groups Projects) के माध्यम से क्रियान्वित की जा रही हैं सन 1992 –93 में राज्य योजनाओं में से 2261 करोड़ रु0 की राशि को इन योजनाओं की ओर मोड़ना प्रत्याशित था तथा इस हेतु वर्ष 1993 –94 में 2898 करोड़ रु० का प्रावधान किया गया । सन 1992 –93 में 8.5 लाख आदिवासी परिवारों को आर्थिक सहायता प्रदान की गई थी जबकि लक्ष्य 8.96 लाख आदिवासी परिवारों को आर्थिक

सहायता देने का था । सन 1993 –94 के लिए 9 लाख आदिवासी परिवारों को आर्थिक सहायता प्रदान करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया ।

31.5.6 योजना का मूल्यांकन

निश्चय ही जनजाति क्षेत्रीय विकास योजनाएं जनजातियों के विकास की दृष्टि से क्षेत्र आधारित कार्यक्रमों का प्रतिनिधित्व करती है फिर भी कमजोर वर्गों पर इनका प्रभाव पर्याप्त रूप से दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है । अतः आवश्यकता इस बात की है कि इन कमजोर समूहों को अभिचिन्हित किया जाये तथा उनके विकास पर अधिक ध्यान देया जाये । जनजाति क्षेत्रीय विकास उप योजना के लिए इन क्षेत्रों को विकासार्थ अभिचिन्हित उसी भांति किया जाना चाहिए जैसे कि स्थानीय कार्यों के लिए समेकित जनजाति विकास कार्यक्रम स्तर पर इनका क्रियान्वयन होता है ।

जनजाति क्षेत्रों के परम्परागत शिल्पी प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुए है । वे वृहद उद्योगों की असमान प्रतिस्पर्द्धा का सामना नहीं कर पा रहे है । अतः इन समूहों को अभिचिन्हित करके इनके विकास पर पर्याप्त ध्यान देना परमावश्यक है । ये क्षेत्र मुख्यतः वन क्षेत्र है तथा वन एवं सहायक क्रियाओं (खनन आदि) पर आधारित क्रियाओं को सुनियोजित करना आवश्यक है । उद्योगों एवं खानों के समीप से जनजातियों को पीछे धकेल दिया गया है तथा इन पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है । इन पर विशेष ध्यान देना अपरिहार है ।

जनजातियों की शिक्षा, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा पर पर्याप्त बल दिया जाना चाहिए तथा जनजाति की रोजगार—ग्राहयता को सुधारने हेतुं शिक्षा में विनियोग करना परमावश्यक है । इस समय आवश्यकता इस बात की है कि जनजातियों की बसावट को दृष्टिगोचर रखते हुए पाठशालाओं की अवस्थिति, पाठशालाओं का समय, अवकाश एवं दीर्घावकाश के समय की उपयुक्तता, स्थानीय व्यक्तियों को आकर्षित करने हेतु शैक्षणिक न्यूनतम योग्यताओं में छूट, स्थानीय समुदायों को ध्यान मे रखते हुए एवं पाठयक्रम व अध्ययन सामग्री के निर्माण पर समुचित स्थान दिया जाये । जनजाति के निम्न साक्षरता वाले क्षेत्रों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए । पाठशालाओं को बीच में छोड़ने वाले छात्रों की संख्या में कमी लाना आवश्यक है। इसी भांति स्वास्थ्य सेवाओं में समान भौगोलिक दशाओं वाले क्षेत्रों को वितरित कर विशिष्ट योजनाएं बनाना परमावश्यक है ताकि इन क्षेत्रों में उत्पन्न होने वाली बीमारियों तथा महामारियों की समुचित रोकथाम की जा सके । इन जनजाति क्षेत्रीय विकास की योजनाओं की सफलता के लिए अधिक मनोबल प्रशासनिक एवं अन्य समस्त स्तरों पर जुटाना अत्यन्त आवश्यक है ।

बोध प्रश्न 2

- (अ) जनजाति क्षेत्रीय योजनाएं किस वर्ष से प्रारम्भ की गई थी?
- (ब) इन योजनाओं की व्यूह रचना बताइए
- (स) इन योजनाओं को भारत में किस प्रकार क्रियान्वित किया गया है?
- (द) इन योजनाओं की उपलब्धियों को मूल्यांकित कीजिए

31.6 सारांश

भारत में प्रत्येक क्षेत्र का संतुलित विकास हो सके, इस लक्ष्य के अनुसार जो क्षेत्र विशेष के लिए विशिष्टि योजनाएं प्रारम्भ की गई है उनमें सूखा आशंकित क्षेत्र कार्यक्रम, मरूस्थल विकास कार्यक्रम, पर्वतीय क्षेत्र विकास योजनाएं एवं जनजाति क्षेत्रीय विकास योजनाएं प्रमुख है।

भारत का लगभग 20 प्रतिशत क्षेत्रफल एवं 12 प्रतिशत जनसंख्या सामान्यतः सूखे की चपेट में रहती है । इस क्षेत्र में निवास करने वाली जनसंख्या को सूखे से सुरक्षा प्रदान करने हेतु वर्ष 1973 से सूखा आशंकित कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया है । सूखे की सम्भावना वाले चुनिंदा क्षेत्रों में यह कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया था । इस कार्यक्रम का प्राथमिक लक्ष्य इन क्षेत्रों में भूमि, जल एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित विकास करके पर्यावरण संतुलन को बहाल करना है । वर्तमान में यह कार्यक्रम 13 राज्यों के 96 जिलों के अंतर्गत आने वाले 627 ब्लाकों में चलाया जा रहा है । इसके अंतर्गत आने वाला कुल क्षेत्रफल 553 लाख हैक्टेयर है तथा इस कार्यक्रम का लाभ 707.5 लाख जनसंख्या को मिल रहा है । अब इस कार्यक्रम का विस्तार करके इसे 147 जिलों के 943 ब्लाकों में कार्यान्वित किया जायेगा ।

भारत मे मरूस्थलीय क्षेत्रफल काफी विस्तृत है तथा यह निरंतर बढ़ता जा रहा है । इसका उानुमानित क्षेत्रफल राजस्थान, गुजरात एवं हरियाणा में 2,34,895 कि. मी. है । हमारे सामने मरूस्थलीय क्षेत्र की पुर्नस्थापना की समस्या बहुत ही विकट है । इस हेतु मरूस्थल विकास कार्यक्रम को वर्ष 1977–78 से क्रियान्वित किया गया । इस कार्यक्रम के अंतर्गत ठंडे मरूक्षेत्र के अंतर्गत जम्मू एवं कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश के कुछ भागों को सम्मिलित किया गया है । इस कार्यक्रम का प्रमुख उदेश्य मरूभूमि विस्तार प्रक्रिया नियंत्रण एवं पर्यावरणीय संतुलन बनाये रखना है । यह कार्यक्रम अब तक देश के पांच राज्यों के 21 जिलो के अंतर्गत आने वाले 131 विकास खंडों में चलाया जा रहा है तथा दिसम्बर 94 में सरकार ने इसका विस्तार करके इसे 36 जिलों के 274 विकास खंडों में कार्यान्वित करने का अनुमोदन कर दिया है ।

पर्वतीय क्षेत्रों का विकास हमारी प्रारम्भिक योजनाओं में विशेष विकास परियोजना के माध्यम से सदैव ही जुड़ा रहा है । योजनाओं की सफलता से प्रभावित होकर पांचवी पंचवर्षीय योजना में प्रारम्भ से ही एक विशेष कार्यक्रम जो वर्ष 1974–75 से क्रियान्वित किया गया है जिसे पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम के नाम से जाना जाता है । पर्वतीय क्षेत्रों का वर्गीकरण प्रमुखतः दो श्रेणियों में बांटा गया है – (1) पर्वतीय राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेश एवं (2) निर्दिष्टित पर्वतीय क्षेत्र। इस कार्यक्रम को तीन मानदंडों को समाहित कर क्रियान्वित किया गया है – (1) समाजार्थिक विकास (2) आधारभूत संरचना का विकास एवं (3) पारिस्थितिकी की प्रोन्नित । इन योजनाओं की प्रधान व्यूहरचना कृषि का समेकित विकास, मृदा संरक्षण, लघु सिंचाई एवं बुनियादी आधार–भूत संरचनात्मक सुविधाएं प्रदान करना रहा है । इस कार्यक्रम पर

विशेष केन्द्रीय सहायता में से जहां वर्ष 1992–93 के लिए 290 करोड़ रु॰ की राशि आवंटित की गई तथा वर्ष 1993–94 के लिए प्रस्तावित आवंटन 320 करोड़ रु॰ था ।

भारत में जनजाति जनसंख्या 3.8 करोड़ है जो कि देश की कुल जनसंख्या का 6.94 प्रतिशत है। कुल जनजाति की 96 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। इस जनसंख्या को विकास के पथ पर अग्रसर करने के लिए जनजाति क्षेत्रीय विकास की योजनाओं का प्रारम्भ भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भिक वर्ष 1950–51 से ही कर दिया गया था। प्रारम्भिक योजनाओं में जनजातीय क्षेत्रों में सड्कों के विकास, शिक्षा हेतु पाठशालाओं, छात्रवृत्तियों, पुस्तकों एवं छात्रावासों की व्यवस्था, सामुदायिक केन्द्रों का निर्माण, झूम खेती को समाप्त करने के लिए जन—जातियों को उर्वरा भूमि, बैलों, खेती के औजारों, बीज, वित्त आदि की सहायता, जंगलों की कटाई पर रोक एवं वन—श्रम—सहकारी समितियों की व्यवस्था, ऋण ग्रस्तता को कम कर बहु उद्देशीय सहकरी समितियों का निर्माण, कुटीर एवं सहायक उद्योगों की स्थापना, शुद्ध जल, पोषक भोजन एवं चिकित्सा सुविधाए, जनजाति शोध संस्थाओं का विकास, सामुदायिक विकास एवं विकास खण्डों का इन क्षेत्रों में प्रसार आदि कार्यक्रमों को सम्मिलित किया गया था। यह योजना 20 राज्यों एवं समस्त संघीय क्षेत्रों में सफलता—पूर्वक क्रियान्वित की जा रही है। वर्ष 1992—93 में राज्य को योजनाओं में से 2261 करोड़ रु० की राशि को इन योजनाओं की ओर मोड़ना प्रत्याशित था तथा वर्ष 1993 — 94 हेतु 2898 करोड़ रु. का प्रावधान किया गया।

31.7 शब्दावली

सूखा आशंकित क्षेत्र : वे सूखाग्रस्त क्षेत्र जिसमें वर्षा की सदैव कमी या अभाव रहता

है ।

मरूस्थल विकास : मरूस्थल से तात्पर्य रेगिस्तानी या ठंडे मरू क्षेत्र से है जहां वर्षा

के अभाव में विशेष पैदावार नहीं होती है।

पर्वतीय क्षेत्र : पर्वतीय क्षेत्र वे क्षेत्र है जहां की भूमि पहाड़ी होती है।

जन-जातीय क्षेत्र : जिस क्षेत्र में आदिम जातियां निवास करती है वे जन-जातीय

क्षेत्र कहलाते है ।

झूम खेती : झूम खेती से तात्पर्य परिवर्तनीय खेती से है । आदिवासी लोग

इस खेती के अन्तर्गत एक बार जिस भूमि को साफ कर खेती

करते है उसको बाद में वैसा ही छोड्कर आगे बढ़ जाते है।

31.1 कुछ उपयोगी पुस्तकें

(1) भारतीय अर्थव्यवस्था ए. एन. अग्रवाल

(2) भारतीय अर्थव्यवस्था हरिशचन्द्र शर्मा

(3) भारतीय अर्थव्यवस्था सीबी मामोरिया,

(4) भारतीय अर्थव्यवस्था नाथ्रामका

(5) भारतीय अर्थव्यवस्था रूद्र दल एवं सुन्दरम

परिशिष्ट इकाई 31

भारत में ad hoc कार्यक्रम स्वतन्त्रता के बाद शुरू से ही बहुत रहे है।ऐसे भी कार्यक्रम रहे है जो बदलती हुई राज्य सरकारों ने साधारण कार्यों के लिए शुरू किये उनके बाद की सरकारों ने उनके नाम बदल दिए या बन्द कर दिया।

| सरकारा न उनक नाम बदल कार्यक्रम | | निक्षित क्षेत्र/व्यक्ति | |
|--|-------|-------------------------|------------------------------------|
| | | | गांवों के विकास के लिए कृषि, |
| ा. यम पूर्णता उपसम्बद्ध | 1752 | राजा असामा | पशुपालन,लघु सिंचाई, ग्रामीण |
| | | | सड़कें, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास का |
| | | | प्रबन्ध, श्रम दान पर भी जोर |
| 2. नेशनल ऐक्सटेंशन | 1952 | ഭപ്കാപ | उपरोक्त के लिए तकनीक प्रदान |
| सर्विस (NES) | 1752 | - CHANCIC | करना |
| | 1959 | सभी गांव | जनतंत्र से उपरोक्त कार्य |
| 4. एप्लाइड़ न्यूट्रीशन | | | |
| (पोषक) कार्यक्रम | | छोटे बच्चे | माताओं व शिशुओं को पोषक चीजें |
| (ANP) | | 0.10 4 4 4 | देना |
| इन्टेन्सिव एग्रीकल्चरल | 1960– | 13 चने जिले | सभी कृषि आदान व साज के |
| डिस्ट्रिक्ट प्रोग्राम | | 3 | प्रबन्ध उन्नत कृषि |
| (IADP) | | | . |
| | 1962– | 3 से 5 ब्लॉंक का | ग्रामीण आर्टीजन हुनरमंदों को |
| प्रोजेक्ट (RIP) | | क्षेत्र | आदान के रूप में सहायता देना |
| 7. इन्टेन्सिव (गहन) कृषि | 1964– | सभी राज्यों के | तकनीक के माध्यम से भू–प्रयोग, |
| क्षेत्र विकास (IAAP) | 65 | उन्नत चुने हुए | गहनता बढ़ाना तथा उत्पादन व |
| | | जिले व किसान | उत्पादकता बढ़ाना |
| 8. विपुल उत्पादन | 1965 | सभी राज्य सभी | विपुल उत्पादन के बीज प्रयोग |
| कार्यक्रम हाई ईल्डिंग | | किसान | करके तथा उनके साथ सिंचाई व |
| वेराइटी प्रोग्राम | | | अन्य आदान प्रयोग से विपुल |
| (HYVP) | | | उत्पादन व उत्पादकता |
| 9. मल्टी क्रांपिग प्रोग्राम | 1965 | चुनिन्दा जिले | विशिष्ट फसलों के विकास का |
| (MCP) | | | कार्यक्रम |
| 10. लीड बैक स्कीम | 1969 | सभी ग्रामीण जिले | |
| (LBS) | | | बनाता है व उसके अनुसार साख |
| | | | प्रबन्धन होता है |
| 11. स्माल फार्मर | | | उन्हें आदान सहायता तथा |
| डेवेलपमेंट ऐजेन्सी | 70 | • | तकनीकी सलाह देना ताकि वे भू— |
| | | छोटे किसान | गहनता से अधिक उत्पादन पायें(2- |
| | | | 5एकड़) |
| 12. माजिनल फार्मर तथा | 1969– | सभी राज्यों के | –उपरोक्त– परन्तु सीमान्त कृषकों |

| | एगरीकल्चरल लेबरर्स प्रोग्राम (MFAL) | 70 | किसान | को अलग से (2 एकड़ से कम भूमि वाले) |
|-----|--|-------|----------------------|---------------------------------------|
| 13. | क्रेश रुरल ऐम्पलायमेंट | 1964– | सभी राज्यों में | सार्वजनिक निर्माण कार्य जिनमें |
| | प्रोग्राम | 70 | | ज्यादा हुनर की जरूरत नहीं, उन्हें |
| | | | | चलाना ताकि फालतू पड़ी भूमि पर |
| | | | | खेती करवाना |
| 14. | एक्सपोर्ट औरियन्टेड | 1970 | मुख्य फसलें | इन्हें अच्छी किस्म का उगाकर, पैक |
| | प्रोग्राम (EOP) | | 3 | करके निर्यात करना |
| 15. | ड़ाउट-प्रोन एरिया | 1970– | 554ब्लॉक | मुख्य रूप से पानी इकट्ठा करने |
| | प्रोग्राम (DPAP) | 71 | 73 जिले | नथा अन्य निर्माण कार्यों से जो |
| | | | 13 राज्य | स्थायी बने रहें, रोजगार व आय |
| | | | | सृजन |
| 16. | बेकवार्ड ऐरिया प्रोग्राम | 1971 | पिछड़े जिले | यहां उद्योगों की स्थापना करने |
| | (BAD) | | | वाले उद्योगपतियों को जमीन, |
| | | | | पानी, बिजली, साख, आसान सस्ती |
| | | | | दरों पर देना |
| 17. | रुरल आर्टीजन प्रोग्राम | 1971– | 41 जिले जहाँ | इन्हें आधुनिक औजार, तकनीक व |
| | (RAP) | 72 | शिल्प कार्य ज्यादा | डिजाइन देना |
| | | | है | |
| 18. | डिफ्रेन्शियल इन्ट्रेस्ट | 1972 | कमजोर वर्ग | इन्हें मात्र 4 प्रतिशत पर धन्धा |
| | रेट स्कीम | | (वार्षिक आय) | चलाने के लिए ऋण देना |
| | | | शहरी आय 7200 | |
| | | | रु0 से कम ग्रामीण | |
| | | | 6400 रु0 से कम | |
| 19. | एम्पलायमेंट गारंटी | 1972 | | 100 दिन के लिए कार्य देने की |
| | स्कीम (EGS) | | • • | गारंटी बशर्ते कि वे मेहनत का कार्य |
| | | | | मजदूरी = रु0+ अनाज |
| 20. | ट्राइबल डेवेलप– | 1972– | | अंचल क्षेत्र के संसाधनों का प्रयोग |
| | प्रोजेक्ट | 73 | · · | करके विकास कार्य चलाना |
| | | | उत्तर प्रदेश, उड़ीसा | |
| | | | व सभी राज्यों के | |
| | | | आदिवासी अंचल | |
| 21. | • | | | सार्वजनिक निर्माण कार्यों में देना |
| | रुरल एम्पलायमेंट | 73 | | (एक और नया नाम) |
| | जेक्ट PIREP | | बेरोजगारों के लिए | |
| 22. | | | | उनको स्वरोजगार स्थापित करने में |
| | जाब्ज | 74 | के लिए | सहायता |

| 23. हिल एरिया डेवेलपमेंट प्रोजेक्ट | 1973– 74 | | यहां पर कृषि विकास,उन्नत बीज प्रयोग फलदायक वृक्ष उगाना |
|---|-------------|--|--|
| 24. कमान्ड ऐरिया डेवेलपमेंट ऐजेन्सी (CADA) | 1974– 75 | • | सभी नालियां बनें वारावन्दी हो प्रयोग की अनुक्लतमता |
| 25. स्पेशल लाइव स्टॉक कार्यक्रम | 1974– 75 | 21 राज्य 4 केन्द्रीय टेरोटेरीज | कमजोर तबके के लोगों को पशुधन बढ़ाने में सहायता |
| 26. इन्टेग्रेटेड रुरल डेवेलप प्रोग्राम IRDP | | | SFDA+MFAL को मिला दिया हर |
| 27. मिनिमम नीड्स प्रोग्राम MNP | 77 | गांवों के गरीब | पीने का पानी, गांव की सड़क, ग्रामीण स्वास्थ्य सेवा सुलभता |
| 28. फुड फार वर्क प्रोग्राम FFWP | 1977 | सभी राज्य | राहत कार्यों में गरीबों को लगाकर अनाज मजदूरी के रूप में देना |
| 29. विलेज एडापशन स्कीम VAS | 1977 | कतिपय चुनिन्दा गांव | बैक, सार्वजनिक प्रतिष्ठान, कम्पनी गांव को 'गोद" लेकर विकास कराये |
| 30. अन्तोदय | 1977 | जयपुर, जोधपुर कोटा, चित्तौड़ जिले राजस्थान | आदिवासी, अनुसूचित जातियों में से गरीबों में से सबसे गरीब को रोजगार व आय सृजन में मदद |
| 31. रुरल हेल्प | 1977 | सभी ब्लॉक | दाइयों व कम्यूनिटी हेल्थ के लिए प्रशिक्षण देना |
| 32. ग्रामीण हेल्थ स्कीम | 1977 | समस्त राज्य ग्रामीण गरीब | उपरोक्त में परिवार नियोजन जोड़ना |
| 33. डेजर्ट डेवेलप– मेट प्रोग्राम | 1977– 78 | • | आगे रेगिस्तान का बढ़ना रोकना, वेस्टलैड का बढ़ना रोकना |
| 34. फिश फार्मर डेवेलपमेंट FFDA | 1977– 78 | समस्त राज्य | आन्तरिक पानी में मछली पालन बढ़ाना |
| 35. PVHOP प्राइवेट वालन्ट्री हेल्थ आर्गेनाइजेशन प्रोग्राम | 1979– | समस्त राज्य | निजी डाक्टर स्वेच्छा से आदिवासियों को तथा अन्य ग्रामीणों को स्वास्थ्य व परिवार |

| 36. | स्लम्स एन विरनामेंट स्कीम | 1977– 78 | समस्त राज्य | नियोजन सुनात्वेधाएं दें गंदी बस्तियों के हालात सुधारे जायें, विशेष रूप से जल-मल निकासी, स्वच्छ पानी व कूड़ा करकट हटाना |
|------|------------------------------|-------------|---------------------|--|
| 37. | इन्टेग्रेटेड चाइल्ड | 1977– | समस्त केन्द्रीय | बच्चों के स्वास्थ्य का व पोषण का |
| | डेवेलपमेंट ICDS प्रोग्राम | 78 | शासित प्रदेश | विकास |
| 38. | (बंधुआ मजदूर) बान्डेड | 1977– | कर्नाटक, मध्यप्रदेश | इन्हें खदान मालिकों जमीदारों से |
| | लेवर रीहे बिलिटेशन | 78 | उड़ीसा, तमिल– | मुक्ति दिलाकर स्वतन्त्र मजदूरी |
| | प्रोग्राम | | नाडु, उत्तर प्रदेश | करने |
| | | | | देना सम्भव बनाना |
| 39. | नेशनल एडल्ट | 1978 | सभी राज्य सभी | इन्हें साक्षर बनाना तथा आधारभूत |
| | ऐजूकेशन प्रोग्राम | | अशिक्षित प्रोढ़ | ज्ञान देना |
| 40. | डिस्ट्रिक्ट इंडस्ट्रीज | 1978 | सभी राज्य | ग्रामीण क्षेत्रों में औदोंगिक विकास |
| | सेन्टर प्रोग्राम DIC | | | बढ़ाना |
| 41. | ट्रेनिंग फार रुरल यूथ | 1979 | ग्रामीण युवक | इन्हें स्वरोजगार योग्य बनाना |
| | फार सेल्फ | | | |
| | एम्पलायमेंट | | | |
| | TRYSEM | | | |
| 42. | सेल्फ एफीसियेन्सी | | तमिलनाडु | ग्रामीण गरीबों को सिरोपरी |
| | स्कीम SSS | 80 | | सुविधाएं देना |
| 43. | नेशनल रुरल | 1980 | | |
| | ऐम्प्लायमेंट प्रोग्राम | | शहरी क्षेत्र | लिए अल्पकालिक राहत के लिए |
| | NREP | 1000 | | |
| 44. | स्पेशल एनीमल | 1980 | यु।नन्द। ब्लाक | दूध के उत्पादन से ग्रामीणों की |
| | हस्बेन्ड्री प्रोग्राम | | | आय बढ़ाना |
| 1 E | SAHP | 1000 | | इस तरह के परिवारों में से एक को |
| 45. | गारंटी प्रोग्राम | 1980 | ••• | रोजगार देने की गारन्टी देना |
| | RLEGP | | मजदूर | राजनार दल का गार्टी दला |
| 16 | | 1082_ | मधी जगट | ग्रामीण स्त्रियों व बच्चों का व |
| -7U. | एंड चिल्ड्रेन इन रुरल | | (1011 01-10 | विकास |
| | एरियाज DWCRA | 00 | | 1947(1 |
| 47 | सेल्फ ऐम्प्लायमेंट | 1983 | अन ऐम्प्लायमेंट मे | स्वरोजगार की "योजना" |
| | फार ऐजूकेटेड | | | |
| | अनऐम्प्लायड यूथ | | उन जगह जहां | |
| | ~ · | | • | |

| से कम हो |
|--|
| फार इक्रीजिंग 84 कृषक करना एग्रीकल्चरल प्रोडक्शन प्रोग्राम MAPP 49. सेल्फ ऐम्प्लायमेंट 1986 शहरी गरीब वही स्वरोजगार योजना -नये नाम फार अरवन से पुअर(SEPUP) 50. सर्विस ऐरिया एपरोच 1989 सभी ग्राम गांव के लिए बैंक द्वारा साख SAA योजना बनाकर उधार देना 51. नेहरु रोजगार योजना 1989 शहरी गरीब रोजगार योजना NRY |
| एग्रीकल्चरल प्रोडक्शन प्रोग्राम MAPP 49. सेल्फ ऐम्प्लायमेंट 1986 शहरी गरीब वही स्वरोजगार योजना नये नाम फार अरवन से पुअर(SEPUP) 50. सर्विस ऐरिया एपरोच 1989 सभी ग्राम गांव के लिए बैक द्वारा साख SAA योजना बनाकर उधार देना 51. नेहरु रोजगार योजना 1989 शहरी गरीब रोजगार योजना |
| प्रोग्राम MAPP 49. सेल्फ ऐम्प्लायमेंट 1986 शहरी गरीब वही स्वरोजगार योजना नये नाम फार अरवन से पुअर(SEPUP) 50. सर्विस ऐरिया एपरोच 1989 सभी ग्राम गांव के लिए बैंक द्वारा साख SAA योजना बनाकर उधार देना 51. नेहरु रोजगार योजना 1989 शहरी गरीब रोजगार योजना |
| MAPP 49. सेल्फ ऐम्प्लायमेंट 1986 शहरी गरीब वही स्वरोजगार योजना नये नाम फार अरवन से पुअर(SEPUP) 50. सर्विस ऐरिया एपरोच 1989 सभी ग्राम गांव के लिए बैंक द्वारा साख अजना जनकर उधार देना 51. नेहरू रोजगार योजना 1989 शहरी गरीब रोजगार योजना NRY |
| 49. सेल्फ ऐम्प्लायमेंट 1986 शहरी गरीब वही स्वरोजगार योजना -नये नाम फार अरवन से पुअर(SEPUP) 50. सर्विस ऐरिया एपरोच 1989 सभी ग्राम गांव के लिए बैंक द्वारा साख SAA 51. नेहरु रोजगार योजना 1989 शहरी गरीब रोजगार योजना NRY |
| फार अरवन से पुअर(SEPUP) 50. सर्विस ऐरिया एपरोच 1989 सभी ग्राम गांव के लिए बैंक द्वारा साख SAA योजना वनाकर उधार देना 51. नेहरु रोजगार योजना 1989 शहरी गरीब रोजगार योजना NRY |
| पुअर(SEPUP) 50. सर्विस ऐरिया एपरोच 1989 सभी ग्राम गांव के लिए बैक द्वारा साख SAA योजना बनाकर उधार देना 51. नेहरु रोजगार योजना 1989 शहरी गरीब रोजगार योजना |
| 50. सर्विस ऐरिया एपरोच 1989 सभी ग्राम गांव के लिए बैंक द्वारा साख SAA योजना बनाकर उधार देना 51. नेहरु रोजगार योजना 1989 शहरी गरीब रोजगार योजना NRY |
| SAA योजना बनाकर उधार देना 51. नेहरू रोजगार योजना 1989 शहरी गरीब रोजगार योजना NRY |
| बनाकर उधार देना 51. नेहरु रोजगार योजना 1989 शहरी गरीब रोजगार योजना NRY |
| 51. नेहरु रोजगार योजना 1989 शहरी गरीब रोजगार योजना NRY |
| NRY |
| |
| |
| 52. जवाहर रोजगार 1989 ग्रामीण गरीब मजदूरी -रोजगार देना |
| योजना JRY |
| 53. स्कीम फार अरबन 1990 शहरी गरीब स्वरोजगार के धन्धे स्थापित करें |
| माइक्रो ऐंटरप्राइजेज़ |
| SUME |
| 54. प्राइमिनिस्टर रोजगार 1993 शिक्षित बेरोजगार स्वरोजगार की एक और योजना |
| योजना युवक |
| 55. 56 बीस सूत्रीय 1975– यह एक बिन्दु के उस समय चल रहे सभी कार्यक्रमों |
| कार्यक्रम (दो बार) 77 कार्यक्रम नहीं थे, व विभागों के कार्यो की सूची |
| जैसा कि नाम से प्रशासन ने पंचवर्षीय योजना से |
| जाहिर है इनमें ज्यादा महत्व दिया |
| अनेक कार्यक्रम |
| शामिल थे पूरा |
| भारत |

यह सूची के कार्यक्रम याद नहीं रखे जा सकते परन्तु यह इसलिए दी गयी है कि कोई चाहे तो इनके क्रियान्वयन पर शोध कर सकता है, शर्त यह है कि सतह पर इनके चिन्ह मिल जायें। मुख्यबात इन कार्यक्रमों के बारे में यह है कि विभाग के जो सामान्य काम है, पंचवर्षीय योजना में जो होना था या हो रहा है वह क्या था? यह कार्यक्रम ही धन खाने के प्रमुख साधन बनें। इन राहत कार्यों के चिन्ह बहुत कम जुटे। इनका सामजिक मूल्यांकन व आडिट शिथिल रहा अगर शिक्षा विभाग ने व आदिवासी (अनुसूचित जनजाति) विभाग ने गरीब स्कूली लड़कियों को यूनीफार्म, पाठय पुस्तक निगम की पुस्तकें, या कुछ और दिया तो उसे "सुकन्या" नाम दे

दिया, रोजगार के अनेक कार्यक्रम नये नाम पाते रहे । इन्हीं कार्यक्रमों से राजनीतिबाज अपने लिए नाम कमाते रहे, व राजीव गांधी मजब्रू हुए कि वे सार्वजनिक रूप से यह माने कि 85 प्रतिशत धन हितग्राहियों को नहीं पहुं चता था ।

कार्य अवश्य हुए है, परन्तु इन कार्यों ने पंचवर्षीय योजनाओं से भी ज्यादा नाम कमाया यह आंकना मुश्किल हो गया कि कौन से कार्य योजना/सालाना बजट विशेष कार्यक्रमों में हुए। इनके लिए धन आवंटन से कहां हुआ। बीस सूत्रीय कार्यक्रम तो इतने प्रसिद्ध हुए कि प्रशासन ने पंचवर्षीय योजना को कम महत्व देना शुरू कर दिया यह सही है कि ये सारे कार्यक्रम गरीबी निवारण के थे, ग्रामीण विकास के थे परन्तु इनके लिए एक सच्चा समन्वित कार्यक्रम होना था जो उत्पादन की सक्षमता व वितरण का न्याय स्निश्चित करता।

NOTES